

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182195

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81/S56K Accession No. H 3431

Author सेनापति

Title कविता - रत्नाकर 1956

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सेनापति

कृत

कवित्त—रत्नाकर

(भूमिका, पाठान्तर तथा टिप्पणी सहित)

संपादक

उमाशंकर शुक्ल एम० ए०,

रिसर्च स्कॉलर, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय,

प्रयाग

सर्वोदय सार्वजनिक मंदिर,

कोठा, (दसस्टेण्ड,) हंजाराबाद ८,

प्रकाशक

हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय

प्रयाग

प्रथम संस्करण, १९३६ ई०

प्रकाशक—हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग

पंचम् संस्करण, १९५६ ई०

मूल्य ३।।)

मुद्रक—आजाद प्रेस, प्रयाग

वक्तव्य

१९२४ ईसवी में जब प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग का कार्य प्रारंभ हुआ था, उस समय सेनापति कृत 'कवित्त-रत्नाकर' भी एम० ए० के पाठ्यक्रम में था। मुद्रित संस्करण के अभाव में उस समय इसकी हस्तलिखित पोथियों को जमा करके पढ़ाई का प्रबन्ध करना पड़ा था। उसी समय यह मालूम हुआ था कि भरतपुर आदि स्थानों में घूम कर कई हस्तलिखित पोथियों से तुलना करके तैयार की हुई कवित्त-रत्नाकर की एक पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यापक पं० शिवाधार पांडे जी के पास है। उन्होंने इस हिन्दी विभाग के लोगों की सहायता के लिए इसकी एक प्रतिलिपि कराके देने की कृपा भी की थी। लगभग इसी समय पं० कृष्णविहारी मिश्र ने 'साहित्य-समालोचक' में इसका खंडशः प्रकाशित करना प्रारंभ किया था, किन्तु कुछ दिनों में 'समालोचक' ही बन्द हो गया। मुद्रित संस्करण के अभाव के कारण अन्त में इसे पाठ्यक्रम से हटा देना पड़ा।

सन् १९३४ में जब मैं यूरोप जा रहा था, तब एक दिन पं० शिवाधार पांडे जी ने कवित्त-रत्नाकर संबंधी समस्त सामग्री मुझे प्रकाशनार्थ सौंप दी। परीक्षा करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि पांडे जी ने मूल पोथी तैयार करने में अत्यन्त परिश्रम किया है किन्तु अनेक अंशों का परीक्षण फिर से भरतपुर को उन मूल पोथियों की सहायता से करना आवश्यक है जिनका उपयोग स्वयं पांडे जी ने किया था। अतः मैं इस समस्त सामग्री को अपने स्थानापन्न पं० देवीप्रसाद शुक्ल जी तथा उस वर्ष के यूनीवर्सिटी रिसर्च स्कालर पं० राजनाथ पांडे एम० ए० को सौंप गया। पं० राजनाथ ने उत्साह के साथ काम को हाथ में लिया, एक बार वे स्वयं इसी कार्य के लिए भरतपुर गये भी, किन्तु कई बार दीर्घकाल के लिये बीमार पड़ जाने के कारण एक वर्ष के अन्त में भी काम विशेष आगे नहीं बढ़ा सके।

नवम्बर १९३५ में लौटने पर मैंने यह अधूरा कार्य उम वर्ष के रिसर्च

स्कात्तर पं० उमाशंकर शुक्ल एम० ए० के सिपुर्द किया। हमारे नये रिसर्च स्कात्तर ने इस कार्य को पूरा करने में पूर्ण परिश्रम किया तथा मनोयोग दिया। 'कवित्त-रत्नाकर' का प्रस्तुत प्रकाशित संस्करण वास्तव में इनके ही निरन्तर अध्यवसाय का फलस्वरूप है। मूल ग्रन्थ के संपादन का कार्य पूर्ण हो जाने पर मैंने पं० उमाशंकर शुक्ल को टिप्पणी तथा एक विस्तृत भूमिका भी लिखने की सलाह दी। ये भी प्रस्तुत ग्रन्थ के अंश हैं और विश्वास है कि हिन्दी के विद्यार्थी तथा प्रेमीगण ग्रन्थ के इन अंशों को अत्यन्त उपयोगी पावेंगे। पं० उमाशंकर शुक्ल ने यह कार्य पं० देवीप्रसाद शुक्ल जी के अनवरत निरीक्षण में किया है। 'शब्द-सागर' आदि ग्रन्थों से सहायता लेने के अतिरिक्त हिन्दी के अनेक विद्वानों से परामर्श लेने में भी उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ। इस संबंध में हिन्दी के धुरंधर विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक गुत्थियों को सुलभाने में ग्रन्थ संपादक की विशेष सहायता की। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा पं० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी कुछ अर्थ संबंधी कठिनाइयों के सुलभाने में सहायता की है। हम लोग इन सज्जनो की कृपा के आभारी हैं। विशेष धन्यवाद के पात्र पं० शिवाधार पांडे जी हैं, जिनकी सामग्री के आधार पर ही इस कार्य की नांव प्रारंभ हुई। सच तो यह है कि वर्तमान संस्करण का मूलाधार उनकी ही तैयार की हुई प्रति है यद्यपि उसमें कितने अधिक परिवर्तन हुए हैं इसका निर्देश करना दुस्तर है।

ग्रन्थ के तैयार हो जाने पर प्रकाशन की समस्या सामने आई। प्रयाग विश्वविद्यालय के वायस चांसलर पं० इकबाल नारायण गुर्तू जी के आदेश से, विशेषतया विश्वविद्यालय की ओर से सहायता दिलाने के आश्वासन के सहारे, हम लोगों ने ग्रन्थ को प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् की ओर से ही मुद्रित तथा प्रकाशित करने का निश्चय किया। परिषद् की ओर से 'परिषद् निबंधावली' भाग १, २ तथा गल्पमाला भाग १ प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त 'कौमुदी' नाम की एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। 'कवित्त-रत्नाकर' का प्रकाशन इन सब में अधिक बड़ी आयोजना थी अतः इसके निर्विघ्न समाप्त होने से मुझे विशेष संतोष है।

मिश्रबन्धुओं के अनुसार सेनापति हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि थे। नवरत्नों के बाद मिश्रबन्धुओं ने सेनापति को ही रक्खा है और सेनापति श्रेणी में कुछ इने-गिने ही हिन्दी कवि आते हैं। वास्तव में यह खेद और लज्जा की बात थी कि हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना अब तक

प्रकाशित नहीं हुई थी। मुझे इस बात का हर्ष है कि इस कमी को पूरा करने में प्रयाग विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग माध्यम हो सका है। 'कवित्त-रत्नाकर' का यह संस्करण हिन्दी ग्रन्थों के सम्पादन के कुछ ऊँचे आदर्शों को लेकर हिन्दी जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इसको परखने का भार हिन्दी प्रेमियों पर निर्भर है। इस ग्रन्थ की छपाई आदि का सारा कार्य श्रीयुक्त रामकुमार वर्मा के निरीक्षण में हुआ है।

मार्गशीर्ष, सं० १९६३।

धीरेन्द्र वर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
भूमिका		
१—कवि-परिचय	...	(१)
२—रस-परिपाक	...	(६)
३—भक्ति-भावना	...	(१८)
४—ऋतु-वर्णन	...	(२६)
५—श्लेष-वर्णन	...	(३४)
६—भाषा	...	(५०)
७—हस्तलिखित प्रतियाँ	...	(५४)
८—संपादन-सिद्धान्त	...	(५७)
कवित्त-रत्नाकर		
पहली तरंग—श्लेष-वर्णन	...	१
दूसरी तरंग—शृंगार-वर्णन	...	३१
तीसरी तरंग—ऋतु-वर्णन	...	५४
चौथी तरंग—रामायण-वर्णन	...	७२
पाँचवीं तरंग—रामरसायन-वर्णन	...	८५
परिशिष्ट	...	११६
टिप्पणी		
पहली तरंग	...	१२२
दूसरी तरंग	...	२००
तीसरी तरंग	...	२०७
चौथी तरंग	...	२१७
पाँचवीं तरंग	...	२२५
छन्दों की प्रथम पंक्ति की अकारादि-क्रम-सूची		२३८

भूमिका

१—कवि-परिचय

हिन्दी साहित्य के कवियों में से बहुत थोड़े ऐसे हैं जिनके जीवन के संबंध में पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री पाई जाती हो। प्रायः अधिकांश कवियों की जीवनियों के साथ अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हो गई हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि किसी कवि ने स्वयं अपने विषय में कुछ भी लिख दिया है तो वह हमारे लिए बहुमूल्य है। कविवर सेनापति ने अपना वंश-परिचय 'कवित्त-रत्नाकर' के प्रारम्भ में दे दिया है। उसके तथा अन्य अंतःसाक्ष्यों के आधार पर जो दो-एक बातें कवि के संबंध में ज्ञात हो सकी हैं उन्हें यहाँ दिया जाता है।

सेनापति के वास्तविक नाम से हम अनभिज्ञ हैं। 'सेनापति' तो स्पष्ट ही उनका उपनाम था, जिसका प्रयोग उन्होंने अपनी कविता में किया है। उन्होंने दीक्षित कुल में जन्म लिया था। उनके पिता का नाम गंगाधर तथा पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। हीरामणि दीक्षित के शिष्यत्व में उन्होंने विद्याध्ययन किया था—

दीक्षित परसराम, दादो है विदित नाम,
जिन कीने यज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है।
गंगाधर पिता गङ्गाधर की समान जाकौं,
गङ्गा तीर बसति अनूप जिन पाई है ॥
महा जानि मनि, विद्यादान हूँ कौं चिंतामनि,
हीरामनि दीक्षित तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है^१ ॥

‘गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है’ के आधार पर यह कल्पना की जाती है कि किसी व्यक्ति ने उनके पिता को अनूपशहर दिया था, जो बुलंदशहर

का एक प्रसिद्ध क्रस्त्रा है, किन्तु यह धारणा बहुत ही अपुष्ट प्रतीत होती है। उद्धृत पंक्ति का अर्थ तो यही ज्ञात होता है कि 'जिनके पिता ने गंगा-तट की अनुपम बस्ती पाई है'। यदि 'बसति' का दूसरा पाठ 'बसत' ठीक माना जाय तो उस पंक्ति का यह अर्थ होगा : 'जिनके पिता गंगा तट पर रहते हैं तथा जिन्होंने अनूप पाया है'। फिर भी 'अनूप' से कवि का अभिप्राय 'अनूपशहर' से ही था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

अनूपशहर का संबंध राजा अनूपसिंह बड़गूजर से है, जिन्होंने सन् १६१० ई० में बड़ी वीरता से एक चीत का सामना करके जहाँगीर की रक्षा की थी। फलस्वरूप जहाँगीर ने प्रसन्न होकर इन्हें 'अनीराय-सिंह-दलन' की उपाधि दी थी और अनूपशहर का परगना भी दिया था^१। अनूपसिंह से पाँच पीढ़ी बाद अचल-सिंह हुए जिनके तारासिंह तथा माधोसिंह नामक दो पुत्रों में अनूपसिंह की संपत्ति विभक्त हुई। इस बात का उल्लेख मिलता है कि तारासिंह को इस बटवारे में अनूपशहर मिला और उसने उसकी विशेष उन्नति की^२। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यही अनुमान होता है कि कदाचित् उपर्युक्त कवित्त में 'अनूप' से अनूपशहर का अभिप्राय न होगा क्योंकि यदि अनूपशहर सेनापति के पिता को दे दिया गया होता तो अनूपसिंह के वंशजों को वह बटवारे में कैसे मिलता।

उपर्युक्त पंक्ति के अतिरिक्त अनूपशहर को सेनापति का जन्म-स्थान मानने का कोई अन्य आधार नहीं ज्ञात होता है; अतएव उसे भी हम निर्विवाद रूप में नहीं ग्रहण कर सकते हैं।

'कवित्त-रत्नाकर' की पहली तरंग के एक कवित्त में सेनापति ने सूर्यवली नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा की है, जो ब्रज-प्रदेश का राजा जान पड़ता है—

सूर बली वीर जसुमति कौं उज्यारौ लाल

चित्त कौं करत चैन बैनहिं सुनाइ कै।

सेनापति सदा सुर मनी कौं बसीकरन

पूरन कर्यौ है काम सब कौं सहाइ कै ॥

१. बुलन्दशहर गजेयियर, पृ० १४८

२. वही, पृ० १८३

नगन सघन धरै गाइन कौं सुख करै
 ऐसो तैं अचल छत्र धर्यौ है उचाइ कै ।
 नीके निज ब्रज गिरिधर जिमि महाराज
 राख्यो है मुसलमान धार तैं बचाइ कै^१ ॥

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'सूर बली बीर' के स्थान पर 'सूर बल बीर' पाठ पाया जाता है । इस पाठ के अनुसार इस राजा का नाम बलबीर अथवा बीरबल रहा होगा ।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सेनापति का संबंध मुसलमानी दरबार से था^२ । 'रामरसायन' के एक छंद से इस कथन की पुष्टि भी होती है । सेनापति कहते हैं—

केतो करो कोई, पैयै करम लिख्योई, तातैं
 दूमरी न होई, उर सोई ठहराइयै ।
 आधी तैं सरस गई बीति कै बरस, अब
 दुज्जन दरस बीच न रस बढ़ाइयै ॥
 चिंता अनुचित तजि धीरज उचित, सेना-
 पति हैं सुचित राजा राम गुन गाइयै ।
 चारि वरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
 पाइक मलेच्छन के काहे कों कहाइयै^३ ॥

इससे स्पष्ट है कि कवि को मुसलमानों की दासता से विरक्ति हो गई थी । धन-लिप्सा तथा अन्याय प्रलोभनों से वे बचना चाहते थे । किंतु किस मुसलमान शासक के यहाँ वे नौकर थे, इसका कुछ पता नहीं चलता । जहाँ-गीर के शासन काल में बुलंदशहर के अधिकांश बड़गुज्जर राजाओं ने मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लिया था^४ । छतारी, दानपुर, धरमपुर आदि के वर्तमान शासक इन्हीं बड़गुज्जर राजाओं के वंशज हैं । संभव है इनमें से किसी रियासत से सेनापति का संबंध रहा हो ।

१. पहली तरंग, छंद ५६

२. मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ४४२

३. पौंचवी तरंग, छंद ३३

४. बुलन्दशहर गजेयियर, पृ० ७६

सेनापति की रचनाओं से स्पष्ट है कि उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। साहित्यिक परंपरा से वे भली-भाँति परिचित जान पड़ते हैं। यद्यपि उन्होंने रीतिकालीन परिपाटी पर रचना नहीं की है फिर भी रीति युग की प्रवृत्तियों की छाप उनकी रचनाओं में प्रचुरता से पाई जाती है। 'कवित्त-रत्नाकर' में ऐसे बहुत से छन्द मिलेंगे जो विभिन्न साहित्यिक अंगों के उदाहरण से जान पड़ते हैं। पहली तथा दूसरी तरंग पढ़ने से इस कथन की विशेष रूप से पुष्टि हो जाती है।

सेनापति को अपनी कविता सुरक्षित रखने की विशेष इच्छा थी। वे कहते हैं कि लोग भावापहरण ही नहीं करते वरन् समूचा कवित्त उड़ा देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि 'कवित्त-रत्नाकर' को उन्होंने किसी राजा को समर्पित किया था और उससे इस बात की प्रार्थना की थी कि वह उनकी कविता को सुरक्षित रखे—

वानी सौं सहित सुवरन मुँह रहैं जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं ।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं ॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातैं सेनापति कहै तजि करि व्याज कौं ।
लीजियौ बचाइ ज्यों चुरायै नाहि कोई सौंपी
वित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं^१ ॥

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चोरी हो जाने के भय से उन्होंने प्रधानतया कवित्तों में ही अपनी रचना की है क्योंकि सवैया आदि अन्य छंदों में उनका नाम सुगमता से न आ सकता था^२।

अपने काव्य को सुरक्षित रखने की उत्कट इच्छा के साथ ही सेनापति ने अन्य कवियों के भावों को अपने काव्य में अधिक प्रश्रय नहीं दिया है। वैसे तो साहित्यिक क्षेत्र में प्रचलित साधारण भाव तथा उक्तियाँ उनके काव्य में भी हैं किंतु उन्होंने दूसरों के भावापहरण का प्रयत्न नहीं किया है। वास्तव

१. पहली तरंग, छंद १०

२. मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ४४१

भूमिका

मैं सेनापति स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे। इसी से दूसरों की कही हुई बातों के दोहराने को वे हेय दृष्टि से देखते थे। पाँचवीं तरंग के कई कवित्तों से उनकी स्वाभिमानी प्रकृति का परिचय मिलता है। वे आत्मसम्मान को ही संपत्ति समझते थे। सांसारिक सुखों की चिंता में मग्न रहना, उनको देखकर ललचाना आदि उन्हें पसन्द न था। कष्ट पड़ने पर भी तुच्छ व्यक्तियों से कुछ याचना करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। समाज में समाहत होना ही उनके लिए सब कुछ था—

सोचत न कौहू, मन लोचत न बार बार,
मोचत न धीरज, रहत मोद घन है।
आदर के भूखे, रूखे रूख सौँ अधिक रूखे,
दूखे दुरजन सौँ न डारत वचन है^१॥

इस भावना की थोड़ी झलक भक्ति के क्षेत्र में भी पाई जाती है। एक स्थल पर वे अपने उपास्य देव से कहते हैं कि यदि तुम यह कहो कि मैं अपने कर्मों द्वारा ही इस भवसागर से पार हो सकूँगा तो फिर मैं ही ब्रह्म हूँ; तुम्हें सृष्टिकर्त्ता मानना व्यर्थ है—

आपने करम करि हौँ ही निवहाँगो, तौव
हौँ ही करतार, करतार तुम काहे के ?

सेनापति प्रधानतया राम के भक्त थे, यद्यपि उनकी रचनाओं में कृष्ण तथा शिव संबंधी छंद भी हैं। ‘शिवसिंह सरोज’ में लिखा हुआ है कि “इन महाराज ने वृन्दावन में क्षेत्र संन्यास लेकर सारी वयस वहीं व्यतीत की”। अंतःसाक्ष्य द्वारा इस कथन की थोड़ी पुष्टि भी होती है—

सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
वृन्दावन सीमा तैं न बाहिर निकसियौ।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन कंजन की,
माल गरे गुंजन की, कुंजन कौँ वसियौ।

सेनापति की जन्म-तिथि तथा मृत्यु-तिथि के विषय में कोई बात निश्चित

१. पाँचवीं तरंग, छंद ४

२. पाँचवीं तरंग, छंद २६

३. पाँचवीं तरंग, छंद २१

रूप से नहीं कही जा सकती। 'कवित्त-रत्नाकर' सं० १७०६ (अर्थात् १६४६ ई०) में लिखा गया था। उसके विचारों तथा भावों से इतना तो निश्चित सा है कि कवि उसके लिखने के समय तक वृद्ध हो चुका था, यद्यपि उसके कुछ छंद ऐसे हैं जो सं० १७०६ से पहले के लिखे हुए जान पड़ते हैं। संभवतः विक्रम की १७वीं शताब्दी के द्वितीय चरण के अंत के लगभग इनका जन्म हुआ होगा। इनकी मृत्यु १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानी जा सकती है।

सेनापति के लिखे हुए दो ग्रंथ बतलाए जाते हैं—१. 'काव्य कल्पद्रुम' २. 'कवित्त-रत्नाकर'। 'काव्य कल्पद्रुम' हमारे देखने में नहीं आया, अतएव उसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। दूसरा ग्रंथ 'कवित्त-रत्नाकर' है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है। इसमें पाँच तरंगें हैं। पहली तरंग में ६७ कवित्त हैं। कुछ प्रारंभिक कवित्तों को छोड़ कर इसके समस्त कवित्त शिल्प हैं। दूसरी तरंग में शृंगार संबंधी ७४ छंद हैं जिनमें से केवल एक छप्पय है तथा अवशिष्ट कवित्त। तीसरी तरंग में श्रुत-वर्णन-संबंधी ६२ छंद हैं; ८ कुंडलियाँ हैं तथा शेष कवित्त। चौथी तरंग के ७६ छंदों में राम-कथा संबंधी रचना है। इसमें ६ छप्पय तथा अवशिष्ट कवित्त हैं। पाँचवीं तरंग में भक्ति संबंधी ८८ छंद हैं जिनमें से १२ छंद चित्रकाव्य के हैं। कुछ छंद ऐसे भी हैं जो कई तरंगों में समान रूप से पाए जाते हैं। पुनरावृत्ति वाले छंदों का छोड़ देने पर 'कवित्त-रत्नाकर' में कुल मिलाकर ३८४ छंद हैं। वैसे छंदों की पूर्ण संख्या ३६४ है।

२—रस-परिपाक

यों तो केशवदास के पहले भी रीति संबंधी कई ग्रन्थ बन चुके थे, किंतु हिंदी साहित्य में काव्य-शास्त्र की प्रथम विशद विवेचना करने वाले आचार्य वे ही थे। उन्होंने दंडी कृत 'काव्यादर्श' तथा रुय्यक कृत 'अलंकारसर्वस्व' के आधार पर विभिन्न साहित्यिक सिद्धांतों की विस्तृत समीक्षा की तथा अपने स्वतंत्र मतों का भी प्रतिपादन किया। उनकी अलंकार-विषयक पुस्तक 'कवि-प्रिया' संवत् १६५८ में लिखी गई थी। परंतु विद्वानों ने रीतिकाल का प्रारंभ केशवदास के समय से नहीं माना है, क्योंकि जिन सिद्धांतों को लेकर वे हिंदी साहित्य में आए थे उनका प्रचार न हो सका। उनका 'अलंकार' शब्द बहुत व्यापक है। उसके अंतर्गत शब्दालंकार तथा अर्थालंकार ही नहीं, वरन् वे

समस्त गुण आ जाते हैं जिनसे काव्य अलंकृत होता है। हिंदी के अन्य आचार्यों ने 'अलंकार' के इस व्यापक अर्थ को नहीं स्वीकार किया। हिंदी साहित्य में संस्कृत के रस-संप्रदाय का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसी से रीतिकाल का प्रारम्भ चिंतामणि के समय से माना जाता है, जिन्होंने जयदेव कृत 'चंद्रालोक' तथा अण्णय दीक्षित कृत 'कुवलयानन्द' को आदर्श माना है। चिंतामणि का रचनाकाल विक्रम की १७वीं शताब्दी के अंत में माना जाता है।

सेनापति का रचना-काल रीतिकाल के प्रारंभ में पड़ता है। उन्होंने सं० १७०६ में अपनी फुटकर रचनाओं को 'कवित्त-रत्नाकर' में संगृहीत किया। 'कवित्त-रत्नाकर' संग्रह ग्रंथ है, अतः उसकी कुछ रचनाएँ १७०६ से पहले की भी होंगी। उसमें रीतिकाल का प्रभाव प्रचुरता से पाया जाता है, यद्यपि उसमें रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया गया है अर्थात् भाव, विभाव, अनुभाव आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया गया है। संभव है सेनापति की दूसरी प्रसिद्ध कृति 'काव्य-कल्पद्रुम' में इस परिपाटी का अनुसरण किया गया हो।

'कवित्त-रत्नाकर' के प्रारम्भ में सेनापति कहते हैं कि हमारे काव्य में अनुपम रस-ध्वनि ('असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि') वर्तमान है—

सरस अनूप रस रूप यामें धुनि है^१।

कुछ चित्रकाव्य संबंधी रचना 'कवित्त-रत्नाकर' के अंत में मिलती है। ध्वनिवाद के अनुसार चित्रकाव्य तथा कृट आदि शब्द-कौतुक प्रधान रचनाएँ भी काव्य के अंतर्गत आ जाती हैं यद्यपि उन्हें सबसे निकृष्ट स्थान दिया गया है। इस मत के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता था कि सेनापति ध्वनि-संप्रदाय के अनुयायी थे। किंतु 'कवित्त-रत्नाकर' पढ़ने से यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है। सेनापति पर ध्वनि-संप्रदाय का कोई विशेष प्रभाव नहीं था। ध्वनि-वाद में व्यंजना शक्ति ही सब कुछ है, पर सेनापति ने उसका बहुत कम उपयोग किया है। ऊपर उद्धृत पंक्ति में रस-ध्वनि इसलिए कह दिया गया कि ध्वनि के विशाल प्रासाद के अंतर्गत 'विवक्षित वाच्य ध्वनि' के दो भेदों में से 'असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य' में रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि भी आ जाते हैं। सेनापति पर अलंकारों का प्रभाव अधिक है। वे

रस-संप्रदाय से भी प्रभावित हुए हैं, किंतु बहुत नहीं। अलंकारों की प्रधानता के कारण उनका ध्यान रसोत्कर्ष पर अधिक देर तक नहीं ठहरता है। उनके लिए अलंकार वर्णन-शैलियाँ नहीं, वरन् वर्ण्य वस्तु हैं। स्वयं कवि ने 'कवित्त-रत्नाकर' की पहली तरङ्ग में अपनी शिल्प रचनाओं को संगृहीत किया है और उसका नाम 'श्लेष वर्णन' रखा है।

'कवित्त-रत्नाकर' में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शांत रस संबंधी रचनाएँ पाई जाती हैं। स्वभावतः अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का अधिक विस्तार है। शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं। कवित्त-रत्नाकर में स्वाभाविक सौंदर्य के वर्णन थोड़े होते हुए भी सजीव हुए हैं। ऐसे वर्णनों में कवि ने मौलिकता से काम लिया है। सौंदर्य-वर्णन का एक उदाहरण देखिए—

लाल मनरंजन के मिलिवे कौं मंजन कै
चौकी बैठी बार मुखवार्ता बर नारी है ।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार विन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है ॥
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है ।
ताल गीत विन, एक रूप कै हरति मन,
परवीन गाइन की ज्यों अलापचारी है^१ ॥

प्राचीन शैली के गायक किसी गीत के प्रारम्भ करने के पहले प्रायः उस राग के स्वरूप का चित्रण करते हैं जिसका गीत वे गाना चाहते हैं। इसे 'अलाप' कहते हैं और इसमें न तो गीत के कोई शब्द ही रहते हैं और न ताल का ही कोई प्रतिबन्ध रहता है। नायिका केवल मात्र अपने शरीर के सौंदर्य से ऐसे शोभित हो रही है जैसे ताल तथा गीत आदि से रहित किसी गायक की अलाप सुन्दर जान पड़ती है। दोनों की समता इसी में है कि दोनों कृत्रिम सौंदर्य से रहित हैं। उनका सौंदर्य उन्हीं का है। वह किसी वाह्य उपकरण पर अवलंबित नहीं है।

आलंबन विभाव का वर्णन भिन्न प्रकार की नायिकाओं के रूप में

अधिक मिलता है। कवि ने अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ भेदों को चुन कर उन पर थोड़े से कवित्त लिखे हैं। अवस्था की दृष्टि से 'मुग्धा' पर कुछ छंद प्राप्त होते हैं और उनमें से दो-एक अत्यंत सुन्दर बन पड़े हैं—

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई
 सोभा मन्द पवन चलत जलजात की।
 पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई,
 ताही छवि करि ससिआभा पात पातकी ॥
 सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
 उज्वल बिमल दुति पैयै गात गात की ॥
 सैसव-निसा अथौत जोवन दिन उदौत,
 वीच बाल बधू भाँई पाई परभात की^१ ॥

“काम भूप सोवत सो जागत है” कह कर वयःसंधि को बड़ी ही उत्तमता से व्यंजित किया गया है, साथ ही प्रभात के रूपक के विचार से भी वह नितांत उपयुक्त है।

‘खंडिता’ के वर्णनों में कुछ कवियों ने महावर आदि के वर्णन के साथ-साथ दंत-क्षत, नख-क्षत आदि का वर्णन भी बड़े समारोह के साथ किया है। सेनापति ने भी एक कवित्त में ऐसी ही तत्कालीन अभिरुचि का परिचय दिया है—

बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अव,
 भूलि माति जाहु सेनापति समभाए हौ।
 करि डारी-छाती घोर घाइन सौ राती-राती
 मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ ॥
 पौढ़ौ बलि सेज, करौ औपद् की रेज बेगि,
 मैं तुम जियत पुरविले पुन्य पाए हौ।
 कीने कौन हाल ! वह बाघिनि है बाल ! ताहि
 , कोसति हौं लाल जिन फारि फारि खाए हौ^२ ॥

कहाँ तो शृङ्गार रस के आलंबन विभाव का वर्णन और कहाँ ‘बाघिनि’

१. दूसरी, तरंग, छंद २६

२. दूसरी, तरंग, छंद ३५

तथा मल्हम-पट्टी की चर्चा ! वचन-वक्रता बड़ी सुन्दर होती है, किंतु वह “फारि फारि खाए” बिना भी प्रदर्शित की जा सकती थी। ‘खंडिता’ के अन्य उदाहरणों में अधिक सहृदयता से काम लिया गया है।

‘वचन-विदग्धा’ के वर्णन में कभी-कभी व्यंजना से अपूर्व सहायता मिलती है, पर सेनापति ने इसके वर्णन में प्रायः श्लेषालंकार से सहायता ली है। इसके कुछ उदाहरण पहली तरंग में मिलते हैं^१ और उनमें शाब्दिक क्रीड़ा की ही प्रधानता है। किसी किसी छंद में ‘अश्लीलत्व’ दोष भी आ गया है। ‘अश्लीलत्व’ के संबंध में यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वह सेनापति के ‘शृङ्गार-वर्णन’ में बहुत कम पाया जाता है। वह केवल पहली तरङ्ग में ही कतिपय स्थलों पर देखा जाता है। कवि वहाँ पर श्लेष लिखने में तत्पर दिखलाई पड़ता है अतएव उसे अन्य किसी बात की चिंता नहीं रहती है। कहीं कहीं श्लेष का मोह इतना प्रचल हो जाता है कि उसे भद्दी से भद्दी बात कह देने में भी संकोच नहीं होता है^२। ऐसी ही भद्दी तथा रसाभासपूर्ण उक्तियों को देखकर आजकल कुछ शिक्षित तथा शिष्ट किन्तु साहित्य से अधिक परिचित न रहने वाले व्यक्ति शृङ्गार रस को उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते हैं। इनमें से कोई तो कुछ उग्रता के साथ उसका विरोध भी करते हैं।

रीतिकाल के अन्य कवियों की भाँति सेनापति ने भी ‘परकीया’ का ही विशेष चित्रण किया है, किन्तु वे ‘स्वकीया’ की महत्ता को भी स्वीकार करते थे। ‘रामायण वर्णन’ में उन्होंने राम के एक नारी-व्रत पर बहुत जोर दिया है और बड़े उत्साह के साथ ‘दाम्भत्य रति’ का चित्रण किया है। दूसरी तरंग में भी जहाँ कहीं उसे चित्रित किया गया है, वहाँ अपूर्व सफलता मिली है। ‘प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका’ के इस वर्णन में ‘स्वकीया’ की सुकुमार भावना को देखिए—

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैँदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज करकै खवाई अति हित है ॥

१. पहली तरंग, छंद ७१, ७८, ८१

२. पहली तरंग, छंद ६४

हैं कै रस बस जब दीये कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है ।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं
कही प्रानपति यह अति अनुचित है^१ ॥

भारतीय महिलाओं के ऐसे ही आदर्शों पर हिन्दू समाज को आज भी गर्व है ।

उदीपन विभाव की दृष्टि से नख-शिख वर्णन पर कुछ छंद पाए जाते हैं । इनमें बहुधा परंपरा से प्रचलित उपमानों द्वारा ही काम चलाया गया है । केशों का वर्णन सेनापति इस प्रकार करते हैं—

कालिंदी की धार निरधार है अधर, गन
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं ।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
इंद्रनील कीरति कराई नाहिं ए सहैं ॥
एड़िन लगत सेना हिय के हरष-कर,
देखत हस्त रति-कंत के कलेस हैं ।
चीकने, सघन, अँधियारे तैं अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे, तेरे केस हैं^२ ॥

सेनापति का ध्यान संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार की ओर अधिक है । उनका विरह वर्णन प्रधानतया प्रवास-हेतुक तथा विरह-हेतुक है । ईर्ष्या-हेतुक वियोग का वर्णन भी पाया जाता है । सेनापति के विरह-वर्णन में विरही की विकलता का अत्युक्तिपूर्ण चित्रण अधिक नहीं किया गया है । लंघी उड़ान वाले कवित्त थोड़े ही हैं । विरह-जनित उद्विग्नता का एक चित्र देखिए :—

जौतैं प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतैं,
विरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है ।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल-नैनी,
सेनापति अनमनी वैठियै रहति है ॥

१. दूसरी तरंग, छंद ३६

२. दूसरी तरंग, छंद ७

कागहिं उड़ावै, कोहू कोहू करै सगुनोती,
कोहू बैठि अवधि के वासर गनति है ।
पढ़ि पढ़ि पाती, कोहू फेरि कै पढ़ति, कोहू
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है^१ ॥

विरह-व्यथा को उद्गीत करने के लिए कवि ने ऋतु-वर्णन से विशेष सहायता ली है, यद्यपि संयोग शृंगार की सुखद परिस्थितियों के अंकित करने में भी उससे काम लिया गया है। परन्तु विभिन्न ऋतुओं के वर्णनों द्वारा विरह-पीड़ा का आधिक्य चित्रित करने में उसे विशेष सफलता नहीं मिली है। कवि ने विरही को विभिन्न ऋतुओं के बीच घिटा तो दिया है, पर उसको प्रभावित होने की अधिक शक्ति नहीं प्रदान की है।

सेनापति के विरह-वर्णन में संचारियों का भी आधिक्य नहीं मिलता। इस चुटि के कारण वह बहुत हलका पड़ जाता है। किन्तु कवि ने जिन भावों का समावेश किया है उन्हें सरलता तथा स्वाभाविकता से निभाया है। निम्नलिखित कवित्त में 'वितर्क' से पुष्ट 'विषाद' की शांति करा कर 'हर्ष' की सुन्दर व्यंजना की गई है—

कौनैं विरमाए कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की ॥
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल हैं, हैं,
जा दिन वदन-छवि देखौं नन्द-लाल की ॥
सेनापति जीवन-अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो विहाल की ॥
इतनी कहत, आँखू वहत, फरकि उठा
लहर लहर दृग बाँई ब्रज-बाल की^२ ॥

लोगों का विश्वास है कि स्त्रियों की बाँई आँख फड़कना शुभ है। इससे प्रायः यह अनुमान किया जाता है कि या तो अपना कोई स्वजन आने वाला है अथवा वह आँख फड़कने वाले व्यक्ति की याद कर रहा है। इसी विश्वास के आधार पर कवि ने 'हर्ष' की व्यंजना की है। जिस परिस्थिति में उसने इस

१. दूसरी तरंग, छंद ६१

२. दूसरी तरंग, छंद ६८

भाव का उदय दिखलाया है उससे इस भाव में विशेष चमत्कार आ गया है । खेद है कि ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं ।

विरह-वर्णनों में विरहियों की मानसिक स्थिति के सूक्ष्म विश्लेषण की बड़ी आवश्यकता होती है । विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर विरही क्या सोचता है, दुखी व्यक्तियों को देखकर वह किस प्रकार सहज ही में सहानुभूति प्रकट करने लगता है, संसार की साधारण से साधारण घटनाओं को वह किस रूप में लेता है आदि अनेक विषयों की ओर कवि को दृष्टि दौड़ानी पड़ती है; पर इस क्षेत्र में सेनापति की जानकारी सीमित दिखलाई पड़ती है । उन्होंने विरह-काल की साधारण स्थितियों का ही परिचय दिया है । इस कारण उनका विरह-वर्णन स्वाभाविक होने पर भी अपूर्ण ही कहा जायगा । उनकी अलंकार-प्रियता के कारण भी उनके विरह-वर्णन को क्षति पहुँची है । कवि अनुप्रासदि के लिए उपर्युक्त शब्दों के खोजने में पड़ जाता है और फलतः भावोत्कर्ष दिखलाने की ओर उसका ध्यान कम आता है ।

भाव-व्यंजना में सब से आवश्यक बात यह है कि जिस भाव का वर्णन किया जा रहा हो उससे कवि अच्छी तरह से परिचित हो । कल्पना के सहारे वह अधिक दूर नहीं जा सकता । मानव-हृदय के जिन भावों से कवि स्वयं परिचित होता है उन्हीं के चित्रण में उसे पूरी सफलता मिल सकती है । सेनापति को मानव-जीवन की सुकुमार भावनाओं से उतना अनुराग न था जितना उत्साहपूर्ण वीरोल्लास से । उनकी इस प्रवृत्ति का परिचय उनके 'रामायण वर्णन' को देखने पर मिल सकता है । राम-कथा में मानव-जीवन से संबंधित अनेक भावनाओं का भांडार है । उसके संपूर्ण अंगों को सफलता-पूर्वक वर्णित करने में महाकवि ही सफल हुए हैं । राम-कथा की विशदता की ओर सेनापति का भी ध्यान गया था—

एती राम-कथा, ताहि कैसे कै बखानै नर,
जातैं ए विमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं ।

सेनापति यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं^१॥

सेनापति ने राम-कथा से मुख्यतया निम्नलिखित स्थलों का वर्णन

किया है—सीता-स्वयंवर, परशुराम-मिलन, मारीच-वध, हनूमान का लंका जाना, सेतु बाँधने का आयोजन, हनूमान तथा राक्षसों का युद्ध, अंगद का रावण के पास जाना, राम-रावण युद्ध तथा सीता की अग्नि-परीक्षा। इस नामावली को देखने से यह विदित होता है कि कवि ने प्रधानतया वीरोत्साह वाले स्थल ही चुने हैं। भरत से संबन्धित कथा का वह कोई विवरण नहीं देता। वन-गमन, दशरथ की मृत्यु, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, लक्ष्मण के शक्ति लगना आदि स्थलों को तो उसने बिलकुल ही छोड़ दिया है। 'शोक' का कवि पर कोई प्रभाव न था अतः उसने शोक वाले स्थलों को नहीं चुना। यदि उस पर इस स्थायीभाव का कुछ भी प्रभाव होता तो वह कम से कम दो-चार छंद तो इस विषय पर अवश्य ही लिखता। वस्तुस्थिति यह है कि उसका ध्यान राम, रावण, हनूमान आदि के शौर्य तथा पराक्रम की ओर ही रहता है। जहाँ इनके वर्णन से कुछ अवकाश मिलता है वहाँ वह भक्ति-भाव से प्रेरित होकर राम का गुणगान करने लगता है।

वीर रस के चित्रण में बहुधा कवियों ने युद्धों के विराद वर्णनों से काम चलाया है। किन्तु तोपों की गड़गड़ाहट तथा तलवारों की छपछपाहट से वीर रस की वैसी व्यंजना नहीं होती जैसी वीरोचित उत्साह के प्रदर्शन में सेनापति को हम युद्ध के वर्णन करने में उतना तत्पर नहीं पाते हैं जितन युद्ध की तैयारी के वर्णन करने में। राम का सेना एकत्रित करना, हनूमान को सीता की खोज में भेजना, सेतु बाँधने का आयोजन करना आदि विषयों के वर्णनों की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। इसी कारण उसके रचनाओं में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

राम-रावण-युद्ध के वर्णन में धर्म-भाव के कारण प्रायः राम का उत्कृष्ट अधिक प्रदर्शित कर दिया जाता है और रावण की वीरता पर थोड़ा ब्रह्म कह कर सतोष कर लिया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से यह कुछ अस्वाभाविक लगने लगता है। वीरों का उत्साह अपने प्रतिपक्षी की असीम शक्ति को देखकर और भी बढ़ जाता है, न कि उसकी हीनता देखकर। सेनापति की कविता में यह चूटि कम पाई जाती है। उन्होंने राम तथा रावण व समान उत्कर्ष वर्णित किया है। इसी से उनके वर्णनों में अधिक सजीवता आ सकी है। उदाहरणार्थ कवि ने कर्मवीर राम को जिस परिस्थिति में चित्रित किया है वह द्रष्टव्य है—

भूमिका

इत वेद बंदी वीर बानी सौं विरद बोलैं,
 उत सिद्ध-विद्याधर गाइ रिभावत हैं ।
 इत सुर-राज, उत ठाढ़े हैं असुर-राज,
 सीस दिगपाल, भुवपाल नवावत हैं ॥
 सेनापति इत महाबली साखामृग-राज,
 सिंधुराज बीच गिरि-राज गिरावत हैं ।
 तहाँ महाराजा राम हाथ लै धनुष बान,
 सागर के बाँधिये कौं ब्यौँत बतावत हैं^१ ॥

राम-रावण-युद्ध के वर्णन करते समय भी इसी पद्धति से काम लिया गया है—

वीर रस मद माते, रन तैं न होत हाँते,
 दुहू के निदान अभिमान चाप बान कौं ।
 सर वरषत, गुन कौं न करषत मानौं,
 हिय हरषत जुद्ध करत बखान कौं ॥
 सेनापति सिंह सारदूल से लरत दोऊ,
 देखि धधकत दल देव जातुधान कौं ।
 इत राजा राम रघुवंस कौं धुरंधर है,
 उत दसकंधर है सागर गुमान कौं^२ ॥

युद्ध-स्थल में लड़ते हुए वीरों की मुद्रा चित्रित कर देने से युद्ध का वास्तविक चित्र सामने खड़ा हो जाता है। युद्ध करते हुए राम की इस मुद्रा को देखिए—

काढ़त निप्रंग तैं, न साधत सरासन मैं,
 खैंचत, चलावत न बान पेखियत है ।
 स्रवन मैं हाथ, कुंडलाकृति धनुष बीच,
 सुन्दर बदन इकचक लेखियत है ॥
 सेनापति कोप ओप ऐन हैं अरुन नैन,
 संवर-दलन मैंन तैं बिसेखियत है ।

१. चौथी तरंग, छंद ४६

२. चौथी तरंग, छंद ५८

रह्यो नत हैं कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
चित्र कैसो लिख्यो राजा राम देखियत है^१ ॥

सेनापति ने राम की दानवीरता पर भी दो छंद लिखे हैं । एक कवित्त में एक सुन्दर युक्ति द्वारा उसका वर्णन किया गया है—

रावन कौं वीर, सेनापति रघुवीर जू की,
आयौ है सरन, छांड़ि ताही मद अंध कौं ।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन दीन-बंध कौं ॥
देखो दान-वीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानै सत्य संध कौं ।
लंका दसकंधर को दीनी है विभीषन कौं,
संकाऊ विभीषन की दीनी दसकंध कौं^२ ॥

राम ने रावण की लंका को विभीषण को दे दिया, एक दान तो यही हो गया । किंतु उन्होंने इसी दान द्वारा एक दूसरा दान भी दे दिया । विभीषण को लंका का अधिपति बना देने से रावण को विभीषण की चिंता हो गई । उसके जीते ही उसका भाई लंकाधीश बन गया और उसे यह फिर बढ़ गई कि अब विभीषण से भी सामना करना पड़ेगा ।

ऊपर जो कवित्त उदाहरण स्वरूप दिए गए हैं उन्हें देखने से यह पता चलेगा कि कवि ने कर्णकटु शब्दों की भरमार करने का प्रयत्न नहीं किया है । सेनापति के अन्य कवित्तों में भी यही विशेषता परिलक्षित होती है । शब्दों के द्वित्व रूप रखने का आग्रह केवल छप्पयों में है, जो अपभ्रंश काल की परंपरा-पालन के अनुरोध से है । शब्दों के कर्णकटु रूप प्रयुक्त न करने पर भी सेनापति के कवित्त ओज गुण से पूर्ण हैं । वास्तव में ओज आदि गुण रस के स्वाभाविक धर्म हैं और जहाँ कहीं रस होगा वहाँ ये स्वतः वर्तमान होंगे । आचार्यों का मत है कि इनकी रस के साथ अचल स्थिति होती है ।^३ अतएव

१. चौथा तरंग, छंद ६०

२. चौथी तरंग, छंद ४०

३. ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।

—कान्यप्रकाश (अष्टम उल्लास, श्लोक १)

भूमिका

शब्दों को विकृत करके आज गुण लाने का प्रयत्न व्यर्थ ही है।

‘उत्साह’ में मर्यादा का भाव सर्वदा वर्तमान रहता है। वीरों की वीरता अपनी सीमा उल्लंघन नहीं करती—

बज्र हूँ दलत, महा कालै संहरत, जारि
भसम करत प्रलै काल के अनल कौं ।
भंभा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल, थल करै जल कौं ॥
पव्वै मेरु-मंदर कौं फारि चक्रचूर करै,
कीरति कितीक, हनै दानव के दल कौं ।
सेनापति ऐसे राम बान तऊ बिप्र हेतु,
देखत जनेऊ खैंचि राखै निज बल कौं^१ ॥

किंतु ‘क्रोध’ में मर्यादा का भाव विलीन हो जाता है। क्रोध से भरे परशुराम जी पैर छूते हुए दशरथ की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देते। वे तो अपने गुरु के धनुष तोड़ने वाले को नष्ट करने की धमकी दे रहे हैं—

भीड़यो है रुधिर भार, भीम, घनघोर धार
जाकौं सत कोटि हूँ तैं कठिन कुठार है ।
छत्रियन मारि कै निच्छत्रिय करी है छिति
बार इकईस, तेज-पुंज कौं आधार है ॥
सेनापति कहत कहाँ हैं रघुवीर कहौ ?
छोह भर्यो लाह करिबे कौं निरधार है ।
परत पगनि दसरथ कौं न गनि, आयौ
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार है^२ ॥

भयानक रस का चित्रण तीन जगह किया गया है। निम्नलिखित दृश्य धनुष-भंग के अवसर का है—

हहरि गयो हरि हिण, धधकि धीरत्तन मुक्किय ।
ध्रुव नरिंद थरहर्यो, मेरु धरनी धसि धुक्किय ॥

१. चौथा तरंग, छंद २८

२. चौथा तरंग, छंद २६

अखिख पिखिख नहिं सकइ सेस नखिखन लगिय तल ।
 सेनापति जय सह, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल ॥
 उहंड चंड भुजदंड भरि, धनुष राम करपत प्रबल ।
 दुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि, लुट्टिय दिगंत दिग्गज बिकल^१ ॥

दो-एक स्थलों को छोड़ कर 'कवित्त-रत्नाकर' में हास्य रस का अभाव है। उपर्युक्त प्रधान रसों के अतिरिक्त शांत रस का परिपाक बहुत सुन्दर हुआ है। आगे इस पर विचार किया गया है।

३—भक्ति-भावना

हिन्दू धर्म की व्यापकता प्रसिद्ध है। उसके अंतर्गत एक ओर तो मस्तिष्क को संतुष्ट करने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म दार्शनिक विचारावली पाई जाती है, दूसरी ओर लोक-धर्म का वह विधान पाया जाता है जिसके द्वारा संसार का काम चलता है। हिन्दू धर्म की व्यापकता, मुख्यतया, इन्हीं दोनों के समन्वय के फल-स्वरूप है। साधारण हिन्दू जनता की शांतिप्रियता ने भी इस ओर विशेष सहायता पहुँचाई है। लड़ाई-भगड़ा उसे अधिक प्रिय नहीं रहा है। धार्मिक विषयों में तो यह शांतिप्रियता प्रचुर परिमाण में दृष्टिगोचर होती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिन्दू धर्म के विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में लड़ाई-भगड़े का वातावरण नहीं रहा है। शैवों और वैष्णवों के भगड़े इतिहास में प्रसिद्ध ही हैं। आधुनिक समय में भी जहाँ इन संप्रदायों के केन्द्र हैं वहाँ कभी कभी सांप्रदायिक प्रतिद्वंद्विता का उग्र रूप देखने को मिल जाता है, किंतु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह विदित होता है कि यह प्रतिद्वंद्विता मठाधीशों, महंतों तथा उनके चेले-चपाटियों और कुछ थोड़े से अनुयायियों तक ही सीमित रही है और रहती है। साधारण जनता में इन विद्वेपपूर्ण भावनाओं का प्रचार नहीं हो पाता है। भगवान् एक हैं और वह अपने भक्तों के दुःखों को दूर करने के लिए अनेक रूपों में अवतरित होते हैं—साधारण जनता के संतोष के लिए यह सीधी सादी विचारधारा पर्याप्त है। यह प्रवृत्ति आज की नहीं है, प्राचीन समय से चली आ रही है और इसके कारण ही व्यावहारिक जीवन में धर्म का वह व्यापक स्वरूप चल पड़ा था जो 'सनातन धर्म' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके अंतर्गत हिन्दू धर्म में पाए जाने वाले सभी मतों तथा सिद्धान्तों का समावेश मिलता है।

फलतः आज कल किसी साधारण हिंदू गृहस्थ के व्यावहारिक जीवन को देख कर सहसा यह बता देना कठिन हो जायगा कि वह शैव है, वैष्णव है अथवा शाक्त है। आज रामनवमी, जन्माष्टमी, दुर्गाष्टमी तथा शिवरात्रि, सभी घरों में समान उत्साह से मनाई जा रही हैं।

हमारे समाज में जब कभी कुछ लोगों में एकांगी प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है तभी विचारशील महापुरुषों ने उसका विरोध किया है। विक्रम की १७ वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी ने धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित एकांगिता का तिरस्कार किया था। उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा हिंदू समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। उनके तिरस्कार का जो मंगलमय प्रभाव समाज पर पड़ा है उससे हम सभी परिचित हैं। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्होंने 'कृष्ण गीतावली' लिखी। शिव को तो उन्होंने राम-कथा का एक आवश्यक अंग ही बना दिया।

सिद्धांत की दृष्टि से सेनापति भी गोस्वामी जी की परंपरा में आते हैं। वे राम के उत्कट भक्त थे, पर कृष्ण तथा शिव से भी उन्हें विशेष स्नेह था और तदनुसार उन्होंने उनका भी गुणगान किया है। वैष्णव भक्त कवियों की भाँति सेनापति भी तीर्थ-सेवन, गंगा-स्नान आदि विषयों पर आस्था रखते थे, यद्यपि भक्ति के क्षेत्र में वे इन बातों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझते थे। किंतु इन साम्यों को देखकर यह न समझना चाहिये कि सेनापति की रचना पर 'रामचरितमानस' का कोई विशेष प्रभाव पाया जाता है। एक तो सेनापति के 'रामायण वर्णन' में कथा का कोई विशेष विस्तार मिलता ही नहीं है, दूसरे जहाँ कहीं कुछ घटनाओं का वर्णन पाया भी जाता है वहाँ वे 'मानस' के आधार पर न होकर वाल्मीकि रामायण पर ही अवलंबित हैं। उदाहरणार्थ परशुराम-आगमन का वर्णन स्वयंवर के समय न होकर, अयोध्या लौटते समय ही किया गया है।

जहाँ तक राम के नारायणत्व का संबंध है, सेनापति गोस्वामी जी की कोटि में आते हैं। उन्होंने रामावतार के लोकोपकारी गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। जैसा कि दिखलाया जा चुका है राम के पराक्रम का वर्णन भी उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। पर उन्होंने राम के असीम सौंदर्य के चित्रण करने का प्रयत्न कम किया है—केवल प्रसंग-वश कुछ छंद यत्र तत्र लिख दिए हैं। वे राम के वीरत्व तथा उनकी भक्तवत्सलता से ही विशेष रूप से

प्रभावित हुए हैं और इन्हीं के वर्णन करने में वे दत्तचित्त रहे हैं। सेनापति में न तो गोस्वामी जी की सी सर्वाङ्गीण प्रतिभा थी और न मानव-जीवन से उनका उतना घनिष्ठ परिचय ही था। अतएव यदि गोस्वामी जी की भक्ति-भावना के सामने सेनापति के भक्ति संबंधी उद्गार उतने व्यापक एवं मार्मिक न जवें तो कोई आश्चर्य नहीं। किंतु भगवान् के जिस स्वरूप को लेकर सेनापति चले हैं उसके प्रति उनके हृदय में सच्चा अनुराग था और वे उसकी अभिव्यक्ति करने में पूर्णरूप से सफल हुए हैं। निम्नलिखित विवरण द्वारा इस कथन की सत्यता प्रकट हो जायगी।

जीवन की नश्वरता का सच्चा अनुभव हुए बिना सांसारिकों का ईश्वरोन्मुख होना संभव नहीं है। जब मनुष्य को यह अनुभव होने लगता है कि जीवन एक क्षणिक घटना है और थोड़े ही समय में सारा खेल समाप्त होने वाला है तब उसे परमार्थ की चिन्ता होती है—

कोनो बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनो तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं ।
अब तू जरा मैं पर्यौ मोह पीजरा मैं, सेना-
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं ॥
चितहिं चिताउ, भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसो ताउ न बचाउ है सरीर कौं ।
लेह देह करि कै पुनीत करि लेह देह,
जीमै अवलेह देह सुरसरि नीर कौं ^१ ॥

जीवन वास्तव में है ही कितना ? उसे लोहे का ताव ही समझना चाहिए क्योंकि वह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा और तब कुछ करते न बनेगा। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि इस कठिनता से प्राप्त किये हुए लोहे के ताव से लाभ उठाया जाय और सत्कर्मों द्वारा परमार्थ-साधन किया जाय।

संसार की अनित्यता से लुब्ध होकर जब भक्त भगवान् के लोकोपकारी स्वरूप की ओर देखता है तो उसके हृदय में अपूर्व आशा का संचार होने लगता है। वह जिधर आँख उठाकर देखता है उधर ही उसे भगवान् की असीम करुणा दिखलाई पड़ती है। वह जब देखता है कि भगवान् में ऐसी

भूमिका

भक्तवत्सलता है कि दीन दुखियों को कष्ट होते ही वे उसके निवारण के लिए तत्पर दिखलाई देते हैं तब उसका चित्त स्थिर हो जाता है और उसे यह आश्वासन मिलने लगता है कि उसकी रक्षा करने वाला भी विद्यमान है—

अरि करि आँकुस बिदार्थो हरिनाकुस है,
 दास कौं सदा कुसल, देत जे हरष हैं ।
 कुलिस करेरे, तोरा तमक तररेरे, दुख
 दलत दरेरे कै, हरत कलमष हैं ॥
 सेनापति नर होत ताही तैं निडर, डर
 तातैं तू न कर, वर करुना वरष हैं ।
 अति अनियारे चंद-कला से उजारे, तेई
 मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख हैं^१ ।

परमार्थ-साधन करने के लिए लोभ अनेक प्रकार के उपाय किया करते हैं । कोई तीर्थ-सेवन करता है, कोई बाल्यकाल से ही घर-द्वार छोड़ कर पंचाग्नि तप करता है, कोई सुखों को त्याग कर अष्टांग-योग साधन करता है । किंतु भक्त क्या करता है ? सेनापति कहते हैं कि हम तो सुख की नींद सोते हैं, क्योंकि सांसारिक कष्ट तो हमें छू तक नहीं जाते । हमारे दुःखों का अनुभव हमें न होकर राम को होता है—

कोई परलोक सोक भीत अति वीतराग
 तीरथ के तीर वास पी रहत नीर ही ।
 कोई तपकाल वाल ही तैं तजि गेह-नेह,
 आगि करि आस-पास जारत सरीर ही ॥
 कोई छाड़ि भोग, जोग धारना सौं मन जीति,
 प्रीति सुख-दुख हू मैं साधत समीर ही ।
 सोवै सुख सेनापति सीतापति के प्रताप,
 जाकी सब लागै पीर ताही रघुवीर ही^२ ॥

भक्तों को इस विचार से जितना सुख तथा धैर्य प्राप्त होता है उतना किसी दूसरी बात से नहीं । भक्त हृदय मीरा ने भी अपने काव्य में इसी

१. पंचवी तरंग, छंद ३६

२. पंचवी तरंग, छंद १६

प्रकार की भावना प्रकट की है—

हरि तुम हरौ जन की भीर ।

द्रौपदी की लाज राखी तुम बढ़ायौ चीर ॥

दास मीरा लाल गिरिधर दुख जहाँ तहँ पीर ॥

भक्त के ऊपर कोई कष्ट पड़ा नहीं कि भगवान् को उस कष्ट की पीड़ा का अनुभव होने लगा । उसे थोड़ी देर भी पीड़ित होने देना उन्हें मंजूर नहीं ।

भगवान् की भक्तवत्सलता तथा विशालता का अनुभव हो जाने पर जब भक्त अपनी ओर देखता है तो उसका हृदय आत्मग्लानि तथा पश्चाताप से भर जाता है । कहाँ भगवान् इतने महान् और कहाँ हम इतने नीच ! उसे इस बात पर आश्चर्य होने लगता है कि हम भक्त कहलाए कैसे ? भगवान् ने हमें 'सेवक' का पद क्या सोच कर दिया—

गिरत गहत बांह, घाम मैं करत छांह,

पालत विपत्ति मांह, कृपा-रस भीनौ है ।

तन कौं बसन देत, भूख मैं असन, प्यासे

पानी हेतु सन बिन मांगे आनि दीनौ है ॥

चौकी तुही देत अति हेतु कै गरुड़केतु !

हौं तो सुख सोवत न सेवा परबीनौ है ।

आलस की निधि, बुधि बाल, सु जगतपति !

सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है^१

‘रामरसायन’ में दैन्य की यह भावना प्रायः सर्वत्र ही पाई जाती है । केवल एक कवित्त ऐसा है जहाँ इस भावना का अभाव है और भक्त तार्किकों के रूप में देखा जाता है । वह भगवान् से कहता है कि यदि यही बात निश्चित रही कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है तब तो हम स्वयं ब्रह्म ठहरते हैं, तुम्हारा ब्रह्मत्व किस बात में रहा—

तुम करतार जन रच्छा के करनहार,

पुजवन हार मनोरथ चित्त चाहे के ।

यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,

हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के ॥

जौ कौहू कहाँ कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के ।
आपने करम करि हौं ही निवहौंगो, तौव
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ?^१ ॥

इस कवित्त पर विचार करते समय सेनापति की प्रकृति पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। वे स्वभाव से गर्विष्ठ थे जैसा कि उनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। 'रामरसायन' में ही ऐसे छंद हैं जिनसे कवि की स्वाभिमानी प्रकृति लक्षित होती है। भक्ति के क्षेत्र में यह गर्व बहुत कुछ दब गया है, केवल दो एक स्थलों पर उसका थोड़ा सा आभास मिल जाता है।

'रामरसायन' में एक अन्य प्रकार की कठिनाई भी उपस्थित होती है। एक कवित्त में कवि मूर्ति-पूजा का खंडन करता हुआ दिखलाई पड़ता है। वह दृष्टि को अंतर्मुखी बनाने का उपदेश देता है, क्योंकि पुष्पों में ढकी हुई प्रतिमा को भगवान् मानना भ्रम है। वह 'निरंजन' से परिचय प्राप्त करने का उपदेश देता है—

धातु, सिला, दार निरधार प्रतिमा कौं सार,
सो न करतार तू विचार बैठि गेह रे ।
राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है,
जीभ कौं निरंतर जपाउ तू हरे हरे ! ॥
मंजन विमल सेनापति मन-रंजन तू,
जानि कै निरंजन परम पद लेह रे ।
कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है बीच देहरे ? कहा है बीच देह रे ?^२ ॥

किंतु इन विचारों को स्वयं सेनापति का नहीं कहा जा सकता। यह तो देशकाल का प्रभाव है जिससे प्रभावित होकर कवि उक्त कवित्त लिख गया है। सेनापति के समय में निर्गुण भक्ति का काफी प्रचार था। गोस्वामी जी ने लोगों में फैली हुई इस विचार-धारा का स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया है। वे भगवद्भक्ति की चरम सीमा तक पहुँच गए थे, अतः उनके काव्य में निर्गुण-

१. पाँचवी तरंग छंद २६

२. पाँचवी तरंग, छंद ३१

संप्रदाय का रंग चढ़ना असंभव था। किंतु साधारण स्थिति के वैष्णवों का इन भावनाओं से कभी-कभी प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था। यही नहीं, प्रेम-साधना के उच्च आसन पर बैठी हुई मीरा की ओर भी थोड़ा ध्यान दीजिए। वे अपनी टूटी-फूटी शब्दावली में अपने प्रेम की पीर व्यंजित किया करती हैं। पर कभी-कभी 'सुन्नमहलिया', 'अनहद', 'करताल' आदि हठयोग की बातों को भी कह जाती हैं। किंतु जिन्होंने मीरा के काव्य को पढ़ा है वे यही कहेंगे कि मीरा के भोले-भाले हृदय से इन भावनाओं का कोई संबंध न था। देश-काल के प्रभाव के कारण ही उनके काव्य में इस प्रकार के कुछ नाम मिल जाया करते हैं।

'रामरसायन' के अन्य कवित्तों को देखने से भी यह बात बिल्कुल निश्चित हो जाती है कि सेनापति का ध्यान सगुण भगवान् की भक्ति करना था, न कि 'निरंजन' को जानना। उन्होंने निर्गुण सगुण का विवाद ही नहीं उठाया। 'रामरसायन' के पहले ही कवित्त में भगवान् के निर्गुण तथा सगुण स्वरूपों को चुपचाप स्वीकार कर लिया गया है--

दृगन सौ देखै विश्वरूप है अनूप जाकों,

बुद्धि सौ विचारै निराकार निरधार है^१।

शिव के तो सेनापति बड़े भक्त थे। उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ उनका वर्णन किया है। उनके शीघ्र ही संतुष्ट हो जाने वाले गुणों पर वे मुग्ध हो गए हैं--

मोहति उत्तंग, उत्तमंग, मसि मंग गंग,

गौरि अरथंग, जो अनंग प्राकूल है।

देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कट

चाम मारदूल कौं, मदा कर त्रिमूल है ॥

कहा भटकत ! अटकत क्यों न तामों मन ?

जातैं आठ मिद्धि नय निद्धि रिद्धि नूलहैं।

लेत ही चढ़ाइये कौं जाके एक बेल पात,

चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है^२।

१. पौचवी तरंग, छंद १

२. पौचवी तरंग, छंद ४५

वे कहते हैं—

बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ,
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है^१ ।

‘रामरसायन’ में गंगा वर्णन संबंधी लगभग पंद्रह सोलह छंद पाए जाते हैं। वैसे तो गंगा-वर्णन प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से भी किया जा सकता है, किंतु सेनापति कृत गंगा-वर्णन गंगा की प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से नहीं लिखा गया, वरन् भक्ति-भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है। अतएव यह वर्णन शांत रस के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत माना जायगा।

राम के चरणों से गंगा निकली हैं अतः यदि कोई व्यक्ति गंगा जल को स्पर्श करता है तो वह राम के चरणों को भी छूता है—

राम-पद-संगिनी, तरंगिनी है गंगा तातैं
याहि पकरे तैं पाइ राम के पकरियै^२ ।

कवि ने गंगा-माहात्म्य का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ा कर किया है और सुन्दर उक्तियों द्वारा गंगा की बड़ाई की है—

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै,
व्याल उरमाल, आगि भाल सब ही समैं ।
व्याधि के अरंग ऐसे व्यापि रह्यो आधौ अंग,
रह्यो आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं ॥
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात वार,
पैयती न बाकी तिल एकौ कहूँ ईस मैं ।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जो पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं^३ ॥

शिव ने गंगा को सिर पर धारण किया यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो उनकी बुरी गति हो गई होती। उनका आधा शरीर तो पार्वती जी के कब्जे में है, बाकी बचा आधा। यदि विचार कर देखिए तो वह व्याधियों का भांडार हो रहा है—कंठ में काल से भी विकराल विष, हृदय पर सपों की

१. पाँचवीं तरंग, छंद ४४

२. वही, छंद ५५

३. वही, छंद ६०

माला तथा मस्तक पर त्रिलोचन स्थित है। इन भयंकर वस्तुओं के होते हुए भी शिव जी की जो रक्षा हो सकी है वह सुधा से सहस्रगुने प्रभाव वाले गंगा-जल के कारण ही है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सेनापति की भक्ति भावना में हृदय की तल्लीनता और अनुभूतियों की सच्चाई है। अपनी भक्ति-भावना के कारण वे जीवन की उस स्थिति तक पहुँच गए थे जहाँ सांसारिक यातनाएँ मनुष्य के लिए कोई महत्त्व नहीं रखती और हृदय शांत हो जाता है। इसी से वे कलिकाल से कहते हैं कि तू मेरा क्या अपकार कर सकता है? काल भी मुझे नष्ट नहीं कर सकता। भगवान् के दरबार में मेरी पैठ हो गई है। स्वयं राम मुझे अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि मुझे उनकी सेवा करते हुए काफी समय हो चुका है; सीता रानी भी मुझे जानती हैं और लक्ष्मण का मुझ पर अनुराग है; अब विभीषण तथा हनूमान आदि वीर मेरे सामने गर्व नहीं करते, प्रत्युत् मुझे 'बड़ी सरकार' का नौकर समझ कर मेरा आदर करते हैं। जब मैं ऐसे उच्च पद पर पहुँच गया हूँ तो तेरी चिंता मुझे क्या हो—

मोहि महाराज आप नीके पहिचानैं, रानी
जानकीयौ जानैं, हेतु लछन कुमार को ।
विभीषन, हनूमान, तजि अभिमान, मेरौ
करैं सनमान जानि बड़ी सरकार को ॥
ए रे कलिकाल ! मोहि कालौ न निदरि सकै,
तू तो मति मूढ़ अति कायर गँवार को ! ।
सेनापति निरधार, पाइपोस-बरदार,
हों तो राजा रामचंद जू के दरवार को^१ ॥

४—ऋतु-वर्णन

रस-सिद्धान्त के अतर्गत विभाव को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जो ठीक ही है। विभाव के संयोग से ही हृदय में वासना रूप में स्थित रति आदि स्थायीभाव जागरित होते हैं। विभाव दो प्रकार के कहे गए हैं—

भूमिका

१ आलंबन, जो हृदय में किसी भाव-विशेष को प्रवर्तित करते हैं २ उद्दीपन, जो उत्थित मनोविकार को उद्दीप्त करते हैं। शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक नायिका हैं। उसके उद्दीपन विभाव के अंतर्गत कुछ बातें ऐसी मानी गई हैं जो पात्रगत हैं (जैसे नायक अथवा नायिका के अंग-प्रत्यंग, उनकी मनमोहक चेष्टाएँ, उनकी वेश-भूषा आदि) तथा कुछ ऐसी हैं जो पात्रों से बहिर्गत हैं। आचार्यों ने इसी दूसरे प्रकार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत प्रकृति के विशाल सौंदर्य में से वन, उपवन, सरोवर, पट्भृत आदि कुछ प्रमुख रूपों को स्थान दिया है। इस संकुचित दृष्टिकोण के कारण रस निरूपणपद्धति में प्रकृति के उन स्वतंत्र वर्णनों का समावेश न हो सका जिनमें वह स्वयं आलंबन के रूप में दिखलाई पड़ती थी। प्रकृति को उद्दीपन के रूप में चित्रित करने का चलन रीति-ग्रंथों के अधिकाधिक प्रचार के साथ दिन दिन बढ़ता ही गया।

हिंदी साहित्य के आचार्यों ने संस्कृत के रीति ग्रंथों को पैत्रिक संपत्ति के रूप में पाया था और उन्होंने जहाँ उन ग्रंथों की अन्य सभी बातों को अपनाया वहीं प्रकृति-विषयक उपर्युक्त दृष्टिकोण को भी यथावत् रहने दिया। उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आशा करना व्यर्थ ही है, क्योंकि हिन्दी साहित्य में रीति-सिद्धांतों का कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ। अधिकांश कवियों ने संस्कृत ग्रंथों में पाई जाने वाली बातों को ही दोहराया है। विषय के विकास की बात तो बहुत दूर रही, बहुत से ग्रंथों में विषय की स्पष्टता तक पर ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसी परिस्थिति में प्रकृति को जो स्थान संस्कृत-साहित्य-कारों ने दे दिया था उसी का प्रचार हिंदी साहित्य में भी होता रहा।

अपनी स्थिति के अनुरूप सांसारिक वस्तुओं को देखना मानव-समाज के लिए नितांत स्वाभाविक है। बहुधा देखा जाता है कि जब हमारा हृदय क्रोध आदि प्रबल मनोवेगों से आक्रांत रहता है तो साधारण बात पर भी हम रुष्ट हो जाते हैं। हंसमुख व्यक्ति प्रायः सभी को प्रिय होते हैं; किंतु क्रोध से भरे हुए मनुष्य के लिए ऐसे व्यक्ति कुछ भी आकर्षण नहीं रखते। कभी-कभी तो उसे ऐसे व्यक्तियों की हँसी असह्य हो जाती है। विस्तृत जल राशि को लिए हुए वेग से बहती हुई गंगा की धारा को देख कर कौन ऐसा व्यक्ति है जिसका हृदय हर्षान्वित न होता हो? किंतु बाद में बहता हुआ व्यक्ति उसे कालस्वरूप ही देखता है। ग्रीष्म की प्रचंड गर्मी के पश्चात् वर्षाभृत का आगमन सभी

को सुखद होता है, किन्तु जिस दिन अनवरत वृष्टि के कारण किसी व्यक्ति का मकान गिर जाता है तब तो सहसा उसके मुख से यही निकल पड़ता है कि 'आज तो बड़ा दुर्दिन है'। तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार विभिन्न सांसारिक घटनाओं से प्रभावित हुआ करता है और तदनुसार ही अपने को सुखी अथवा दुःखी समझने लगता है। यह तो हुई व्यावहारिक जीवन की बात। काव्य में भी इस प्रकार की भावनाओं का वर्णन किया जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु थोड़ा सा विचार करने पर यह निर्विवाद हो जायगा कि काव्य में इस सिद्धांत को बहुत दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। संसार हमारे सुख तथा दुःख से थोड़ी सहानुभूति प्रकट करे यह तो संभव है, किन्तु हमारी भावनाओं से उसकी भावनाओं का तादात्म्य हो जाय यह आवश्यक नहीं। जिन कारणों से हमें सुख अथवा दुःख का अनुभव हो रहा है, संभव है दूसरों के लिए उनका कोई अस्तित्व ही न हो। अतएव काव्य को इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें केवल हमारी ही नहीं वरन् साधारणतया मानव-समाज के उपयोग की सामग्री वर्तमान हो। इसी को ध्यान में रख कर संस्कृत-साहित्य-कारों ने 'साधारणीकरण' के सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया है जिसका अभिप्राय यही है कि काव्य में वर्णित वस्तु का समावेश इस ढंग से होना चाहिए जिससे कि वह सर्व-साधारण के उपभोग के योग्य बन जाय। कवि को अपने संकुचित व्यक्तिगत वातावरण से ऊँचे उठकर सारे संसार की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही उसकी कविता में ऐसे गुण आ सकेंगे जिनके कारण वह लोक-प्रिय हो सकेगी।

इस विशाल तथा व्यापक दृष्टिकोण को हम हिंदी के कुछ भक्त कवियों में पाते हैं। प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी कहीं-कहीं इसी दृष्टि-विस्तार की झलक मिल जाती है, यद्यपि धर्म-भाव के कारण वह बहुत स्पष्ट रूप में नहीं पाई जाती है। हिंदी के कुछ शृंगारी कवियों की रचनाओं में प्रकृति और भी संकुचित रूप में दृष्टि-गोचर होती है। नायक नायिका के क्रिया-कलापों से ही इन कवियों का विशेष संबंध रहता था। अतएव केलि-कुंज, पुष्प वाटिका, चंद्रोदय, शीतल मंद समीर तथा विभिन्न ऋतुओं के स्थूल स्वरूपों तक ही इनकी दृष्टि जाती थी और वह भी नायक-नायिका के मन में उत्थित भावों को उद्गीत करने के विचार से। इन कवियों की दृष्टि के अनुसार यदि शीतल समीर चलती है तो विरही जनो को जलाने के लिए, पुष्प खिलते हैं तो किसी नायिका के केशपाश

भूमिका

को सजाने के लिए और कोयल बोलती है तो नायिका को प्रियतम का स्मरण दिलाने के लिए ।

प्रचलित परंपरा के अनुसार सेनापति ने भी प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में ही किया है । उनके बारहमासे के अधिकांश कवित्त उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखे गये हैं । किंतु उनकी ऋतु संबंधी रचना को भली प्रकार देखने से यह विदित होता है कि प्रकृति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था, यद्यपि परंपरा तथा साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण वह बहुत संकुचित दिखलाई पड़ता है । कई स्थलों पर प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित होकर कवि उनके चित्रण करने का उद्योग करता है पर परंपरा के कारण उद्दीपन की भावना अज्ञात रूप से आ जाती है—

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ
जोन्ह कौं प्रकास सोभा ससि रमनीय कौं ।
विमल अकास, होत वारिजविकास, सेना-
पति फूले कास हित हंसन के हीय कौं ॥
छिति न गरद, मानौं रँगें हैं हरद सालि
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं ॥
मत्त हैं दुरद, मिथ्यौ खंजन दरद, रिनु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं^१ ॥

कवि यहाँ पर शरदऋतु के मनमोहक स्वरूप से प्रभावित है । स्वच्छ आकाश, फूला हुआ कास तथा हल्दी के से रंग में रँगें हुए जड़हन धानों को देख कर वह मुग्ध हो गया है । ‘हरि पीय’ का स्मरण तो परंपरा के अनुरोध से हुआ है और कवि ने उसका जिक्र यों ही कर दिया है । वास्तव में उसका ध्यान शरदागम की ओर ही है ।

सेनापति कृत बारहमासे में सभी जगह उद्दीपन का पुट पाया जाता हो ऐसी बात नहीं है । ऐसे भी छंद हैं जिनमें कवि प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण करने में संलग्न है । सेनापति ग्रीष्मऋतु से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं । भारतवासियों के लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक भी है क्योंकि पश्चिमी देशों की अपेक्षा यहाँ ग्रीष्म की प्रखरता बहुत अधिक रहती है । देखिए यहाँ पर कवि

ने कैसी काव्योचित भावुकता के साथ ग्रीष्म का वर्णन किया है—

वृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है ।
तचति धरनि, जग जरत भरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी पंछी विरमत है ॥
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है ।
मेरे जान पौनों सीरी ठौर कौं पकरि कौनों,
घरी एक बैठि कहुँ घामै बितवत है^१ ॥

दोपहर ढलने पर अर्थात् दो बजे के लगभग कभीकभी हवा एकदम बन्द हो जाया करती है । उस समय की उमस से सारा संसार व्याकुल हो जाता है । इसी को लक्ष्य करके कवि कल्पना करता है कि मानो पवन भी, ग्रीष्म के भीषण ताप से त्रस्त होकर, किसी स्थान में बैठ कर, थोड़ा विश्राम कर रहा है । ऐसे सुन्दर वर्णन शृंगारी कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलेंगे । बहुधा होता यह है कि ऋतु अथवा अन्य किसी प्राकृतिक दृश्य का चित्रण करने के लिए जहाँ उन्होंने कलम उठाई वहीं एक सिरे से वस्तुओं का नाम गिनाना प्रारम्भ कर दिया । जो जितनी वस्तुओं को गिना सका उसने अपने को उतना ही कृतकृत्य समझा । ‘कविप्रिया’ में केशवदास ने वस्तुओं के वर्णन के लिए अनेक ‘सूत्र’ बताए हैं । यदि तालाब का वर्णन करना है तो निम्नलिखित वस्तुओं का वर्णन कर दीजिए—

“ललित लहर, वग, पुष्प, पशु, सुरभि समीर, तमाल ।
करभ केलि, पंथी प्रकट, जलचर बरनहु ताल ॥”

इसी प्रकार सरिता, बाटिका, आश्रम, ग्राम तथा ऋतुओं के संबन्ध में कुछ थोड़े से नाम गिना दिए गए हैं और उनके वर्णन करने का उपदेश दिया गया है । किंतु कदाचित् कवि-कर्म इतना सरल नहीं है जितना उक्त सूत्र देखने से प्रतीत होगा । यदि कुछ बातों को गिना देने से ही किसी दृश्य का वर्णन हो जाता तो कविता करना नितांत सरल व्यापार हो गया होता । किसी दृश्य के चित्रण करने के लिए केवल ‘अर्थ-ग्रहण’ करा देने से काम नहीं

चलता, उसका 'चित्र-ग्रहण' कराना अत्यंत आवश्यक है^१। कवि को वर्ण्य-वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं का अधिकाधिक संख्या में परिगणन कराना भी अनिवार्य नहीं कहा जा सकता। यदि कवि चाहे तो वह कुछ मुख्य-मुख्य बातों को चुन कर उन्हीं के द्वारा अपना काम चला सकता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि कवि जो वस्तुएँ किसी दृश्य को पूर्ण करने के लिए चुनता है वे ऐसी होनी चाहिए कि उनके द्वारा उस दृश्य का पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण हो जाय। उदाहरणार्थ क्वार की वर्षा का यह चित्र लीजिए—

खंड खंड सब दिगमंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं सृङ्ग फटिक पहार के।
अम्बर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल कियौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के^२॥

यहाँ पर कवि ने क्वार की वर्षा के संबंध में तीन-चार प्रमुख बातों की ओर संकेत किया है। क्वार के मेघ प्रायः अधिक विशाल नहीं होते। वर्षाऋतु के मेघों के समान न तो वे दीर्घाकार होते हैं और न उनका वर्ण ही बहुत काला होता है। उनमें शुभ्रता ही प्रधान रूप से दिखलाई देती है। इसी से कवि ने बादलों का वर्ण स्फटिक, पहल तथा चाँदी आदि का सा कहा है। क्वार की वर्षा अधिकतर थोड़े समय तक ही होती है। वर्षा की सी कई दिनों तक चलने वाली झड़ी जरा कम देखने में आती है। दूसरे चरण में रक्खा हुआ 'छिन' शब्द इसी ओर संकेत कर रहा है। उत्तरी भारत में वर्षाऋतु में तो प्रायः पुरवा हवा ही चलती है। कभी-कभी उत्तरीय वायु भी चला करती है। किंतु क्वार में हवा का यह रुख बदल जाया करता है और

१. आचार्य प० रामचंद्र शुक्ल: "काव्य में प्राकृतिक दृश्य" ('गद्य मुक्ताहार' पृष्ठ १२८)

२. तीसरी तरंग, छंद ३८

पछुवा हवाएँ चला करती हैं। इसी बात पर ध्यान रख कर कवि ने बादल को पूरव की ओर भागता हुआ चित्रित किया है। कहना न होगा कि इन छोटी किंतु महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश करके कवि ने वास्तव में क्वॉर की वर्षा का स्वरूप खड़ा कर दिया है। यदि श्रावण मास की वर्षा के चित्र से इसका मिलान कीजिए तो भेद और भी स्पष्ट हो जायगा—

गगन-अँगन घनाघन तै सघन तम,
सेनापति नैक हू न नैन मटकत हैं।
दीप की दमक, जीगनान की भमक छाँड़ि
चपला चमक और सौं न अटकत हैं ॥
रवि गयो दबि मानों ससि सोऊ धसि गयो,
तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत हैं।
मानों महा तिमिर नै भूलि परी बाट ताते
रवि ससि तारे कहूँ भूले भटकत हैं^१ ॥

ऋतु-वर्णन में वास्तविकता का यह स्वरूप हिंदी साहित्य में बहुत कम कवियों की रचनाओं में पाया जाता है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सेनापति ने प्रकृति का निरीक्षण किया था। काव्य-ग्रंथों में पाये जाने वाले ऋतुवर्णनों के आधार पर ही उन्होंने अपना बारहमासा नहीं लिखा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सेनापति का ऋतु-वर्णन सामाजिक परिस्थिति से बहुत प्रभावित है। हिंदी साहित्य की अन्य ऋतु-संबन्धी रचनाओं के संबन्ध में भी यह बात बहुत कुछ सच है। रीतिकाल के कवियों में से बहुतों का संबन्ध राज-दरबारों से रहा करता था। राजसी ठाट-बाट के दृश्य नित्य ही उनकी आँखों के सामने रहते थे। समाज में ये ही दृश्य भौतिक सुख के आदर्श माने जाते होंगे और साधारण जनता में इनके अनुकरण करने का चलन भी खूब रहा होगा। स्वभावतः कविगण अपनी रचनाओं में इन्हीं आदर्श मानी जाने वाली बातों का चित्रण भी करते रहते थे। व्यावहारिक दृष्टि से भी राजवैभव आदि का चित्रण करना उनके लिए आवश्यक होता होगा क्योंकि अपने संरक्षक को प्रसन्न करना उनके लिए अत्यंत आवश्यक था। इसीलिए सेनापति के ऋतु-वर्णन में प्रत्येक ऋतु में राज-महलों की स्थिति

विशेष के वर्णन पाये जाते हैं । जेठ के निकट आते ही खसखानों और तहखानों की मरम्मत होने लगती है, ग्रीष्म की ताप से बचने के लिए शीतोपचार के उपायों की क्रिा होती है—

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल,
ताख तहखाने के सुधारि भारियत हैं ।
होति है मरम्मति त्रिविध जल-जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं ॥
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं ।
ग्रीष्म के वासर बराइवे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सन्धारियत हैं^१ ॥

इसी प्रकार अगहन मास में 'प्रभु' लोगों के उपभोग की सामग्री का वर्णन पाया जाता है—

प्रात उठि आइवे कौं, तेलहि लगाइवे कौं,
मलि मलि न्हाइवे कौं गरम हमाम है ।
ओढ़िवे कौं साल, जे विसाल हैं अनेक रंग,
वैठिवे कौं सभा, जहाँ सूरज को घाम है ।
धूम को अरगर, सेनापति सांधो सोरभ को,
सुख करिवे कौं छिति अन्तर कौं धाम है ।
आए अगहन हिम-पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत विसराम है^२ ॥

किन्तु कवि की दृष्टि सदा बड़े बड़े रंगीन दुशालों तथा गरम हम्मामों तक ही सीमित नहीं रही है; कभी कभी आग जला कर अलाव तापते हुए साधारण स्थिति के मनुष्यों पर भी पड़ गई है—

सीत को प्रवल सेनापति कोपि चढ्यौ दल,
निवल अनल, गयो सूर सियराइ कै ।

१. तीसरी तरंग, छंद १०

२. तीसरी तरंग, छंद ४३

हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
 रही है गरम भौन कोनन में जाइ कै ॥
 धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
 हिए सौं लगाइ रहैं नैक मुलगाइ कै ।
 मानौं भीत जानि, महासीत तैं पसारि पानि,
 छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै १ ॥

मानव-जीवन की विभिन्न स्थितियों में प्रवेश करके उनका सहृदयता पूर्वक अनुभव करना ही सच्ची भावुकता है और बिना इस प्रकार की भावुकता के काव्य का वह सार्वभौम रूप खड़ा ही नहीं हो सकता जिसमें मनुष्य-मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाली शक्ति संचित रहती है। साधारण ग्रामवासियों के लिए राजमहलों के से शाल-दुशाले कहाँ ? लकड़ी अथवा कंड़े आदि की धुआँ देती हुई अग्नि ही उनके लिए बहुत है। धुएँ के लगने से उनके नेत्रों से पानी बहता जाता है, फिर भी सर्दों के कारण वे आग पर गिरे पड़ रहे हैं। अलाव के चारों ओर हाथ फैला कर बैठे हुए व्यक्ति की दृष्टि से अंतिम चरण की उत्प्रेक्षा भी बहुत ही उपयुक्त हुई है। 'गरम भौन कोनन में जाइ कै रही है'—कितना सच्चा निरीक्षण है।

सेनापति के ऋतु-वर्णन में ऋतुओं के उत्कर्ष को वर्णित करने की चेष्टा विशेष रूप से देखी जाती है। ऐसे वर्णन अलंकार-प्रधान हो गये हैं। अतएव अलंकारों पर विचार करते समय ही उन पर भी थोड़ा विचार किया जा सकेगा।

५—श्लेष-वर्णन

हिन्दी साहित्य में श्लेष प्रधानतया शब्दालंकार के रूप में ही पाया जाता है। सेनापति ने भी शब्द-श्लेष की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। अर्थ श्लेष का एक भी उदाहरण 'कवित्त-रत्नाकर' में नहीं पाया जाता है। सेनापति को शब्द-श्लेष इतना प्रिय था कि उन्होंने 'कवित्त-रत्नाकर' की पहली तरंग में ही अपनी श्लिष्ट रचनाओं को रखा है।

किसी भी श्लिष्ट छंद को पढ़ते समय हम सर्व-प्रथम यह जानना

चाहते हैं कि कवि ने किन दो बातों का वर्णन किया है। इस बात को जाने बिना शिल्प छंदों के पढ़ने में कुछ भी आनंद नहीं आ सकता है। प्रायः प्रत्येक शिल्प छंद में कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिन्हें हम उस छंद की 'कुंजी' कह सकते हैं, क्योंकि उन्हीं के द्वारा उसके दोनों पक्षों का पता चलता है। इस दृष्टि से 'कवित्त-रत्नाकर' के शिल्प छंदों को हम कई रूपों में पाते हैं। सेनापति की शिल्प रचनाओं के वास्तविक स्वरूप को मनोगत करने के लिए यह आवश्यक है कि इन विभिन्न रूपों से कुछ परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

वर्णन शैली के विचार से पहली तरंग के लगभग आधे कवित्त ऐसे हैं जिनमें अर्थालंकारों का मेल अनिवार्य रूप से हुआ है। अर्थालंकारों में भी समता-सूचक अलंकार ही प्रचुरता से पाये जाते हैं। कवि ने इन समता-सूचक अलंकारों को बहुधा अंतिम चरण में रक्खा है और ये ही वास्तव में शिल्प कवित्तों की 'कुंजी' हैं, क्योंकि इनके द्वारा व्यक्त किये गए उपमेय तथा उपमान उन कवित्तों के दोनों पक्षों को बतलाते हैं। इनमें उपमेय तो प्रधान रूप से नायिका ही है, किंतु उपमान बड़े विचित्र रखे गये हैं। उदाहरणार्थ एक जगह नायिका कामदेव की पगड़ी के समान कही गई है—

पैयै भली घरी तन मुख सब गुन भरी
नूतन अनूप मिहीं रूप की निकई है।
आछी चुनि आई कैयौ पेंचन सौं पाई प्यारी
ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यों त्यों मूड़हि चढ़ाई है ॥
पूरी गज गति बरदार है सरस अति
उपमा सुमति सेनापति बनि आई है।
प्रीति सौ बांधै बनाइ राखै छवि थिरकाइ
काम की सी पाग विधि कामिनी बनाई है^१ ॥

इसी प्रकार कहीं वह कामदेव की बाटिका के समान है तो कहीं मोहर के समान; कहीं फूलों की अथवा नवग्रहों की माला है तो कहीं कान में पहनने की लौंग। यदि सेनापति ने बीसवीं शताब्दी में कविता की होती तो उन्हें, संभवतः, उनकी नायिका या तो बंब बरसाते हुए किसी हवाई जहाज के समान जान पड़ती अथवा सायंकाल के समय बिजली की रोशनी में जगमगाती हुई किसी बाजार के रूप में दिखलाई पड़ती। उपर्युक्त प्रकार के उपमानों के संयोग

से कई कवित्त बड़े ही बेढंगे हो गए हैं। ऐसे कवित्तों में बहुधा हुआ यह है कि उनके कुछ शब्द एक पद में ठीक लग पाते हैं तथा कुछ केवल दूसरे पद में। उपमेय तथा उपमान में किसी प्रकार का साम्य न होने के कारण ऐसे शब्द बहुत कम मिलते हैं जो दोनों पदों में अच्छी तरह लग जाते हों। फलतः शब्दों को तोड़ मरोड़ कर उन्हें किसी भाँति दोनों पदों में लगाने का प्रयत्न किया गया है। हिंदी के कुछ प्राचीन कवियों की रचनाओं में चमत्कार-प्रदर्शन की यह असाधारण प्रवृत्ति चरम सीमा तक पहुँचा दी गई है। तत्कालीन वातावरण भी कुछ ऐसा ही हो गया था कि काव्य में बिना कुछ विचित्रता हुए उसका कोई मूल्य ही नहीं समझा जाता था। जो अपनी 'कविताई' में जितना ही अधिक चमत्कार दिखला सकता था उसे अपनी लेखनी पर उतना ही अधिक गर्व होता था। ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर सेनापति ने स्थान स्थान पर गर्वोक्तियाँ की हैं—

सेनापति बैन मरजाद कविताई की जु
हरि, रवि अरुन, तमी कौं वरनत हैं^१ ॥

सेनापति के उन श्लेषों में कुछ अधिक सरसता है जिनमें ऐसे समता-सूचक अलंकारों का मिश्रण हुआ है जिनके उपमेयो तथा उपमानों में किसी न किसी प्रकार का सादृश्य है। बात यह है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों की रमणीयता सादृश्य पर ही निर्भर है। उपमेय तथा उपमान में किसी न किसी प्रकार का साम्य होना नितांत आवश्यक है। जहाँ कवि ने इस बात पर ध्यान दिया है वहाँ शब्द-श्लेष जैसे कृत्रिम अलंकार में भी पर्याप्त सरसता आ गई है—

तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे
दूर कौं चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के ।
लागत विविध पक्ष सोहत हैं गुन संग
खवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के ॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके
देग विधि जात मन मोहैं नर नारी के ।

सेनापति कवि के कवित्त विलसत अति

मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के^१ ॥

यहाँ कवित्तों तथा बाणों में 'तुक', 'फल' 'पत्त' तथा 'गुन' आदि शब्दों का ही साम्य नहीं है, दोनों का लक्ष्य-स्थान एक ही है। जैसे बाण प्रत्यंचा से विलग होते ही वैरी के हृदय को विद्ध कर देता है वैसे ही प्रसाद गुण से पूर्ण कवित्त भी शीघ्रता से हृदय पर चोट करता है। हर्ष की बात है कि इस तरह के कई कवित्त पहिली तरंग में मिलते हैं। इनमें मस्तिष्क की करामात दिखलाने के अतिरिक्त हृदय से भी काम लिया गया है, इसी से इनमें काफ़ी सरसता तथा स्वाभाविकता पाई जाती है।

ऐसे कवित्तों के संबंध में एक और बात पर विचार कर लेना आवश्यक है और वह यह कि इनमें शब्दालंकार को प्रधान स्थान मिलना चाहिए अथवा अर्थालंकार को? अर्थात् उपर्युक्त कवित्त में श्लेष को उत्प्रेक्षा का पोषक मानना उचित होगा अथवा उत्प्रेक्षा को श्लेष का। भिखारीदास के अनुसार ऐसे स्थल पर श्लेष को ही प्रधान मानना चाहिये क्योंकि कवि का प्रधान उद्देश्य समता दिखलाना नहीं, वरन् श्लेष का चमत्कार दिखलाना है^२। यह मत बहुत उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि अलंकार वर्णन-शैलियाँ हैं और वर्णन-शैली की दृष्टि से ही अंगी तथा अंग का निराकरण करना समीचीन होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है श्लेषों में अंतिम चरण में सूचित समतासूचक अलंकारों द्वारा ही दोनों पक्षों का पता चलता है। उपर्युक्त कवित्त में अंतिम चरण की उत्प्रेक्षा द्वारा हमें यह विदित हो जाता है कि उसमें कवित्तों तथा बाणों का वर्णन है और तब दोनों पक्षों का अर्थ स्पष्ट होता है। प्रधानता उत्प्रेक्षा की रहती है न कि श्लेष की। अतएव सारे कवित्त में व्याप्त होते हुए भी श्लेष को अंग तथा उत्प्रेक्षा को अंगी मानना ठीक जान पड़ता है।

उद्भट आदि कुछ संस्कृत के आचार्यों ने भी ऐसे छंदों में श्लेष को ही प्रधानता दी है। उनके मतानुसार यदि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि को इस प्रकार श्लेष का बाधक मान लिया जायगा तो श्लेषालंकार का अस्तित्व ही

१. पहली तरंग, छंद ६

२. भिखारीदास : 'काव्यनिर्णय' (श्लेषालंकारादि वर्णन, दोहा ८)

न रह जायगा क्योंकि अर्थालंकारों से विविक्त शुद्ध श्लेष हो ही नहीं सकता । जहाँ श्लेषालंकार होगा वहाँ कोई अर्थालंकार भी होगा । मम्मट आदि आचार्यों ने इस मत का खंडन किया है । उन्हें ^{२५} श्लेष की स्थिति बिना किसी अर्थालंकार की सहायता के भी हो सकती है । फलतः उन्होंने ऐसे स्थल पर अर्थालंकार को श्लेष का बाधक मान कर उसे अंगी माना है तथा श्लेष को अंग माना है ।

उपर्युक्त प्रकार के श्लिष्ट कवित्तों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवित्त मिलते हैं जिनकी 'कुंजी' अंतिम चरण में प्रयुक्त किसी एक शब्द में रहती है । जैसे निम्नलिखित कवित्त के अंतिम चरण में प्रयुक्त 'धनश्याम' शब्द से यह विदित होता है कि कवि का उद्देश्य कृष्ण तथा मेघों का वर्णन करना है—

अखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम
रोम सरसाती तन सरस परस ते ।
रावरे अधीन तुम बिन अति दीन हम
नीर हीन मीन जिमि काहे कौं तरसते ॥
सेनापति जीवन अधार निरधार तुम
जहाँ कौं ढरत तहाँ दूटत अरस ते ।
उनै उनै गरजि गरजि आए धनश्याम
ह्वै कै वरसाऊ एक बार तौ वरसते^१ ॥

कुछ कवित्तों में अंतिम चरण में प्रयुक्त किसी शब्द को तोड़ने से दोनों पदों का पता चलता है । जिन कवित्तों में समूचे शब्दों से ही दोनों अर्थ ज्ञात होते हैं उन्हें अभग-श्लेष कहते हैं । इसके विपरीत जिनमें शब्दों को तोड़ कर दोनों अर्थों का पता लगाया जाता है उन्हें सभंग श्लेष कहते हैं । सभंग-पद-श्लेष तथा अभग-पद-श्लेष पृथक् पृथक् कवित्तों में पाए जाते हैं ऐसी बात नहीं है । बहुधा दोनों का संमिश्रण हो जाया करता है ।

यहाँ सेनापति के अभग-श्लेषों की एक विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक है । हिंदी साहित्य के कई कवियों ने ऐसे अवसरों पर संस्कृत का सहारा लिया है । केशवदास के श्लेषों में यह बात अधिक पाई जाती है । संस्कृत के कठिन शब्दों के सहारे लिखे हुए श्लिष्ट कवित्तों में जटि-

लता की मात्रा बढ़ जाती है और वे हृदय-ग्राही नहीं हो पाते हैं। संस्कृत से परिचित होते हुए भी सेनापति ने संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग बहुत कम किया है। उन्होंने संस्कृत के उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है जो भाषा में प्रचलित हो गए थे और जिनके समझने में साधारण पढ़े लिखे व्यक्तियों को कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती थी।

सभंग-श्लेषों के संबन्ध में परिस्थिति कुछ भिन्न है। इनमें पाठक को शब्द को भंग करके दोनों पक्षों को जानना पड़ता है। इससे इनके समझने में कभी-कभी कठिनाई होती है। किंतु कवि ने सभंग श्लेष लिखने में सहृदयता से काम लिया है। शब्दों में थोड़ा सा परिवर्तन करके पढ़ने से दोनों पक्षों का पता चल जाता है—

सदा नंदी जाकौ आसा कर है विराजमान
नीकौ घनसार हूँ तै वरन है तन कौं
सैन मुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गोरी की रति जो मथन मदन कौं ॥
जो है सब भूतन कौं अन्तर निवासी रमै
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं ।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव कौ भेद छाँड़ि मन कौं १ ॥

अंतिम पंक्ति के 'उमाधव' शब्द से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि एक पक्ष में शिव का वर्णन है। 'उमाधव' के 'उ' को पृथक् कर 'बहुधाउ माधव' कर लेने से यह भी सहज ही में विदित हो जाता है कि दूसरे पक्ष में विष्णु का वर्णन है। कवि ने कई कवित्तों में साधारण से साधारण शब्दों को लेकर सभंगपद-श्लेष की सहायता से बड़ी ही सरस रचना की है—

अधर कौं रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं
सेनापति रूप सुधाकर तैं सरस है ।
जे बहुत धन के हरन हारे मन के हैं
हीतल मैं राखे सुख सीतल परस है ॥

आवत जिनके अति गजराज गति पावै
मंगल है सोभा गुरु सुन्दर दरम है ।
और है न रस ऐसी सुनि सखी साँची कहौं
मोतिन के देखिये कौं जैसो कछू रस है^१ ॥

इस कवित्त में 'मोतिन के' को 'मो तिनके' कर देने से दूसरे पद की सूचना मिलती है। नायिका अपनी सखी से कहना चाहती है कि मुझे कृष्ण के दर्शन से जैसा आनन्द मिलता है वैसा और किसी बात से नहीं मिलता। गुरुजनों के संकोच से स्पष्ट रूप से नायक की चर्चा करना उसके लिए संभव न था। इसलिए प्रकाश में तो वह मोतियों की प्रशंसा करती है, किंतु श्लिष्ट वचनों द्वारा गुप्त रूप से अपने हृदय की बात भी प्रकट कर देती है। कृष्ण का नाम न लेकर 'तिनके' द्वारा केवल संकेत मात्र कर देने में गंभीरता, लज्जा तथा स्त्रीत्व की जो भावनाएँ व्यंजित होती हैं उन्हें सहृदय जन सहज ही में देख सकते हैं। इस ढंग के सभंग-पद-श्लेष सेनापति की अपनी चीज़ हैं और हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं।

कुछ श्लिष्ट कवित्तों के विभिन्न पद्यों को जानने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है। उनमें स्वयं कवि ने स्पष्टतया लिख दिया है कि मैं अमुक बातों का वर्णन कर रहा हूँ—

तारन की जोति जाहि मिले पै विमल होति
जाके पाइ संग मैं न दीप सरसत है ।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अथ
सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है ॥
कामना लहत द्विज कौंसिक सरय विधि
सज्जन भजत महातम हित रत है ।
सेनापति धैन मरजाद कविताई की जु
हरि रवि अरुन तमी कौं वरनत है^२ ॥

अंतिम चरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने विष्णु, लाल सूर्य तथा रात्रि का वर्णन किया है। सेनापति ने जहाँ दोनों पद्यों को स्पष्ट रूप से

१. पहली तरंग, छंद ६२

२. पहली तरंग, छंद ७४

नहीं भी कहा है वहाँ किसी दूसरे ढंग से इस बात को व्यक्त कर दिया है। बहुधा वे कह देते हैं कि मैंने अमुक वस्तुओं को एक-सा कर दिखाया है। इस एकीकरण में अधिकतर विरोधी बातें ही रक्खी गई हैं क्योंकि कवि की दृष्टि प्रधानतया चमत्कार की ओर ही रहती थी। किन्हीं दो विरोधी बातों को एक ही कवित्त में वर्णित करने में जो कठिनाइयाँ पड़ती होंगी अथवा पड़ सकती हैं उनका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। एक ही कवित्त में ऐसे शब्दों को खोज कर रखना जिनके द्वारा दो विरोधी बातों का वर्णन हो जाय कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए कवि का भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार होना चाहिए। भाषा में प्रयुक्त साधारण-से-साधारण शब्दों के भिन्न अर्थों से उसे परिचित ही नहीं होना पड़ता है वरन् उपयुक्त अवसर पर उनका उपयोग भी करना पड़ता है। कुछ कवित्तों में विरोधी बातों को लेकर उनका बड़ी सुंदरता से निर्वाह किया गया है—

नाहीं नाहीं करै थोरी माँगे सब दैन कहै
मंगन कौ देखि पट देत वार वार हैं।
जिनकौ मिलत भली प्रापति की घटी होति
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं।
भोगी है रहत विलसत अवनी के मध्य
कन कन जोरै दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति वचन की रचना विचारो जामैं
दाता अरु सूस दोऊ कीने इकसार हैं^१ ॥

निस्संदेह ऐसा 'साफ' श्लेष हिंदी साहित्य में खोजने पर भी न मिलेगा। इस कवित्त के दोनों पक्षों के अर्थ लगाने में विशेष श्रम की आवश्यकता नहीं। शब्दों में थोड़ा हेर-फेर कर दीजिए और दोनों पक्षों का अर्थ निकलता चला जायगा—'नाहीं नाहीं करै'—'नाहीं नाहीं करै,' 'सब जन मन भाए'—'सब जनम न भाए', 'कनक न जोरै'—'कन कन जोरै', 'दान पाठ परिवार हैं'—'दान पाठ परिवा रहें'। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सभंग-श्लेष लिखने में सेनापति को अद्वितीय सफलता मिली है। खेद है कि सेनापति की शिल्प रचना में ऐसे सरल तथा सुबोध छंदों की संख्या अधिक नहीं है।

कवित्त-रत्नाकर

यहाँ पहली तरंग में पाये जाने वाले श्लिष्ट छंदों के कुछ प्रमुख रूपों पर विचार किया गया है। इस संबंध में एक दूसरी बात की ओर ध्यान दिलाना अनावश्यक न होगा। पहली तरंग में दो कवित्त ऐसे पाए जाते हैं जिनमें श्लेषालंकार या तो नाम-मात्र को है अथवा है ही नहीं। निम्नलिखित कवित्त में केवल 'पी रहै दुहू के तन' में सभंग-श्लेष है; बाकी सारे कवित्त में सभंग-पद-यमक है न कि श्लेष—

कुबिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई
पी रहै दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग हम एक रति जोग
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं ॥
कूबरी यौ कल पैहै हम इहाँ कल पैहै
सेनापति स्यामैं समुझै यौ परबीने हैं।
हम वे समान ऊधो कहो कौन कारन तैं
उन सुख मानें हम दुख मानि लीने हैं १ ॥

सभी द्व्यर्थक छंदों में श्लेषालंकार नहीं होता। श्लेषालंकार में एक शब्द एक ही बार प्रयुक्त होता है और उसके दो अर्थ होते हैं। जहाँ कोई शब्द दो अर्थ नहीं भी देता है वहाँ उसे भंग करने के उपरांत दूसरा अर्थ ज्ञात हो जाता है। किंतु जहाँ किसी शब्द की पुनरावृत्ति के कारण दो अर्थ निकलते हैं वहाँ यमक माना जाता है—

वहै शब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है, भेदि अनेकन ठौर २ ॥

अतएव उपर्युक्त कवित्त में सभंग-पद-यमक ही माना जायगा क्योंकि 'लगाई', 'एक रति जोग', 'सूल' तथा 'कल' आदि शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। इसी प्रकार इस कवित्त में—

तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।

१. पहली तरंग, छंद ६६

२. काव्यनिर्णय (गुण निर्णय वर्णन, दोहा ५३)

सूर सभा तेरी जोति होति है सहस गुनी
 एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै ॥
 सेनापति सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी
 निस-दिन चंद चल जगत बखानियै ।
 महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
 तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै^१ ॥

यमक द्वारा प्रथम पंक्ति के दो अर्थ होते हैं । द्वितीय चरण में 'सूर' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है और यमक के कारण इसके दो अर्थ होते हैं । परंतु इस कवित्त में यमक भी गौण रूप से ही है । प्रधानता प्रतीप अलंकार की है जो सारे कवित्त में आदि से अंत तक व्याप्त है । श्लेष तो इसमें कहीं है ही नहीं । उपर्युक्त दो कवित्त ही ऐसे हैं जिनके श्लेष मानने में आपत्ति की जा सकती है । ऐसा जान पड़ता है कि रचना-शैली में साम्य होने से ही कवि ने इन्हें श्लिष्ट कवित्तों के साथ रख दिया है ।

यहाँ तक तो सेनापति के श्लेषों पर कुछ विचार किया गया । इसी संबंध में अन्य अलंकारों पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए । शब्दालंकारों में श्लेष के अतिरिक्त अनुप्रास का आग्रह विशेष देखा जाता है । श्लेष तथा अनुप्रास सेनापति को बहुत प्रिय थे । दूसरी तरंग के अंत में तथा अन्यत्र भी कवि का ध्यान अनुप्रास के चमत्कार की ओर ही है । यहाँ तुकांत-यमक का एक उदाहरण दिया जाता है—

अमल कमल, जहाँ सीतल सर्लल, लागी
 आस पास पारन सर्यान ताल जाति है ।
 तहाँ नव नारी, पंचवान बैस वारी, महा
 मत्त प्रेम-रस आस बनि ताल जाति है ॥
 गावति मधुर, तीनि ग्राम, सात सुर मिलि,
 रही ताननि मैं बसि, बनि ताल जाति है ।
 सेनापति मानौ रति, नीकी निरखत अति
 देखिकै जिनेँ सुरेस बनिता लजाति है^२ ॥

१. पहली तरंग, छंद ७६

२. दूसरी तरंग, छंद ७३

यमक तथा अनुपास आदि का बहुतायत से प्रयोग करने के लिए कवि की भाषा बहुत ही संपन्न होनी चाहिए, क्योंकि यदि ऐसे अवसरों पर उसे उपयुक्त शब्द नहीं मिलेंगे तो वह शब्दों के रूप विकृत करना प्रारंभ कर देगा। सेनापति का भाषा पर अच्छा अधिकार था; इसी से उन्हें अनुपास आदि के लाने में ऐसी कठिनाई कम पड़ती थी। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण ही उनके शब्दालंकारों में कृत्रिमता अधिक नहीं मिलती है। निम्नांकित कवित्त में भाव-पक्ष का लिए हुए, कला-पक्ष का सुन्दरता से निर्वाह किया गया है—

नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति
सेनापति चेत कछू, पाहन अचेत है ।
करम करम करि करमन कर, पाप
करम न कर मूढ़, सीस भयो सेत है ॥
आवै बनि जतन ज्यों, रहै बनि जतनन,
पुन्र के बनिज तन-मन किन देत है ।
आवत विराम ! वैस वीती अभिराम, ताँ
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है^१ ॥

‘रामरसायन’ के अंत में चित्रालंकारों के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। अनेक आचार्यों ने चित्रकाव्य को काव्य ही नहीं माना है। किंतु काव्य-प्रकाशकार ने इसे व्यंग्यार्थ से रहित काव्य का तृतीय भेद माना है और ‘अधम काव्य’ की संज्ञा दी है। यदि वास्तव में देखा जाय तो शब्द-कौतुक के अतिरिक्त ऐसी रचनाओं में और होता ही क्या है? पर कुछ कवियों को इस खेलवाड़ में विशेष आनंद आता था। सेनापति ने एकाक्षर, द्वायाक्षर आदि की आवृत्ति वाले कुछ छंद भी लिखे हैं। इनके द्वारा किसी तरह के चित्र नहीं बनते, इनके पढ़ने में एक विशेष प्रकार की विचित्रता आ जाती है, इसी से भिखारीदास ने इन्हें वाणी का चित्र कहा है। इस प्रकार के छंदों के अर्थ समझने में कहीं-कहीं विशेष कठिनाई होती है।

अर्थालंकारों में स्वभावतः सादृश्य-मूलक अलंकारों की ही अधिकता पाई जाती है। इनमें से भी उगमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक तथा प्रतीप

आदि का बाहुल्य है । नख-शिख वर्णन में प्रतीप का प्रयोग उपमा से भी अधिक हुआ है ।

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में वस्तुप्रेक्षा से विशेष सहायता ली गई है और कवि को अपूर्व सफलता मिली है । शुभ्र ज्योत्स्ना से परिपूर्ण संसार ऐसा जान पड़ता है मानों वह क्षीर-सागर में डूब गया हो—

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-
पति है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं ।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानों मोती अनगन हैं ॥
उदित विमल चंद, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन हैं ।
तिमिर हरन भयो, सेत है वरन सव,
मानहु जगत क्षीर-सागर मगन हैं^१ ॥

जेठ मास की दोपहर अपने सन्नाटे के लिए प्रसिद्ध है । उस समय ग्रीष्म के प्रखर ताप से उत्तप्त होकर प्राणी-मात्र विश्राम करता है, एक तिनका तक नहीं खटकता । इस दृश्य को देख कर कवि कहता है—

लागे हैं कपाट सेनापति रंग-मंदिर के,
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है ।
कोई न भनक है कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी की मानों अधरात है^२ ॥

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में तो वस्तुप्रेक्षा से सहायता ली गई है किंतु ऋतुओं का उत्कर्ष व्यंजित करने के लिए फलोप्रेक्षा तथा हेतूप्रेक्षा का प्रयोग किया गया है । ग्रीष्म की प्रचंड लू से सारा संसार जल जाता है । शीतलता का तो कहीं पता ही नहीं चलता । यदि उसका थोड़ा बहुत अस्तित्व कहीं रह जाता है तो वह तहखानों के भीतर पाया जा सकता है । विधाता ने शीतलता को वहाँ किस लिए छिपा रक्खा है ? इसी लिए कि बीज रूप में थोड़ी शीतलता अवशिष्ट रह जानी चाहिए, क्योंकि उसी के सहारे आगामी

१. तीसरी तरंग, छंद ४०

२. तीसरी तरंग, छंद ६३

शरद ऋतु में शीत रूपी लता का पुनः आरोप किया जायगा—

मानौं सीतकाल, सीत-लता के जमाइये कौं,
राखे हैं विरंचि वीज धरा में धराइ के^१ ।

फलोत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण देखिए—

लाल लाल केसू फूलि रहें हैं विसाल, संग
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि में मिलाए हैं ।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपवन बन धाए हैं ॥
सेनापति माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं ।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
विरही दहन काम क्यैला परचाए हैं^२ ॥

देसू के लाल वर्ण वाले पुष्पों के गुच्छे काली घुंडियों के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानों स्याही में डुबो दिए गए हों । उन पुष्पों पर भ्रमरावली भी आकर बैठ गई है । लाल तथा काले वर्णों के इस दृश्य को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानों कामदेव ने विरहियों को जलाने के लिए ऐसे कोयले सुलगाए हों जो अभी अध-जले हैं ।

वर्षाऋतु के उत्कर्ष का वर्णन हेतूत्प्रेक्षा द्वारा किया गया है । पौराणिकों के अनुसार चौमासे भर विष्णु भगवान शेष-शय्या पर सोया करते हैं । इसी बात को लेकर कवि वर्षाऋतु के उत्कर्ष का वर्णन करता है । उसके अनुसार हरिशयनी का वास्तविक कारण यह है कि चौमासे भर बादलों के घिरे रहने के कारण घोर अंधकार रहता है और विष्णु को यह भ्रम रहता है कि अभी रात्रि कुछ बाकी है, इसी से वे सोया करते हैं !—

चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि

मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै^३ ।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षाओं के अन्य उदाहरण भी पाए जाते हैं । सेनापति

१. तीसरी तरंग, बंद १२

२. तीसरी तरंग, बंद ४

३. तीसरी तरंग, बंद ३१

भूमिका

को भावों तथा व्यापारों को बिना बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किये संतोष नहीं होता है। इस प्रवृत्ति से जहाँ वे अधिक प्रभावित हो जाते हैं वहीं भाव-पक्ष का पल्ला छोड़ देते हैं और अतिशयोक्तियों तथा अत्युक्तियों की ओर झुकने लगते हैं। शिशिरऋतु में दिन छोटे होते हैं तथा रातें बड़ी होने लगती हैं। सेनापति कहते हैं कि माघ में दिन तो होता ही नहीं, उसके दर्शन तो स्वप्न में हो जाया करते हैं !—

अब आयौ माह, प्यारे लागत हैं नाह, रवि
करत न दाह जैसौ अवरेखियत है ।
जानियै न जात, वात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातैं तनको बिसेखियत है ॥
कलप सी राति सो तौ सोए न सिराति क्योंहू,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है ।
सेनापति मेरे जान दिन हू तैं राति भई,
दिन मेरे जान सपने मैं देखियत है ^१ ॥

गंगा-माहात्म्य-वर्णन सभंग-श्लेष से पुष्ट अक्रमातिशयोक्ति द्वारा किया गया है। एक गायक महाशय सुर भर रहे थे। उनके साथ के दो मित्र भी उनके सुर में सुर मिलाकर गाने लगे। गायक महाशय कहना तो यह चाहते थे कि आप लोग सुर न भरिए (‘सुर न दीजै’), किन्तु धोखे से उनके मुख से निकल गया ‘सुरनदी जै’ (गंगा की जय)। वस फिर क्या था, इन शब्दों के कान में पड़ते ही गायक तथा दोनों मित्र क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव हो गए और देवलोक में जा विराजे—

कोई एक गाइन अलापत हों, साथी ताके
लागे सुर दैन सेनापति सुखदाइकै ।
तोही कही आप, सुर न दीजै प्रवीन, हौं अ-
लापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौचित्त चाइ कै ॥
धोखे ‘सुरनदी जै’ के कहत, सुनत, भये
तीन्यौ तीन देव, तीन लोकन के नाइकै ।

गाइन गरुड़-केतु भयौ, द्वै सखाऊ भए

धाता महादेव, बैठे देव-लोक जाइ कै ^१ ॥

गंगा-माहात्म्य-वर्णन करते कवि का ध्यान 'सुरनदी जै' के श्लिष्ट अर्थों की ओर गया और उसे एक अच्छा अवसर हाथ लग गया। 'सुरनदी जै' के चमत्कार को प्रदर्शित करने के लिए एक प्रसंग की अवतारणा करनी पड़ी और परिणाम यह हुआ कि गायक महोदय को, सुर भरने की अपूर्ण इच्छा को लिए हुए ही, अपने मित्रों सहित गोलोक-वासी बनना पड़ा !

अभेद प्रधान सादृश्य-मूलक अलंकारों में अपहृति का प्रयोग अधिक नहीं किया गया है; परन्तु रूपक, भ्रम तथा संदेह आदि बहुतायत से पाए जाते हैं। रूपकों को श्लिष्ट कर देने का आग्रह विशेष देखा जाता है। निरंग रूपकों में तो कवि ने सहज ही में श्लेष का संमिश्रण कर दिया है—

प्रबल प्रताप दीप सात हू तपत जाकौं

तीनि लोक तिमिर के दलन दलत है ।

देखत अनूप सेनापति राम रूप रवि

सत्रै अभिलाष जाहि देखत फलत है ॥

ताहि उर धारौ दुरजन कौं विसारौ नीच

थोरौ धन पाइ महा तुच्छ उछलत है ।

सब विधि पूरौ सुखर सभा रुरौ यह

दिनकर सूरौ उतराइ न चलत है ^२ ॥

परंतु सांग रूपकों में भी श्लेष का पुट दे देने की चेष्टा की गई है। गंगा-वर्णन का एक कवित्त देखिए—

लहुरी लहर दूजी तांति सी लसति, जाके

बीच परे भौर फटिका से सुधरत हैं ।

परे परवाह पानि ही मैं जे वसत सदा

सेनापति जुगति अनूप वरनत हैं ॥

कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि,

देखे उड़ि जात पात-पात हैं नसत हैं ॥

१. पौंचवी तरंग, छंद ६४

२. पहली तरंग, छंद ७५

सोहत गुलेला से बलूला सुरसरि जू के.
लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं^१ ॥

इस कवित्त में 'पानि', 'कोटि' तथा 'कलमष' आदि शब्द श्लिष्ट हैं । 'पानि' का एक अर्थ हाथ तथा दूसरा जल है—जिस प्रकार शिकार खेलते समय 'फटिका' हाथ में ही रहती है क्योंकि उसी में भिट्टी की गोली रख कर चलाई जाती है उसी प्रकार जल का वेग तेज होने पर भौर उस प्रवाह के तेज पानी में ही पड़ा करती है । जैसे कोटि (धनुष-कोटि) रूपी काले ('कलि') काल को देखते ही समस्त काले ('कलमष' अथवा 'कल्माष') कौए उड़ जाते हैं और गोली लग जाने से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही गंगा की तरंग देखने पर कलिकाल के करोड़ों पातक विलीन हो जाते हैं और उनका अस्तित्व तक मिट जाता है ।

श्लेष के संमिश्रण से प्रस्तुत रूपक में थोड़ी जटिलता अवश्य आ गई है, परन्तु उसके द्वारा रूपक की रमणीयता भी अधिक हो गई है । गंगा की तरंग तथा गुलेल के भिन्न अंगों में पाया जाने वाला सादृश्य तथा साधर्म्य और भी स्पष्ट हो गया है ।

सादृश्य-सूचक काल्पनिक संदेह में ही संदेहालंकार माना जाता है । युद्धस्थल में वायुपानों पर बैठे हुए राम तथा रावण कैसे जान पड़ते हैं—

पच्छन कौं धरे किधौं सिखर सुमेर के है,
बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धाहं करत हैं ।
किधौं मारतंड के द्वै मंडल अडंबर सौं,
अंबर मै किरन की छटा बरसत हैं ॥
मूरति कौं धरे सेनापति द्वै धनुरयेद,
तेज रूपधारी किधौं अस्त्रनि अरत हैं ।
हेम-रथ बैठे, महारथी हेम-वानन सौं,
गगन में दोऊ राम-रावन लरत हैं २ ॥

भक्तगण ऐसे तो भगवान् का गुण-गान किया ही करते हैं किंतु कभी कभी वे प्रत्यक्ष में निन्दा करते हुए भी स्तुति करते हैं । सेनापति कहते हैं कि

१. पौंचवीं तरंग, छंद ६४

२. चौथी तरंग, छंद ६४

मैं नहीं कह सकता कि मुझ-सा अधम व्यक्ति इस संसार में कौन है क्योंकि मैं जिसका सेवक हूँ उसकी कैफ़ियत यह है—

धीवर कौं सखा है, सनेही वनचरन कौं,
 गीध हू कौं बंधु सवरी कौं मिहमान है ।
 पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
 छाती विप्र-लात कौं धरैया तजि मान है ॥
 व्याध अपराध-हारी, खान समाधान-कारी,
 करै छरीदारी, बलि हू कौं दरबान है ।
 ऐसौ अवगुनी ! ताके सेइवे कौ तरसत,
 जानियै न कौन सेनापति के समान हैं ^१ ।

सेनापति का ध्यान शब्दालंकारों की ओर ही अधिक था, इसी से ‘कवित्त-रत्नाकर’ में उनकी भरमार है। अर्थालंकारों में जो अधिक प्रचलित से हैं उन्हीं का बाहुल्य है, अन्य अलंकार बहुतायत से नहीं मिलते हैं।

६—भाषा

काव्य के अंतरंग के विचार से ‘कवित्त-रत्नाकर’ की फुटकर रचनाएँ भक्त तथा शृंगारी कवियों की रचनाओं के साथ रक्खी जा सकती हैं किन्तु काव्य के बहिरंग की दृष्टि से वे केवल रीति-ग्रंथकारों की कोटि में ही रक्खी जायेंगी। भक्त कवियों को हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करने का जितना उत्साह रहता था उतना अपनी भाषा को सजाने का नहीं। उनकी भाषा उनके हृदय से निकले हुए उद्गारों से ओत-प्रोत है यद्यपि उसमें अपना निजी सौंदर्य अधिक नहीं है। शृंगारी कवियों की रचनाओं में बाह्य उपकरणों द्वारा भाषा को आभूषित करने का आग्रह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण उनमें वह नैसर्गिक मर्मस्पर्शिता नहीं है जो भक्ति-काल के कवियों के काव्य में मिलती है। ‘कवित्त-रत्नाकर’ की भाषा को भी इसी प्रकार का समझना चाहिए। उसकी भाषा का सौंदर्य भावों की तन्मयता के फल-स्वरूप न होकर अलंकारों की तड़क-भड़क के कारण ही है।

सेति ब्रजभाषा लिखने में बहुत ही दक्ष थे। उनके श्लिष्ट कवित्तों

भूमिका

पर विचार करते समय हम देख चुके हैं कि भाषा के साधारण से साधारण शब्दों द्वारा उन्होंने कितनी सुन्दर रचना की है। ब्रजभाषा से इतना परिचित होने के कारण ही उन्हें शिल्प काव्य लिखने में अपूर्व सफलता मिली है। उनकी भाषा में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों का प्रयोग कम हुआ है। ऐसे छंद कम मिलते हैं जिनका सौंदर्य संस्कृत की शब्दावली पर ही अवलंबित है। संस्कृत-शब्दावली प्रधान एक छप्पय देखिये—

श्री बृन्दावन चंद, सुभग धाराधर सुन्दर ।
 दनुज-बंस-वन-दहन, बीर जदुबंस-पुरंदर ॥
 अति बिलसति बनमाल, चारु सरसीरुह लोचन ।
 बल विदलित गजराज, विहित बसुदेव विमोचन ।
 सेनापति कमला-हृदय, कालिय-फन भूषण चरन ।
 करुनालय सेवौ सदा, गोबरधन गिरवर धरन^१ ॥

विदेशी शब्दों में से कुछ शब्द फ़ारसी भाषा के हैं। इनके भी तद्भव रूप ही मिलते हैं। राजनीतिक कारणों से इनका प्रयोग सर्वसाधारण में भी हो गया था। फ़ारसी शब्द अधिकतर पहली तरंग में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ— पाइपोस (पापोश), बरदार, दादनी, रोसन (रोशन), मिही, आसना (आशना), गोसे (गोशा), ज्यारी (ज्यारी), रुख (रुख) बाजी। दो एक अरबी के शब्द भी मिलते हैं—अरस (अर्श), लिवास, इतबार (एतबार); किंतु इन शब्दों की संख्या बहुत ही सीमित है।

प्रादेशिकता के विचार से ‘कवित्त-रत्नाकर’ की भाषा में खड़ीबोली के कतिपय रूपों का प्रभाव लक्षित होता है। जैसे कालवाची क्रियाविशेषण ‘पीछे’ का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। इसी प्रकार अनिश्चयवाचक सर्वनाम ‘कोई’ तथा ‘कोऊ’ दोनों व्यवहृत हुए हैं। उच्चारण की दृष्टि से भी कुछ शब्दों के रूप खड़ीबोली-पन लिए हुए हैं। पूर्वी प्रयोगों में से पंचमी के परसर्ग ‘सन’ का प्रयोग एक जगह पाया जाता है—

तन कौं बसन देत, भूख मैं असन, प्यासे
 पानी हेतु सन बिन मांगे आनि दीनों है^२

१. पौंचवा तरंग, छंद २५

२. पौंचवी तरंग, छंद २४

इसी प्रकार 'कर' का प्रयोग षष्ठी के परसर्ग के रूप में दो बार हुआ है—

(१) कहा जगत आधार ? कहा आधार प्रान कर ?

(२) सेनापति धुनि महा सिद्ध मुनि जस कर
ताहि मुनि तसकर त्रासनि मरत हैं २

एक स्थान पर 'कवन' (कौन) मिलता है—

को तीजौ अवतार ? कवन बासी भुजंग मुख^३ ?

किंतु ऐसे रूपों का प्रयोग इन उदाहरणों तक ही सीमित समझिए । संभव है खोजने पर कुछ प्रयोग और मिल जायें । आधुनिक दृष्टि से पश्चिमी प्रदेश के लेखकों में इनका पाया जाना आश्चर्यजनक अवश्य है किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर १७वीं शताब्दी की व्रज में इस तरह के कुछ प्रयोगों का मिलना असंभव नहीं है । उपर्युक्त प्रयोगों को छोड़कर 'कवित्त-रत्नाकर' की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है ।

सेनापति की भाषा में प्रसाद तथा ओज गुण प्रधानता से पाए जाते हैं । ओज-पूर्ण भाषा लिखने में सेनापति बहुत निपुण हैं । ओज गुण लाने के लिए उन्होंने कुछ शब्दों के द्वित्व रूपों का भी प्रयोग किया है, जैसे 'अखिव', 'पिखिव', 'कित्ति', 'बुल्लिय', 'टुट्टिय' आदि । किंतु ऐसे शब्द बहुधा छप्पयों में ही मिलते हैं । 'दुज्जन', 'पब्बय' आदि दो-एक शब्दों को छोड़कर कवित्तों में ये बिलकुल नहीं हैं । कवि ने ऐसे अवसरों पर बहुधा अनुप्रास से सहायता ली है । देखिए, हनुमान के गर्व-कथन को कैसे ओज-पूर्ण शब्दों द्वारा कहलाया गया है—

कीजियै रजाइस कौं हरि पुर जाइ सकौं,
पोनों वीर जाइ सकौं जा तन खरोसौ है ।
काहू कौं न डर, सेनापति हौं निडर सदा,
जाके सिर ऊपर जु साईं गम तोसौ है ॥
कुलिस कठोरन कौं देखौं नख-करन कौं,
लाए नैंक पोरन कौं मेरु चून कैसो है ।

१. पाँचवीं तरंग, छंद ६७

२. पहला तरंग, छंद ६०

३. पाँचवीं तरंग, छंद ६८

चूर करौं सोरन कौं, कोटि कोट तोरन कौं
लंका गढ़ फोरन कौं, कोरन कौं मोसो है ^१ ।

माधुर्य की ओर सेनापति का ध्यान अधिक न था । फिर भी कुछ कवित्तों में शब्द-सौंदर्य का विधान किया गया है—

तोर्यो है पिनाक, नाक-पाल बरसत फूल,
सेनापति कीरति बखानै रामचंद्र की ।

लै कै जयमाल सिय बाल है बिलोकी छवि,
दसरथ लाल के बदन-आविद की ॥

परी प्रेम फंद, उर बाढ़यो है अनंद अति,
आछी मंद-मंद, चाल चलति गयंद की ।

बरन कनक बनी, बानक बनक आई,
भक्तक मनक बेटी जनक नरिंद की ^२ ॥

प्रसाद गुण श्लिष्ट रचनाओं को छोड़कर प्रायः सर्वत्र ही प्राप्त होता है । कवि ने 'व्यजना' का उपयोग बहुत कम किया है । लाक्षणिक शब्द भी थोड़े ही हैं । 'कवित्त-रत्नाकर' की भाषा में अभिधेयार्थ ही प्रधान है । श्लिष्ट कवित्तों के दो अर्थ होते हैं, किंतु वे दोनों अर्थ वाच्यार्थ ही रहते हैं, अतएव वहाँ भी अभिधा ही मानी जायगी ।

सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित तथा परिमार्जित है, उसमें शब्दों के विकृत रूप अधिक नहीं मिलते हैं । किंतु एक आध जगह गढ़े हुए शब्द भी देखे जाते हैं—

(१) द्रौपदी सभामें आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
कौरव कुपित कछो काहू कौं न मानहीं ।

लच्छक नरेस पै न रच्छक उठत कोई,
परी है विपत्ति पति लागी पतता नहीं ^३ ॥

(२) धुनि सुनि कोकिल की विरहिनि को किलकी
केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत है ^४ ।

१. चौथी तरंग, छंद ५२

२. चौथी तरंग, छंद १७

३. पचवीं तरंग, छंद ४२

४. तीसरी तरंग, छंद २५

छंदोभंग दोष केवल एक ही कवित्त में है और वह भी प्रतिलिपिकारों के प्रमाद के कारण हो गया है । पर यति गति संबंधी दोष कई स्थलों पर हैं और उन सब का उत्तरदायित्व प्रतिलिपिकारों के सिर नहीं मढ़ा जा सकता है, जैसे—

- (१) भूप सभा भूषन, छिपावौ पर दूषन, कु-
योल एक हू खन कहे न देह पाइ कै^१ ।
- (२) कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
हा है बीच देहरे ? कहा है बीच देह रे^२ ?
- (३) गरजत घन, तरजत है मदन, लर-
जत तन मन नीर नैननि बहत है^३ ।
- (४) सेनापति होत सीतलता (!) है सहस गुनी,
रजनी की भाँई बासर (?) मैं भ्रमकति है^४ ।
- (५) सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है^५ ।

यहाँ पर १६, १५ की यति का क्रम तो ठीक है, किन्तु प्रथमाष्टक में ही दो विषम पदों ('सारंग' तथा 'सुनावै') के बीच में एक सम पद ('धुनि') रक्खा हुआ है; इसी से लय भिगड़ गई है । यह प्रयोग निकृष्ट माना जाता है । गति की दृष्टि से उक्त पंक्ति इस प्रकार होनी चाहिए—

सारंग सुनावै धुनि रस बरसावै घन,
मन हरषावै मोर अति अभिराम है ।

७—हस्तलिखित प्रतियाँ

'कवित्त-रत्नाकर' के वर्तमान संपादन की आधारभूत समस्त हस्त-लिखित प्रतियाँ, 'ज' प्रति को छोड़ कर, भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय से

१. पहली तरंग, छंद ४
२. पाँचवीं तरंग, छंद ३१
३. तीसरी तरंग, छंद २५
४. तीसरी तरंग, छंद ५०
५. पहली तरंग, छंद १२

भूमिका

प्राप्त हुई हैं। नीचे इनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है:—

१ क :—यह प्रति प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यापक पं० शिवाधार पाँडे से प्राप्त हुई है। 'कवित्त-रत्नाकर' की अन्य हस्तलिखित प्रतियों के साथ पाँडे जी ने, सन् १९२२ में, इसकी भी नकल की थी। उनका कहना है कि जिस पोथी से उन्होंने यह प्रतिलिपि की थी वह नितांत प्रामाणिक जान पड़ती थी। उसके कागज का रंग बहुत हलकी ललाई लिए हुए कुछ-कुछ भूरे रंग से मिश्रता-जुलता था। वह विकर्णाकार (Diagonally) लिखी हुई थी। उसका अंतिम पृष्ठ फटा हुआ था, इससे उसके लिपिकाल का कुछ पता न चल सका था। उसमें किसी श्रीनाथ मिश्र का नाम लिखा हुआ था जो संभवतः उसके लिपिकार रहे होंगे। पं० राजनाथ पाँडे के अनुसार वह प्रति अत्र भरतपुर में अप्राप्य है।

'कवित्त-रत्नाकर' का संपादन करने में 'क' प्रति से विशेष सहायता मिली है।

२ ख :—यह प्रति भरतपुर के पुस्तकालय में प्राप्य है। वहाँ इसका नं० ७३ है तथा पृष्ठ-संख्या २१७ है। लिपिकाल नहीं दिया हुआ है। इस प्रति में एकारांत शब्दों का बाहुल्य है यद्यपि ऐकारांत तथा औकारांत रूप भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। इसमें सर्वत्र 'ख' को 'प' लिखा है। इसके 'श्लेष-वर्णन' में ६५ कवित्त हैं।

३ ग :—भरतपुर के पुस्तकालय में इसका नं० २३३ है तथा पृष्ठ संख्या ६६ है। जिस पोथी से पं० शिवाधार ने 'क' प्रति को नकल किया था उसके विवरण में तथा इस प्रति की अनेक बातों में बहुत साम्य है। यह भी विकर्णाकार लिखी हुई है। कागज का रंग भी वैसा ही है। अंतिम पृष्ठ पर 'श्रीनाथ मिश्र' भी लिखा हुआ मिलता है। इन बातों को देखने से अनुमान ऐसा होता है कि 'ग' प्रति वही है जिसकी पं० शिवाधार पाँडे ने प्रतिलिपि की थी। किंतु 'क' तथा 'ग' प्रति के पाठों में अनेक स्थलों पर अन्तर मिला। उदाहरण-स्वरूप 'क' की पहलीत रंग में ६६ कवित्त पाये जाते हैं किंतु 'ग' में केवल ६४ ही हैं। खेद है कि इन दोनों प्रतियों के पाठों को मिलान करने का अधिक अवसर न प्राप्त हो सका। इससे निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि 'क' तथा 'ग' प्रतियाँ वास्तव में एक हैं अथवा भिन्न।

४ घ :—यह प्रति भरतपुर के पुस्तकालय में मतिराम कृत 'ललित-

कवित्त-रत्नाकर

ललाम' के साथ पाई जाती है, जिसका नं० ५२ है। संभवतः यह भी उसी समय की लिखी हुई है जिस समय 'ललित-ललाम' की प्रतिलिपि की गई थी क्योंकि दोनों पोथियों की लिखावट बिलकुल एक-सी है। 'ललित-ललाम' का लिपिकाल चैत बदी १३, सं० १८८० दिया हुआ है। अतएव यह प्रति भी सं० १८८० की लिखी हुई मानी जा सकती है। इसमें 'कवित्त-रत्नाकर, की चौथी तथा पाँचवीं तरंगे नहीं हैं।

५ न :—यह प्रति श्रावण सुदी १४ बुधवार सं० १८१८ में किसी 'प्राणजीवन बाबाड़ी' द्वारा लिखी गई थी। भरतपुर के पुस्तकालय में इसका नं० २११ क है। पृष्ठ-संख्या ५७ है। पहली तरंग में ७० छंद हैं। पाँचवीं तरंग में ३३वें कवित्त के आगे से आलम कृत नायक-नायिका भेद लिखा हुआ है यद्यपि ग्रंथ के अंत में मुखौ से यह लिखा है—“इति श्री सेनापति विरचिते कवित्त रत्नाकरे पंचमस्तरंग संपूर्ण”।

अर्थ की दृष्टि से इस प्रति के पाठ विशेष शुद्ध हैं। 'कवित्त-रत्नाकर' के संपादन में 'क' प्रति के अतिरिक्त इससे भी विशेष सहायता मिली है।

६ छ :—इस प्रति में पहली तरंग में ६६, दूसरी में ७४ तथा तीसरी में ६१ छंद पाये जाते हैं। लिपिकार का नाम ठाकुर दास मिश्र है—“लिखित ठाकुरदास मिश्र आम अर्थे: सं० १८३२ मीती श्रावण कृष्ण ५ चंद्रवासरे”। चौथी तथा पाँचवीं तरंगें इसमें नहीं हैं।

७ त :—इसमें पहली तरंग में ५५ तथा दूसरी में केवल ५ छंद हैं। अवशिष्ट तरंगें इसमें नहीं हैं। तिथि तथा लिपिकार का कुछ पता नहीं मिलता है।

८, ९, १० च, ज तथा ट :—ये वास्तव में पूर्ण प्रतियाँ नहीं हैं। भरतपुर पुस्तकालय में कुछ संग्रह ग्रंथ हैं, उन्हीं में ये पाई जाती हैं। च तथा ज में रामायण तथा रामरसायन संबंधी छंद हैं। ट में इनके अतिरिक्त कुछ शृंगार-संबंधी छंद भी मिलते हैं।

११ व :—यह प्रति हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पं० कृष्णविहारी मिश्र के यहाँ है। किसी बलदेव मिश्र ने मिश्र जी के स्वर्गीय पितृव्य श्रीमान् पं० जुगुलकिशोर मिश्र के लिए 'कवित्त-रत्नाकर' की किसी पोथी से इसे नकल किया था। इस प्रति के अंत में लिखा है :—“श्री स० १८४१ अश्वनि मासे शुक्ल पक्षे तिथौ द्वितीयायां लिखितमिदं पुस्तकं बलदेव मिश्रेण मिश्रजुगुल-

किशोरस्य पाठार्थ श्री शुभस्थान गन्धौली ग्रामस्य लंवरदार । श्री जानकी बल्लभो जयति । श्री कृष्णाय नमो नमः ।”

अन्य प्रतियों के छंदों से इसके छंदों की तुलना करने पर यह शत होता है कि इसके पाठों को कहीं-कहीं शोध दिया गया है । अतएव इसके पाठों को अधिक प्रामाणिक नहीं माना गया है । इसमें कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जो अन्य किसी भी प्राचीन प्रति में नहीं हैं । इसी से उन्हें ‘परिशिष्ट’ में दे दिया गया है ।

८—संपादन-सिद्धांत

किसी प्राचीन कवि की रचनाओं के मूल रूप को उपस्थित कर सकना प्रायः दुस्तर होता है । आदर्शरूप से तो यह तभी हो सकता है जब स्वयं कवि के हाथ का लिखा हुआ ग्रंथ प्राप्त हो जाय । यदि इस प्रकार का कोई ग्रंथ मिल जाय तब तो उसके संपादन का प्रश्न ही नहीं उठेगा । किन्तु ऐसा बहुत कम होता है । बहुधा ऐसे ग्रंथ प्राप्त होते हैं जो मूल ग्रंथ की न जाने कितनी प्रतिलिपियों के बाद के होते हैं । प्रायः प्रत्येक लिपिकार प्रतिलिपि करते समय देश-काल तथा अपनी परिस्थिति-विशेष के अनुसार अपनी भाषा का प्रभाव भी उस ग्रंथ पर छोड़ देता है । सैकड़ों वर्षों तक यही क्रम चलते रहने से मूल ग्रंथ का वास्तविक स्वरूप अंतर्हित हो जाता है । इन प्रभावों को हटा कर, कवि की रचना के मूल रूप के निकटतम पहुँचना ही किसी ग्रंथ के संपादक का कर्त्तव्य है ।

इस दृष्टि से जो प्रति जितनी ही प्राचीन होगी उतना ही उसका महत्त्व बढ़ जायगा । यदि वह स्वयं कवि के प्रदेश में लिखी गई है तब तो वह और भी मान्य हो जायगी । खेद है कि ‘कवित्त-रत्नाकर’ की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में एक भी प्रति इस प्रकार की नहीं है । उसकी दो-एक प्रतियाँ देखने में बहुत प्राचीन जान पड़ती हैं किन्तु उनमें लिपिकाल का कोई निर्देश न होने के कारण उनके सम्बन्ध में कोई बात निश्चयात्मक रीति से नहीं कही जा सकती है । ‘न’ प्रति ‘कवित्त-रत्नाकर’ के रचना-काल से लगभग ११२ वर्ष बाद की लिखी हुई है । इसका लिपिकाल सं० १८१८ है । अतएव ‘क’ तथा ‘ग’ प्रति के साथ-साथ इसके पाठों को अधिक प्रामाणिक माना गया है ।

प्रादेशिकता के विचार से ‘घ’ प्रति को हम निश्चित रूप से भरतपुर

का लिखा हुआ कह सकते हैं क्योंकि उसमें इस बात का निर्देश पाया जाता है। 'कवित्त-रत्नाकर' की अधिकांश प्रतियाँ भरतपुर ही में पाई जाती हैं। इससे इस बात का अनुमान बढ़ हो जाता है कि भरतपुर के समीपस्थ किसी स्थान से सेनापति का सम्बन्ध अवश्य रहा होगा और फलतः उन पर भरतपुर की भाषा का थोड़ा-बहुत प्रभाव पाया जाना भी स्वाभाविक ही है। किन्तु फिर भी सेनापति की भाषा का मूल ढाँचा बुलन्दशहर का ही होगा।

ब्रजभाषा की अन्य हस्तलिखित प्रतियों के समान 'कवित्त-रत्नाकर' की विभिन्न प्रतियों में भी एक ही शब्द कई रूपों में लिखा हुआ पाया जाता है। जहाँ एक स्थल पर शब्दों के ऐकारांत तथा औकारांत रूप लिखे हुए हैं वहीं दूसरी जगह उन्हीं शब्दों के एकारांत तथा ओकारांत रूप मिलते हैं। जैसे परसर्ग 'ते' तथा 'को' कहीं तो 'ते' तथा 'को' लिखे हुए हैं और कहीं 'तै' तथा 'कौ' के रूप में हैं। सानुनासिक तथा निरनुनासिक रूपों की दृष्टि से ऐसे शब्दों के चार रूप हैं—'ते,' 'तें,' 'तै,' 'तैं' तथा 'को,' 'कों,' 'कौ,' 'कौं'। "ए-ओ के स्थान पर विशेष अर्द्ध-विवृत उच्चारण ऐ-ओ मथुरा, आगरा, धौलपुर के प्रदेशों में तथा एटा और बुलन्दशहर के कुछ भागों में विशेष रूप से प्रचलित हैं। इन ध्वनियों के लिए पृथक् वर्णों के अभाव के कारण इन्हें प्रायः ऐ औ लिख दिया जाता था ^१।" इस विचार से प्रायः ऐकारांत तथा औकारांत रूप ही सेनापति द्वारा लिखित माने गये हैं और तदनुसार उन्हीं को मूल पाठ में दिया गया है। अनुनासिकता की प्रवृत्ति आजकल भी पश्चिमी ब्रज की बोलचाल में पाई जाती है। इसी कारण शब्दों के सानुनासिक रूपों को भी यथास्थान सुरक्षित रखा गया है। 'कवित्त-रत्नाकर' की प्राचीन प्रतियों में प्रयुक्त शब्दों की गणना करने पर भी हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर ही पहुँचते हैं। इसलिए साधारण-तथा शब्दों के सानुनासिक ऐकारांत तथा औकारांत रूपों को सेनापति द्वारा लिखित मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं जान पड़ती।

किन्तु प्रतियों को ध्यान से देखने पर कुछ ऐकारांत शब्दों के सम्बन्ध में थोड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। वाके, ताके, जाके आदि पुरुषवाची और संबंधवाची सर्वनाम, ऐसे, जैसे तैसे आदि रीतिवाची क्रियाविशेष्य तथा आगे,

पीछे आदि कालवाची क्रियाविशेषण प्रायः अधिकांश प्रतियों में निरनुनासिक रूपों में व्यवहृत हैं। 'कवित्त-रत्नाकर' में 'कैसे' लगभग २२ बार प्रयुक्त हुआ है। 'क' में यह १५ बार, 'ख' में १२ बार, 'ग' में २० बार तथा 'न' में १५ बार पाया जाता है। केवल 'घ' में इसके अधिकांश रूप ऐकार प्रधान हैं। 'ऐसे', 'जैसे' तथा 'बाके', 'ताके', आदि तो प्रायः सभी प्रतियों में निरनुनासिक तथा एकारांत रूपों में हैं। अतएव इनकी उपेक्षा करना समीचीन नहीं समझा गया। बहुत संभव है कि बुलन्दशहर के पड़ोस के मेरठ आदि जिलों में बोली जाने वाली खड़ीबोली के प्रभाव के कारण कुछ शब्दों को एकारांत रूपों में व्यवहृत किया जाने लगा हो। स्वयं 'कवित्त-रत्नाकर' में ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं जो खड़ीबोली के प्रभाव की सूचना देते हैं। दो एक स्थलों को छोड़ कर प्रायः सर्वत्र ही 'पीछे' का प्रयोग मिलता है यद्यपि ब्रज-प्रदेश में यह 'पाछे', 'पाछैं' आदि रूपों में प्रयुक्त होता है। ब्रज के अनिश्चयवाचक-सर्वनाम 'कोऊ' के साथ-साथ अनेक स्थलों पर खड़ीबोली का अनिश्चय वाचक सर्वनाम 'कोई' भी प्रयुक्त हुआ है। बुलन्दशहर गजेटियर के लेखक ने भी इस ओर संकेत किया है ^१। इन सब बातों पर विचार करने के बाद इन विशेष निरनुनासिक एकारांत शब्द को ज्यों का त्यों रख दिया गया है।

कुछ प्रतियों में अकारांत शब्दों के स्थान पर उकारांत तथा इकारांत शब्द का प्रयोग हुआ है यद्यपि दो-एक प्रतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें यह प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है। जैसे 'क', 'ग' आदि में 'पंथु', 'ईठु', 'वरनु', 'लालु' 'नैकु' तथा 'चालि', 'पियनि', 'आँखिनि' आदि का प्रयोग बहुतायत से मिलता है किंतु 'ख' तथा 'घ' आदि प्रतियों में इन्हें अधिकतर 'पंथ', 'ईठ', 'वरन', 'लाल', 'नैक' तथा 'चाल', 'पियन', 'आँखिन' आदि रूपों में लिखा गया है।

^१ "The Common speech of the people is the form of western Hindi known as Braj. Although in the northern part of the district, as in Meerut, the ordinary Hindustani or Urdu is commonly spoken and everywhere the two forms are mixed. The proximity of Delhi must have had a considerable influence on the language of the district....."

(बुलन्दशहर गजेटियर, पृ० ७२)

वर्तमान समय में उकारांत तथा इकारांत रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति अलीगढ़ के आसपास के गावों में विशेष पाई जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से १७वीं शताब्दी में इन रूपों का प्रचार कुछ अधिक अवश्य रहा होगा। किन्तु संभवतः राज-दरबार से संबंध रखने वाले कवि इस प्रवृत्ति से बचते होंगे। नागरिकों के लिए ग्रामीण उच्चारणों से बचना अत्यंत स्वाभाविक बात है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि ब्रजभाषा के किसी शब्द के ठेठ रूप का प्रयोग सब कवियों ने किया हो। अतएव “किन्हीं विशेष रूपों को विशुद्ध ब्रज मान कर समस्त लेखकों की कृतियों में एकरूपता कर देना, संपादन करना नहीं, बल्कि ग्रंथों को अपने मतानुसार शोध देना है” क्योंकि किसी “ग्रन्थ के संपादन का उद्देश्य लेखक के मूल रूप को सुरक्षित करना है न कि उनकी भाषा को किसी कसौटी के अनुसार परिवर्तित कर देना।” इस दृष्टि से ‘कवित्त-रत्नाकर’ के मूल पाठ में शब्दों के अकारांत रूपों को ही रखा गया है।

उकार तथा इकार की प्रवृत्ति कुछ अन्य शब्दों में भी मिलती है, किंतु वह उपरि लिखित प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न है। जैसे ‘भाव’ ‘चाव’, ‘राव,’ ‘पावक’, ‘पावस’ तथा ‘गाय,’ ‘आय,’ ‘भाय,’ ‘नायक’, ‘रघुराय’ आदि शब्दों के स्थान पर क्रमशः ‘भाउ’, ‘चाउ’, ‘राउ’, ‘पाउक’, ‘पाउस’, तथा ‘गाइ’ ‘आइ’, ‘भाइ’, ‘नाइक’, ‘रघुराइ’ आदि रूप ही अधिकतर पाए जाते हैं। बात यह है कि ‘व’ तथा ‘य’ संयुक्त स्वर हैं और क्रमशः ‘उ+अ’ तथा ‘इ+अ’ स्वरों के संयोग से बने हैं। इन ध्वनियों के पहले जहाँ कहीं आकार का प्रयोग पाया जाता है वहाँ उच्चारण में कुछ कठिनाई उपस्थित हो जाती है; इसी कारण बोलचाल की ब्रजभाषा में प्रायः अंतिम स्वर लुप्त हो गया था और ‘भाउ’, ‘चाउ’, ‘राउ’, ‘पाउस’ तथा ‘गाइ’, ‘आइ’, ‘भाइ’ आदि रूपों का चलन हो गया था। ऐसे शब्दों को यथास्थान सुरक्षित रखा गया है।

क्रियार्थक संज्ञा के संयोगात्मक रूप ‘चलै’, ‘पियै’, ‘देखै’, इत्यादि प्रचुरता से मिलते हैं। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध मर्मज्ञ स्वर्गीय ‘रत्नाकर’ जी ऐसे समस्त शब्दों के सानुनासिक ऐकारांत रूप ही प्रामाणिक मानते थे। ‘कवित्त-रत्नाकर’ में तृतीया अथवा पंचमी के अर्थ में पाये जाने वाले ऐसे शब्द सानुनासिक तथा

ऐकारांत रखे गए हैं किंतु सप्तमी के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों के एकारांत तथा निरनुनासिक रूप (जैसे चले, पिये, देखे इत्यादि) ही रखे गए हैं, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से इनके सानुनासिक ऐकारांत रूप नहीं पाए जाते हैं ।

प्रायः अधिकांश प्राचीन प्रतियों में ‘कीन्हें,’ ‘लीन्हें,’ ‘दीन्हें’ आदि शब्दों के महाप्राण अंश का लोप पाया जाता है अतएव इनके स्थान पर ‘कीने,’ ‘लीने’ ‘दीने’ आदि रूपों को मूल पाठ में रखा गया है ।

‘कवित्त-रत्नाकर’ में कुछ स्थलों पर पूर्वी प्रयोग भी हैं । प्रश्नवाचक सर्वनाम ‘कौन’ के स्थान पर एक जगह ‘कवन’ पाया जाता है । संबंधकारक के चिह्न ‘कौ’ के स्थान पर दो छंदों में ‘कर’ का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार ‘सन’ पंचमी के परसर्ग के रूप में प्रयुक्त मिलता है । किंतु ऐसे प्रयोग बहुत थोड़े हैं । ठेठ पछाँहीं लेखक की रचनाओं में ऐसे रूपों का पाया जाना थोड़ा आश्चर्यजनक तो है पर असंभव नहीं, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से ये प्रयोग अधिक प्राचीन हैं । जैसे ‘कौन’ की व्युत्पत्ति संस्कृत कः पुनः से इस प्रकार मानी जाती है^१—सं० कः पुनः, प्रा० कवन, कवण, कोउण, हि० कौन । संभव है ‘कवन’ का प्रयोग सेनापति के समय में थोड़ा बहुत होता हो । जो हो, प्रतियों में इस प्रकार के पूर्वी प्रयोग कुछ स्थलों पर मिलते हैं और उन्हें यथास्थान रहने दिया गया है ।

‘गति’ तथा ‘यति’ सम्बन्धी दोषों को शोधने के बजाय प्रश्नवाचक चिह्न (?) लगाकर रख दिया गया है ।

‘कवित्त-रत्नाकर’ के कुछ छंद दो तरंगों में समान रूप से पाये जाते हैं । इस विषय में कोई हेर-फेर नहीं किया गया है क्योंकि स्वयं कवि ने उन छंदों को उस रूप में रखा है ।

जो हो, बिना किसी आधार के ग्रन्थ के किसी शब्द को अपनी ओर से परिवर्तित कर देने का दुःसाहस नहीं किया गया है ।

उमाशंकर शुक्ल

कवित्त-रत्नाकर

पहली तरंग

श्लेष-वर्णन

परम जोति जाकी अनंत, रमि रही निरंतर ।
आदि, मध्य अरु अंत, गगन, दस-दिसि, बहिरंतर ॥
गुन पुरान-इतिहास, बेद बंदीजन गावत ।
धरत ध्यान अनवरत, पार ब्रह्मादि न पावत ॥
सेनापति आनन्द-घन^१, रिद्धि-सिद्धि-मंगल-करन ।
नाइक अनेक ब्रह्मांड कौं, एक राम संतत-सरन ॥ १ ॥

सुरतरु सार की सवाँरी है विरंचि पचि^२,
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की ।
रानी कमला कौं^३ पिय-आगम कहनहारी,
सुरसरि-सखी, सुख-दैनी, प्रभु-पाइ की ॥
बेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की ।
देव-दुख-दंडन भरत-सिर-मंडन, वे,
बंदौं अघ-खंडन खराऊं रघुराइ की ॥ २ ॥

पाई जो कबिन जल-थल जप-तप करि,
बिद्या उर धरि, परिहरि रस-रोसौ है ।
ताही कविताई कौं सुजस पसु^४ चाहत है,
सेनापति जानत जो अच्छर नओ सौ है^५ ॥

१ आनन्द निधि (ख) । २ रचि (क); ३ के (क) । ४ जस (ख); ५ सेनापति जानत
न अच्छर जो ओसौ है (क) (ग) (घ) ।

पाइ कै परस जाकौं सिलाहू^१ सचेत भई,
 पायौ बोध-सार सारदाहू कौं, धरो सौ है ।
 और न भरोसौ, जिय परत खरो सौ, ताही
 राम-पद-पंकज कौ पूरन भरोसौ है ॥ ३ ॥

भूप-सभा-भूषन, छिपावौ पर दूषन, कु-
 बोल एक हू खन, कहे न देह पाइ कै ।
 राज महा जानि, पूरे सकल कलानि, सेना-
 पति गुन-खानि और हू कौं गुन-दाइकै ॥
 तुम ही बताई, कछु कीनी कबिताई, तामैं
 होइ जोगताई^२, दुचिताई के सुभाइ कै ।
 बुद्धि के बिनाइकै, गुसाँई ! कबि-नाइकै, सु
 लीजियौ बनाइ कै कहत सिर नाइ कै ॥ ४ ॥

दीछित परसराम, दादौ है बिदित नाम,
 जिन कीने जज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है ।
 गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौं,^३
 गंगा तीर बसति^४ अनूप जिन पाई है ॥
 महा जानि मनि, बिद्यादान हू कौं चिंतामनि,
 हीरामनि दीछित तैं पाई पंडिताई है ।
 सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी
 सब कबि कान दै सुनत कबिताई है ॥ ५ ॥

मृदून कौं अगम, सुगम एक ताकौं, जाकी
 तीछन अमल बिधि बुद्धि है अथाह की ।
 कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि
 देखे सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की ॥
 ज्ञान के निधान, छंद-कोष सावधान, जाकी
 रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी ।
 सेवक सियापति कौ, सेनापति कबि सोई,
 जाकी द्वै अरथ कबिताई निरवाह की ॥ ६ ॥

दोष सौ मलीन, गुन-हीन कविता है, तौ पै,
 कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै ।
 बिन ही सिखाए, सब सीखिहैं सुमति जौ पै,
 सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है ॥
 दूषन कौं करि कै, कबित्त बिन भूपन कौं,
 जो करै प्रसिद्ध ऐसौ कौन सुर मुनि है ।
 रामै अरचत सेनापति चरचत दोऊ,
 कवित रचत यातैं पद चुनि चुनि है ॥ ७ ॥
 राखति न दोषै पोषे पिंगल के लच्छन कौं
 बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है ।
 जोए पद मन कौं हरप उपजावति है
 तजै को कनरसै^१ जो छन्द सरसति है ॥
 अच्छर हैं विसद^२ करति उषै आप सम
 जात जगत की जड़ताऊ बिनसति है (?) ।
 मानौं छवि ताकी उदवत सविता की सेना-
 पति कवि ताकी कविताई बिलसति है ॥ ८ ॥
 तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे
 दूरि कौं^३ चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के ।
 लागत विविध पच्छ सोहत हैं गुन संग
 स्रवन मिलत मूल कीरति^४ उज्यारी के ॥
 सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुमत नीके
 बेग विधि^५ जात मन मोहैं नर नारी के ।
 सेनापति कवि के कबित्त बिलसत अति
 मेरे जान दान हैं अचूक चापधारी के ॥ ९ ॥
 बानी सौ सहित सुवरन मुँह रहैं जहाँ^६
 धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं ।

१ कोक नर सैं (ख) (घ), कोक नरम (ग); २ सरस (ख) । ३ के (ज); ४ मूठ
 कीरति (ज); ५ भिदि (क) (ग) (घ) । ६ मुहरै है जहाँ (घ) ।

संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
 राखौ मति ऊपर सरस^१ ऐसे साज कौं ॥
 सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की
 तातैं सेनापति कहै तजि करि व्याज कौं ।
 लीजियौ बचाइ ज्यौं चुरावै नाहिं कोई सौंपी
 बित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौं ॥ १० ॥
 ब्यापी देस देस बिस्व कीरति उज्यारी जाकी
 सीतैं संग लीने जामैं केवल सुधाई है ।
 सुर-नर-मुनि जाके^२ दरस कौं तरसत
 राखत न खर तेजै कला की निकाई है ॥
 करन के जोर जीति लेत है निसा कलंकै^३
 सेवक हैं तारे^४ ताकी गनती न पाई है ।
 राजा रामचन्द अरु पून्यौं कौं उदित चंद
 सेनापति बरनी दुहू की समताई है ॥ ११ ॥
 सारंग धुनि गुनावै घन रस बरसावै
 मोर मन हरपावै अति अभिराम है (?) ।
 जीवन अधार बड़ी गरज करनहार
 तपति हरनहार देत मन काम है ॥
 सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति
 पावत अधिक तन मन विसराम है ।
 संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
 आयौ^५ घनस्याम सखि^६ मानौ घनस्याम है ॥ १२ ॥
 लाह सौ लसति नग सोहत सिंगार हार
 छाया सोन^७ जरद जुही की अति प्यारी है ।
 जाकी रमनीय रौस बाल है रसाल बनी
 रूप माधुरी अनूप रंभाऊ निवारी है ॥

१ अरत (ख) । २ जाको (क) (ख) (ग); ३ निमांन लै कौं (घ); ४ एक कहै तारे (ज) ।

५ जायो (क) (ग); ६ सखी (घ) । ७ छाया सा न (अ) ।

जाति है सरस सेनापति बनमाली जाहि
 सीचै घन रस फूल भरी^१ मैं निहारी है ।
 सोभा सब जोवन^२ की निधि है मृदुलता की
 राजै नव नारी मानौ मदन की बारी है ॥ १३ ॥

जाकी सुभ सूरति सुधारी^३ है सुहाग भाग
 पूरी ता लगै रसाल नाहै जब^४ दरसी ।
 जर बलै^५ चलै रती आगरी अनूप बानी
 तोरा हँ अधिक जहाँ^६ बात नाहें करसी^७ ॥

सेनापति सदा जामैं रूपा है अधिक गुना
 जाहि देखि नीधन की^८ छतियाँ हैं तरसी ।
 धनी के पधारै बाट काँटे हू मैं पाउँ धरि
 यह बर नारि सुबरन की मुहर सी ॥ १४ ॥

कौल की है पूरी^९ जाकी^{१०} दिन दिन बाढ़ै छवि
 रंचक सरस नथ भलकति लोल है ।
 रहै परि यारी करि^{११} संगर मैं दामिनी सी
 धीरज निदान^{१२} जाहि बिछुरत को लहै ॥

यह नव नारि सांची काम की सी तरवारि
 अचरज एक मन आवत अतोल^{१३} है ।
 सेनापति बाहैं जब धारै तब बार बार
 ज्यौ ज्यौं मुरिजात त्यों त्यों कहत अमोल है ॥ १५ ॥

जाकौं फेरि फेरि नारि सेनापति सब चाहैं
 बनी नव तरुन के अंतर बसति है ।
 सब जी कौं नातौ ताहि डारै करि हातौ पाइ
 हाथ करै लाल जो सनेह सरसति है ॥

१ फला (ज); २ पान (ज); ३ सबरी (ज); ४ नव (ज); ५ नर बल (ज);
 ६ जामैं (ज); ७ बात न कमरसी (क) (ख) (ग) (घ) (ज); ८ देखे जाहि नीधन
 की (ज); ९ काम की है पूरी (ज); १० तामे (ज); ११ परिवारी परि (ख) (घ);
 १२ निधान (ख), तिदान (न); १३ अडोल (क) (ख) (घ) ।

रंग संग काज टूक टूक है रहति सनी
 सहज के रस रंग राचति लसति है^१ ।
 लता की निकाई जाँमै नीकी बनि आई मिहीं^२
 मिहदी की समता कौ प्यारी परसति है^३ ॥ १६ ॥
 पैयै भली घरी तन सुख सब गुन भरी
 नूतन अनूप मिहीं रूप की निकाई है ।
 आछी चुनि आई कैयौ पेंचन सौं पाई प्यारी
 ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यों त्यों मूढ़हिं चढ़ाई है ॥
 पूरी गज गति वरदार है सरस अति
 उपमा सुमति सेनापति बनि आई है ।
 प्रीति सौं बाँधै बनाइ राखै छवि थिरकाइ^४
 काम की सी पाग बिधि कामिनी बनाई है ॥ १७ ॥
 लीने सुघराई संग सोहत ललित अंग
 सुरत के काम के सुघर^५ ही बसति है ।
 गौरी नव रस रामकरी है सरस सोहै
 सूहे के परस कलियान सरसति है ॥
 सेनापति जाके बाँके रूप उरभूत मन^६
 बीना मैं मधुर नाद सुधा बरसति है ।
 गूजरी कनक^७ माँझ सुभग तनक हम
 देखी एक बाला राग माला सी लसति है ॥ १८ ॥
 सोहति बहुत भाँति चीर सौ लपेटी सदा
 जाकी मध्य दसा सो तौ मैंन कौ निधान है ।
 तम कौ न राखै सेनापति अति रोसन है
 जा बिना न सूझै होत व्याकुल जहान^८ है ॥
 परत, पतंग मन मोहै तिन तरुन के
 जोति है रदन होति सुरति निदान है ।

१ राजत लसत है (ख), २ मिलि (अ); ३ को वनिता करति है (न) । ४
 थिरभाइ (घ) । ५ सुघर (न); ६ सेनापति सदा जाके रूप उरभूतु मन (न); ७ कनक
 (अ) । ८ सुजान (ख) ।

पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु
 प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है ॥ १६ ॥
 चाहत सकल जाहि रति कै^१ भ्रमर है जो
 पुजवति हाँस उरबसी की बिसाल है ।
 भली विधि कीनी^२ रस भरी नव जोबनी है
 सेनापति प्यारे बनमाली की रसाल है ॥
 धरति सुवास पूरे गुन कौं निवास अब
 फूली सब अंग ऐसी कौन कलिकाल है ।
 ज्यों न कुम्हिलाइ कंठ लाइ उर लाइ लोजै
 लाई नव बाल लाल मानौं फूल माल है ॥ २० ॥
 केस रहैं भारे मित्र कर सौं सुधारे^३ तेरे
 तोही मांझ पैयत मधुर अति रस है ।
 तपति बुझाइवे कौं हिय सियराइवे कौं
 रंभा तैं सरस तेरे तन कौं परस है ॥
 आज धाम धाम पुरइन है कहायों नाम
 जाके बिहँसत मैलौ चंद कौं दरस है ।
 सेनापति प्यारी तैं ही भुवन की सोभा धारी
 तू है पदमिनि तेरा मुख तामरस है ॥ २१ ॥
 जहाँ^४ सुर सभा है^५ सुवास बसुधा कौं सार
 जामैं लहियत पेरापति हू की गति है ।
 पेखे उरबसी ऐसी और है सुकैसी देखी
 दुति मैनका हू की जो^६ हियरे हरति है ॥
 सेनापति सची जाकी सोभा ना कही वनति
 कलप लता बिना न कैसे हू रहति है ।
 जागरन^७ कारी जाके होत हैं बिहारी मैं नि-
 हारी अमरावती सी भावती लसति^८ है ॥ २२ ॥

१ के (अ); २ बहै (न); नांको (अ) । ३ केसर है भार मिस कर सौ सुधारे (न) ।
 ४ जामैं (ग); ५ दे (न); ६ ज्यौ (ख) (घ); ७ जागरत (ख); ८ कौ सति (न) ।

पासे की निकाई सेनापति ना कही बनति
 सोरहै नरद करि रदन^१ सुधारी है ।
 सोभा की बिसाति^२ चीरै^३ धरति बहुत भांति
 चतुर है मुख गनि गनि डग धारी है ॥
 मार तैं बचाइ कोउ पाउ^४ बिधि कीनौ जग
 जाके बस परैं संत कहत^५ जुवारी है ।
 जीति^६ की है निधि धन हार कौ धरति मीठी^७
 नारि निहचै कै मानौ चौपर सवांरी है ॥ २३ ॥
 प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन
 मेरौ तन जात रूप तातैं निदरत हौ ।
 सेनापति पाइ परैं विनती करैं हू तुम्हैं
 देति न अधर ती जे^८ तहां कौ ढरत हौ ॥
 बाट मैं मिलाइ तारे तौल्यौ बहु विधि प्यारे
 दीनौ है^९ सजीउ आप तापर अरत हौ ।
 पीछे डारि अधमन हम^{१०} दीनौ दूनौ मन
 तुम्हैं तुम नाथ इत पाउ न धरत हौ ॥ २४ ॥
 बिरह हुतासन बरत उर ताके रहै
 बाल मही पर परी भूख न गहति है
 सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग
 सून^{११} सेज रत काम केलि कौ करति है ॥
 प्रानपति हेत गेह अंग न सुधारै जाके
 घरी है बरस^{१२} तन मैं न सरसति है ।
 देखां चतुराई सेनापति कविताई की जु
 भोगिनी की सरि कौ बियोगिनी लहति है ॥ २५ ॥
 मोती मनि मानिक रतन करि पूरी धन
 खरे भार भरी अनुकूल मन भाई है ।

१ रदन कर बदन (न); २ तिसाति (न); ३ धारी (ज); ४ को उगाय (व);
 ५ संश्रुत (म); ६ जीति (ज); ७ पौढी (ज), प्यारा (न); ८ जो (न); ९ दीनी है (न);
 १० हमै (क) । ११ सूना (ख); सूने १२ (ज); वासर (ज) ।

जा घर बनिजु रहै ताही कौ सरस भाग
 हैहै सुखी सेनापति जब लछि पाइहै ॥
 तुम पतियार ताके तुम ही करन धारौ
 तोही बन बल्ली नीकी^१ लागि ठहराइहै ।
 मध्य रस सिंधु मानौ सिंहल तैं आई वह
 तेरी आस नाउ^२ गुन गहौ तीर आइहै ॥ २६ ॥
 देखत नई है गिरि छतियाँ रहे हैं कुच
 निरखी निहारि आछे मुख में रदन है ।
 बरसनि सोरहै नवासी एक आगरी^३ है
 मंद ही चलति भरी जोवन मदन है ॥
 केस मानौ तूल चौर भलकत वाके बीच
 पट के कपोल सोभा धरन बदन है ।
 देखियत^४ सेनापति हरे लाल^५ चीर वारी
 नारी बुढ़िया निदान बसति सदन है ॥ २७ ॥
 मोती हैं दसन मनि मूंगा हैं अधर वर
 नैन इंद्रनील नख लाल बिलसत हैं ।
 मरकत ढंपन सौ कंचन कलस कुच
 चरन पदमराग सोभा सरसत हैं ॥
 प्यारी कोठरी है धन जोवन जवाहिर की
 तहाँ सेनापति चित जाइ^६ कै धसत हैं ।
 तासौं लगे तारे फेरि तारी न लगति क्यौहूँ
 जाइ^७ विधे मन^८ तेब कैसे निकसत हैं ॥ २८ ॥
 आँरै भयो रुख तातैं कैसे सखी ज्यारी होति
 विफल भए हैं बंद कछू न बसाति है ।
 गोसे न मिलत कैसे तीर कौ सँजोग होत^९
 पहिली^{१०} नवनि लही^{११} जाति कौन भांति है ॥

१ कीनी (ख); २ अतनाव (क) (ख) (ग) (घ) । ३ अगरी (ख) (ज) (न);
 ४ देखि पति (ख); ५ हरि लाल (क), हरिलीला (ख) । ६ जाइ (न); ७ जेइ (क),
 पाइ (न); ८ नैन (ज) । ९ होइ (ख); १० पिछली (ज); ११ रही (ख) ।

सेनापति लाल स्याम रंग चित चुभि रह्यौ
 कैसे कै कठिन रितु पाउस बिहाति है ।
 आवति है लाज कर गहैं पंच लोगनि तैं
 कान्ह फिरि गए ज्यों कमान फिरि जाति है ॥ २६ ॥
 सोए संग सब राती सीरक परति^१ छाती
 पैयत रजाई नैंक आलिगन कीने तैं ।
 उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई
 सुथरी अधिक देह कुन्दन नवीने तैं ॥
 तन सुख रासि जाके तन के तनको छुवैं
 सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं ।
 सब सीत हरन वसन कौ समाज प्यारी
 सीत क्यों न हरै उर अंतर के दीने तैं ॥ ३० ॥
 अरुन अधर सोहै सकल बदन चंद
 मंगल दरस बुध बुद्धि कै विसाल है ।
 सेनापति जासौ जुव जन सब जीवक^२ हैं
 कवि अति मंद गति चलति रसाल है ॥
 तम है चिकुर केतु काम की विजय निधि
 जगत जगमगत जाके जोति^३ जाल है ।
 अंबर लसति भुगवति^४ सुख रासिन कौ
 मेरे जान बाल नवग्रहन की माल है ॥ ३१ ॥
 बदन सरोरुह के संग ही जनम जाकौं
 अंजन सुरंग^५ समता न^६ परसत है ।
 महा रूखों मुनि हू कौं हियौ चिकनाइ जात
 सेनापति जाहि जब नैंक दरमत है ॥
 रूपहि^७ बढ़ावै सब रसिकन भावै मीठौ
 नेह उपजावै पै न आप बिनसत है ।

१ सीकर परत (ज) । २ जावन (झ) ; ३ जाति (व) ; ४ भुगतति (क) (ख) (ग)
 (न) । ५ चंदन सुगंध (ख) ; ६ समतन (ज) ; ७ प्रेमहि (न) ।

आली बनमाली मन फूल मैं बसायौ तेरे
 तिल है कपोल सो अमोल बिलसत है ॥ ३२ ॥
 करन छुवत बीच ह्वै^१ कै जात कुंडल के
 रंग मैं करै कलोल काम के सुभट से ।
 चंचल समेत भुव अंबर मैं खेलत हैं
 देखत ही बाँधैं डीठि रहैं चटमट से ॥
 उन्नत सगुन सुद्ध बंस देखि लागैं धाइ
 केलि कला करै चितै^२ मोहत निपट^३ से ।
 सेनापति प्रभु बरुनी के बस कीने प्यारी
 नाचत ललन आगे नैना तेरे नट से ॥ ३३ ॥
 ओसरैं हमारे और बालै हिलि मिलि रमैं
 ईठ महा^४ ढीठ ऐसे कैसे कै निवहियै ।
 सेनापति बहुत अवधि बितै आयौ स्याम
 समय है उराहने को कछु कछौ चहियै ॥
 आदर दै राखे होति प्रकट अधीरताई
 होति हित हौनि जौ निदान जान कहियै ।
 याही तैं चतुर चतुराई सौं कहति मेरे
 भूलि कै भवन भरतार जनि रहियै ॥ ३४ ॥
 केसौ अति बड़े जहाँ अरजुन पति काज
 अति गति भली विधि बाजी की सुधारी है ।
 मनी सौं करन बीर संग दुरजोधन के
 संतनु तनै निहारि^५ सुरत्यों बिसारी है ॥
 सोहत सदा नकुल^६ को है सील सेनापति
 देखियै सु भीमसैन अंग दुति भारी है ।
 जाके कहैं आदि सभा परबस परति सो
 भारत की अनी किधौ बनी बर नारी है ॥ ३५ ॥

१ कै (छ); २ चित (ख); ३ निकट (न) । ४ मही (ज) । ५ न हारि (घ);
 ६ सदानुकूल (ख) ।

राख्यौ धरि लाल रंग रंगित ही अंबर में
 परी अवगुन गाँठि जातैं^१ ठहरात है ।
 जोवन की रती सौं मिलाइ धर्यौ भलीभाँति
 काम की अग्नि हू सौं जरि न बुझात है ॥
 पति है अरगजा^२ की महिमा तैं सेनापति
 यातैं अति रति सुख^३ नासि कै^४ सुहात है ।
 सुख कौं निधान मिलैं त्रिविध जगत प्रान
 मान उड़ि जात ज्यौ कपूर उड़ि जात है ॥ ३६ ॥
 रहै अपसर ही की सोभा जो अनूप धरि
 सुभग निकाई लीने^५ चतुर सुनारी है ।
 सेनापति ताके मन बालमें रहैं जु एक^६
 मूरति जगत मैं न रतन सुधारी है^७ ॥
 देखैं प्रीति बाढ़ी और बाल छवि^८ डाढ़ी^९ सदा
 सुभ गहनैं धरै सु अंग दुति भारी है ।
 लौंग सी लुगाई करि वानी छल गाई ताही
 भाँति द्वै लगाई जिन भेद सौ बिचारी है ॥ ३७ ॥
 सदा नंदी जाकौं आसा कर है बिराजमान^{१०}
 नीकौं घनसार हू तैं बरन है तन कौं ।
 सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
 जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं ॥
 जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै
 धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं ।
 जानि विन कहैं जानि^{११} सेनापति कहैं मानि
 बहुधा उमाधव^{१२} कौं भेद छाँड़ि मन कौं ॥ ३८ ॥

१ तारो (ज); २ अगर जा (ख) (घ); ३ सुख (न); ४ नासुकै (ज) । ५ जानै (घ);
 ६ रहैजु एक (घ), बसत एक (ज), रहतु एक (न); ७ मैं न रजन समारा है (छ); ८ छ'क
 (न); ९ दाढ़ी (ख) । १० विचार मान (ख); ११ जामि (क) (ख) (ग) (घ); १२ बहुधा
 हू माधव (ख) ।

जात है न खेयौ क्यों हूँ^१ बल्ली न लगत नीकी
 सोचत अधिक मन मूढ़ सब लोग कौं ।
 नदीन कौ नाथ^२ यातैं पैरत न बनै काहू
 सेनापति राम बीर^३ करता असोग कौं ॥
 दीरघ उसास लेत अहि रहै भारी जहाँ
 तिमिर है बिकट बतायौ पंथ जोग कौं ।
 कान्ह के अछत कुंज काम केलि आगर ही
 तेई^४ बिन कान्ह भई सागर बियोग कौं ॥ ३६ ॥
 नाहीं नाहीं करें थोरी माँगे सब दैन कहैं
 मंगन कौ देखि पट देत बार बार हैं ।
 जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी^५ होति
 सदा सब जन मन भाए निरधार हैं ॥
 भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य
 कन कन जोरैं दान पाठ^६ परिवार हैं ।
 सेनापति बचन की रचना बिचारौ जामैं
 दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं ॥ ४० ॥
 थोरौ कछू माँगे होत राखत न प्रान लागि
 रूखे मन मौन ह्वै रहत रिस भरि हैं ।
 आपने^७ बसन देत जोरिवे की रति लेत
 बितरत जात धन धरा ही मै धरि हैं ॥
 जाँचत ही जाचक सौं प्रगट कहत तुम
 चिंता मति करौ हम सो^८ असान^९ करिहैं ।
 बानी द्वै अरथ सेनापति की बिचारि देखौ
 दाता अरु सूम दोऊ कीने सरवरि हैं^{१०} ॥ ४१ ॥
 सब अंग थोरे थोरे बहुधा रतन जोरैं
 राखैं मुख ऊपर हू जे न इतबार हैं ।

१ केहू (ख) (ज); २ नाथ; ३ तीर (न); ४ जेई (क) (ख) (न) । ५ घरी (क) (ख) (घ) (ज); ६ पाठ (क) (ग) (न) । ७ आपनै (न), आपनो (झ); ८ सो (ग), सौ (घ) (न); ९ आसान (क) (ग) (न); १० एक सरि हैं (न) ।

नान्हैं बोल बोलैं सभै^१ देखत न पट खोलैं
 राज धन राखिबे कौं पाए अवतार हैं ॥
 जनम तैं कोहू जे न भरम तैं मांगे जात^२
 सत्तहीन आगे सदा राखत न कार हैं ।
 कामहिं न आवैं सेनापति कौं न भावैं दोऊ
 खोजा अरु सूम सम कीने करतार हैं ॥ ४२ ॥
 खेत के रहैया अति^३ अमल अरुन नैन
 ओर^४ के असील गुन ही के जे निकेत हैं ।
 जगत बिदित कलिकाल के करन हारे^५
 नाहनै समर कहूँ विजय समेत हैं ॥
 सेनापति सुमति बिचारि ऐसे साहिबन
 भजौ परबीन जातैं^६ आस बस चेत हैं ।
 द्विजन कौं रोकि मनि कंचन गनिकै देत
 रीझि देत^७ हाथी कौं सहज^८ बाजी देत हैं ॥ ४३ ॥
 अमल अखंड चाउ रहै^९ आठ जामैं ऐसी
 तेरी पूरी रती सौं छमासौ सुधरायौ^{१०} है ।
 नरजा मैं मिलै पलरा मैं देखि दूनौं सोई
 सेनापति समुझि^{११} बिचारि कै बतायौ है ॥
 काहू मैं है घटि अरु काहू मैं अधिक भूँठौं^{१२}
 तोमैं पूरौ चौकस समान मैं बतायौ^{१३} है ।
 तोलियत जासौं जगत कौं सुबरन रूपौं
 सो बारहमासी तोरा तोहि बनि आयौ है ॥ ४४ ॥
 जनम कमीन^{१४} भौन बीर जुद्ध भीत रहैं
 मेवन मैं सदा मन राखत सहेत^{१५} हैं ।

१ सभा (न); २ मांगे जाते (क) (ख) (ग); ३ नित (न); ४ और (ख) (ज); ५
 हार (न) (ज); ६ जो ते (क) (ख) (छ); ७ दैत (क) (ग) (न); ८ सहज (न); ९ रहै
 (क) (ग) (घ); १० सुधरायौ (ख) (घ); ११ समुझि (ज); १२ हूँठौ (छ); १३ बतायौ
 (न) (ज); १४ जनम की मीन (ज) १५ सचेत (ख);

लंगर के दाता अरु^१ भूखन कनक देत
एक^२ साधु मनै बीस बिस्वा राखि लेत हैं ॥
सेनापति सुमति समुझि करि सेवौ इनैं
ए तौ जग जानै अवगुन के निकेत हैं ।
दादनी की बेर जब देनी होत सौ की ठौर
बड़े हैं^३ निदान तब दोसै एक देत हैं ॥ ४५ ॥
गीतहिं सुनावैं तिलकन भलकावैं भुज
मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही ।
बैसनव भेष भगतन की कमाई खाहिं
सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही ॥
देखि कै लिबास नीची^४ सबन की नारि होति
मोहि कै बिकच^५ करैं मन धन ध्यान ही^६ ।
सेनापति सुमति बिचारि देखौ भली भौति
कलि के गुसाई^७ मानौ माँगना समान ही ॥ ४६ ॥
मालै हठि लै कै भले जन ए बिसारै^८ राज
भोग ही सौ काज रीति करैं न बरत की ।
लेहिं कर मुद्रा देह बुरी यौ बनावैं छाँड़ि
निगम की संक अव लाज न रमत की ॥
पाइ पकरावैं जो निदान करैं उपदेस
रास उतसव ही सौ केलि जनमत^९ की ।
सेनापति निरखि बिचारि कै बताए देखौ^{१०}
कलि के गुसाई मानौ माँगना जगत की ॥ ४७ ॥
पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार
जहाँ मरि पापी होत सुरपुर पति है ।
देखत ही जाकौ^{१०} भलौ घाट पहिचानियत
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है ॥

१ और (क); २ संत (न); ३ भागी है (न) । ४ देखि हीलता सु नीची (न);
५ बिकल (घ); ६ तन मन ध्यान ही (ज) । ७ बिसारे (ख) (न); ८ जनमन (ज);
९ निरखि बिचारि देखै भली भौति (न) । १० पाकौ (ख);

बड़ी रज राखै जाकौं महा धीर^१ तरसत
 सेनापति ठौर ठौर नीकीयै^२ बहति है ।
 पाप पतवारि के कतल करिबे कौं गंगा
 पुन्य की असील तरवारि सी लसति है ॥ ४८ ॥
 तेरे भूखन हैं यातैं है न सुधार कछू (?)
 बाढ़ैगौं त्रिविध^३ ताप दुख ही सौं दहिहै ।
 सेइ तू गुरु चरन^४ जीति काम हू कौं बल
 बेद हू कौं पूँछि^५ तोसौं यहै तत्त कहिहै ॥
 कुपथ कौं छाँड़ौं गहौ सुपथ कौं सेनापति
 सिद्धा लेहु मानि जानि सदा सुख लहिहै ।
 अच्युत अनंत कहि प्रात सात पुरीन कौं
 करम करम लेह अमर है रहिहै ॥ ४९ ॥
 रजनी के समै बिन सीरक^६ न सोयौ जात
 प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है ।
 रंगित सुवास राखै भूपति रुचिर साल
 सूरज की तपति किरनि तन ताई है ॥
 सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात परै
 आँगन ही कल ज्यौं त्यों अग्नि बराई है ।
 श्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
 लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है ॥ ५० ॥
 तीर तैं अधिक वारिधार निरधार महा
 दारुन मकर चैन होत है^७ नदीन कौं ।
 होति है करक अति बड़ी न सिराति राति
 तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं ॥
 सीरक अधिक चारि ओर अवनी रहै न
 पाँउरीन बिना क्यौहँ^८ बनत धनीन कौं ।

१ महाधार (घ); २ नाते हा (ज) । ३ त्रिविध (ख); ४ सोई तब रुचि रन (त); ५
 बुझी (ज) । ६ सीकर (ज) । ७ परन (ज); ८ कंहु (ज) ।

सेनापति बरनी है बरषा सिसिर रितु
 मूदन कौं अगम सुगम परबीन कौं ॥ ५१ ॥
 नारी नेह^१ भरी कर हियै है तपति खरी
 जाकौं आध घरी बीतैं बरख हजार से ।
 उठत भभूके उर डारत^२ गुलाब हू के
 नवल बधू के अंग तचत अंगार से ॥
 सीरी जानि^३ छाती धरी बाल के कमलमाल
 सेनापति जाके दल सीतल तुपार से ।
 लागत न बार^४ विन हरि के बिहार ताही
 हार के सरोज सूकि होत हैं सुहार से ॥ ५२ ॥
 देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर
 तिन तरवर सब ही कौं रूप हरथौ है ।
 महा भर लागै जोति भादव की होति चलै
 जलद पवन तन सेक मानौं परथौ है ॥
 दारुन तरनि^५ तरैं नदी सुख पावैं सब
 सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धरथौ है ।
 देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु^६
 ग्रीषम विषम बरषा की सम करथौ है ॥ ५३ ॥
 द्विजन की जामैं मरजाद छूटि जाति भेष^७
 पहिले बरन कौं न तनकौं निदान है ।
 अंग छवि लीन खुति^८ धुनि सुनिथै न मुख^९
 लागी अब लार है न नाक हू कौ ज्ञान है ॥
 देखियै जवन सोभा घनी^{१०} जुगलीन माँझ^{११}
 नाम हू सौ^{१२} नातों कृष्ण केसों कौ जहाँ न है^{१३} ।
 सेनापति जामैं^{१४} जग आसा ही सौ भटकत
 याही तैं बुढ़ापाँ कलिकाल के^{१५} समान है ॥ ५४ ॥

१ तेह (न); २ तन मारत (न); ३ जानि (क) (छ); ४ बारि (क) (घ) (न) ५ तरुनि (ख); ६ सु (ख) । ७ भेद (न); ८ गत (ख); ९ कछू (ख); १० भला (न); ११ साँझ (क) (न); १२ को (न); १३ को जहान है (क) (ग) (घ); १४ याते (ख); १५ की (क) (ख) (ख) ।

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि
 भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है ।
 देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौ^१
 बिसद बरन जाकी सुधा सम बानी है ॥
 भुवपति रूप देह धारी पुन सील हरि
 आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है ।
 तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी
 राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है ॥ ५५ ॥
 सूर बली बीर^२ जसुमति कौ उज्यारौ लाल
 चित्त कौ करत चैन बैनहि सुनाइ कै ।
 सेनापति सदा सुर मनी कौ बसीकरन
 पूरन करथा है काम सब कौ सहाइ कै ॥
 नगन सघन धरै गाइन कौ सुख करे
 ऐसा तैं अचल^३ छत्र धरथा है उचाइ^४ कै ।
 नीके निज ब्रज गिरिधर जिमि महाराज
 राख्यो है मुसलमान धार तैं बचाइ कै ॥ ५६ ॥
 बानरन^५ राखै तोरि डारत है अरि लंकै
 जाके बीर लछन बिराजत निदान है ।
 अंगन कौ राखै बाहु दूरि करै दूषन^६ कौ
 हरि सभा राजै राज तेज कौ निधान है ॥
 आनंद^७ मगन दृग देखि जाहि सियरानी
 सेनापति जाके हेम नगर कौ दान है ।
 महा बली बीर बसुदेव कौ कुँवर कान्ह
 सो तौ मेरे जान राजा राम के समान है^८ ॥ ५७ ॥
 दिन दिन उदै जाकौ^९ जातै है मुदित मन
 देखियै निसान^{१०} जाके आए अति चाइ कै ।

१ कीनो है भौ उतरावन को (क) । २ बलवीर (घ) (ज) (न); ३ अखिल (त); ४ बनाय (त) । ५ बानर न (ख); ६ दुषन (त); ७ अंगन (ख); ८ सौ तौ जानि राज रामचन्द्र के समान है (ख) । ९ जाकी (ज); १० निदान (त) ।

सूर कै बखानैं जाहि सब कौं कहैं सनेही
 बैरी महातम जातैं जात है बिलाइ कै ॥
 सूरति सरस सब बार है लसति जाकी
 सेनापति जो है पदमिनी सुखदाइकै ।
 पूत दसरथ कौं सपूत रघुबीर धीर
 देख्यौ राजा राम बली मानों दिन नाइकै ॥ ५८ ॥
 धरधौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि
 ऊंचे सब कुल मिले गनत न अंत है ।
 सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ
 भौरी देखि होत अलि आनंद अनंत है ॥
 नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब
 सजी तेल ताई चैन मेंन मयमंत है ।
 सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
 बनी दुलहिन बनी^१ दूलह बसंत है ॥ ५९ ॥
 तब की तिहारी हंसि हिलनि मिलनि वह
 देखि जिय जानी हरि बस करि पाए हौ ।
 सेनापति अधिक अयानी में^२ न जानी तुम
 जंवत ही वाके अंचवत ही पराए हौ ॥
 बीते आंधि आरत त्रियान कौं बिसारत हौ
 धारत न पाउँ बेग कहौ कित छाए हौ ।
 पहिले तौ मन मोहौ पीछे कर तन मोहौ
 प्यारे तुम साँचे मनमोहन कहाए हौ ॥ ६० ॥
 जीतत कपोल कौं तिलोत्तमें अनूप रूप
 बात-बात ही में मंजु घोषै बरसति है ।
 देखी उरबसी मेंनका हू में सरस दुति
 जंघ जुग सोभा रंभा हू कौं निदरति है ॥
 सची बिधि ऐसी आर कहाँ धौं सुकैसी नारि^३
 सदा हरि भावते की रति कौं करति है ।

१ बना (ख) (घ), बन्धो (न) । २ मे (क) (ख) (ग) (घ) (न) । ३ मारी (न) ;

जाके है^१ अधर सुधा सेनापति बसुधा में
 प्यारी सुरपुर हू के सुख बरसाति^२ है ॥ ६१ ॥
 अधर कौ रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं
 सेनापति रूप सुधाकर ते सरस है ।
 जे बहुत धन^३ के हरन हारे मन के हैं
 हीतल मैं राखे सुख सीतल परस है ॥
 आवत जिनके^४ अति गजराज गति पावै
 मंगल है सोभा गुरु^५ सुंदर दरस है ।
 और है न रस ऐसों सुनि सखी साँची कहैं
 मोतिन^६ के देखिबे कौ जैसों कछू रस है ॥ ६२ ॥
 राधिका के उर बढ़ायो कान्ह^७ कौ बिरह ताप
 कीने उपचार पै न होति सितलाई^८ ।
 गुरु जन देखि कही सखिन सौं मन में की
 सेनापति करी है बचन चतुराड़्यै ॥
 माधव के बिछुरे तैं पल न परति कल
 परी है तपति अति^९ मानों तन ताड़्यै ।
 सौंह बृख भान की न रहै तो जरनि कछू^{१०}
 छाया घनस्याम की जो पूरे पुत्र पाड़्यै ॥ ६३ ॥
 तेरे उर लागिबे कौं लाल तरसत महा
 रूप गुन बाँध्यौ तू न ताकौं उमहति है ।
 यह सुनि बाल जाँ लौं ऊतर कौं देइ^{११} तौ लौं
 आइ परी सास बात कैसे निबहति है ॥
 रूखी जाँ कहति तौ तौ प्रीति न रहति जौब
 नेह की कहति^{१२} मास डाटनि दहति है^{१३} ।

१ है (क) (ग); २ परमति (न) । ३ हरत हर मन (क), मन (ख); ४ ही जाके (ज); ५ गुन (न); ६ मातन (छ) । ७ काम (त); ८ सितलाई है (ख) (त); ९ तन (ख); १० न रहँगा तपति कछू (न); ११ उतर न देइ (ख), देति (ज); १२ जो मनेह को कहै तो (ज); १३ डाटति डहात है (क) (ग) (घ) (न) ।

सेनापति यातैं चतुराई सौं कहति बलि
हार करौं ताहि जाहि लाल तू कहति है ॥ ६४ ॥
बिरह बिहाल उपचार तैं न बोलै बाल
बोली जो बुलाई नाम कान्ह कौं सुनाइ कै ।
याही तैं सकानी सास ननद जिठानी तिनैं
देखि कै लजानी सोच रही सिर नाइकै ॥
मेथ्यों है कलंक बे^१ निसंक गुरु जन कीने
राख्या हरि नेह बात यौं कही बनाइ कै ।
को है ? कित आई ? सेनापति न बसाई सखी
कान्ह कान्ह कार कल कान^२ कीनी आई कै ॥ ६५ ॥
कुबिजा उर लगाई हम^३ उर लगाई (?)
पी रहै दुहू क तन मन बारि दीने हैं ।
वे तौ एक रति जोग^४ हम एक रति जोग^४
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं ॥
कूबरी यौं^५ कल पैहें हम इहाँ कल पैहें
सेनापति स्यामैं समुझै^६ यौ परबीने हैं ।
हम वे समान ऊँचा कहा कान कारन तैं
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं ॥ ६६ ॥
देखत न पीछे कौ निकासि^७ कैयां कोसन तैं
लै कै करवाल बाग लेत बिलसत हैं ।
साहस की ठौर भीर परे तैं सिर कटाहैं^८
सकतिन हू सौ लरिकान कौ तजत हैं ॥
राखत नगारों रज पूरे रहैं^९ समर में
सदा कर^{१०} करे सरन कौ जे तकत हैं^{११} ।

१ वे (न), के (ज); २ कलकनि (ख), कुलकान (त) । ३ भोग (क) (ख);
४ भोग (ख); ५ जो (ज); ६ समुझो (क) (ग) । ७ निकासि (ज); ८ काटा है (ज); ९ पुरो
रहै (क) (घ) (व), रज रोर है (ख); १० सर (ख); ११ सर को न जे तजत है (ख), कर
करे जे शरन को भजत है (ज) ।

सेनापति बीर सौ लरत हाथ जोरत हैं
 तातैं^१ सूर कातर समान से लगत हैं ॥ ६७ ॥
 कोट गढ़ गिरि ढाहैं जिनकौ^२ दुरग ना हैं
 बल की अधिक छवि आरवी^३ साहित हैं ।
 देखियै जिन मैं सदा गति अति मंद भारी
 मानौं ते जलद ते जकरि राखे नित हैं ॥
 डगनि^४ चलत महा करिनी के बस राखे
 सब कहैं सिंधुर हैं दरद^५ रहित हैं ।
 सेनापति बरने हैं महाराज राम जू कै^६
 हाथी हैं सुधारे असवारी के^७ उचित हैं ॥ ६८ ॥
 पूरत हैं कामैं सत्यभामा^८ सुख सागर हैं
 पारिजात हू कौ जीति लेत जोर कर के ।
 सदा सुख सोहैं सेनापति बल^९ बीर धीर
 राखत बिजय बाजी मध्य जो समर के ॥
 रूप है अनूप सुर मनी^{१०} कौ बसीकरन
 जाकौ बैन सुने चैन होत नर वर के ।
 नंदन नरिंद दसरथ जू कौ रामचंद
 ताके गुन मानौं बसुदेव के कुँवर के ॥ ६९ ॥
 बीरैं खाइ रही तातैं सोहति रक्तमुखी
 नाँगी ह्वै नची है संक तजि अरि भीर की ।
 निरवारै वारन बिसारै पुनि हार हू कौ
 आड़^{११} हू भुलावै नख सिख भरो नीर की^{१२} ॥
 सेनापति पियन कौ राखै सावधान धार
 आगे ही चलावै^{१३} घात जानि जो सरीर की^{१४} ॥

१. यातै (ख) । २. जिन न्यो (ख) (ग); ३. अरवा (क) (न); ४. गडनि (क) (ग) (घ)
 (त) (न); ५. दादर (क); ६. कै (क) (ख) (ग) (घ) (त) (न); ७. काँ (घ) । ८. सप्तम मै (ज)
 ९. रन (ख); १०. मान (अ) । ११. आउ (ख); १२. भरा नख सिख नीर की (त); १३. बुलावै
 (ज); १४. जन घात जो सरीर की (ख);

जा पर परति ताहि^१ लाल करि डारै मारि
 खेलति समर फाग तेग रघुबीर की ॥ ७० ॥
 बड़े पै त्रिभंगी रस हू मैं जे न सूधे होत
 सहज की स्यामताई सुन्दर लहत^२ हैं ।
 सेनापति सिर धरि सेए लाज^३ छाँड़ि तातैं
 रूखे गुरुजन बैन रूखेई कहत हैं ॥
 हरि कौ सुनाइ कहै सखी सौं हरिन नैनी
 कान चतुराई परे कान्ह उमहत हैं^४ ।
 और की कहा है^५ सुमन केनेह चिकनाए^६ (?)
 मेरे प्रानप्यारे केसौ रूखे से रहत हैं ॥ ७१ ॥
 घर के रहत जाके सेनापति पैयै सुख
 जातैं होत प्रान समाधान^७ भली भाँति है ।
 जाकी सुभ गति देखे मानियै परम रति
 नैक बिन बोले सुधि बुधि अकुलाति है ॥
 देखत ही देखत बिलानी आगे आँखिन के
 कर गहि राखी सो न क्योंहूँ^८ ठहराति है ।
 रस दै कै राखी सरबस जानि बार बार
 नारी गई छूटि जैसे नारी छूटि जाति है ॥ ७२ ॥
 जाकी जोति पाइ जग रहत जगमगाइ
 पाइन पदमिनी समूह परसत^९ है ।
 जाके देखैं अंतर कमल बिगसत चैन
 पाइ कै खुलत नैन सुख सरसत^{१०} है ॥
 धाम की है निधि जाके आगे चंद मंद दुति
 रूप है अनूप मध्य अंबर लसत है ।
 मूरति सरस सब बार है लसति जाकी
 सोई मिच्छ सेनापति चित्त मैं बसत है ॥ ७३ ॥

१ जाय (त) । २ लसत (ज); ३ लाल (त); ४ कान चिकनाई परे क्यों न उमहत है (ज); ५ और की कहाइ (ख), और की कहा हा (घ), और की कहा हासु (क)(ग); ६ सब मन कीनें चिकनाए (ख) । ७ सावधान (ख)(त); ८ कंहु (ज) । ९ सरसत (ख)(ज); १० विकसत(ज)

तारन की जोति जाहि मिले पै बिमल होति
 जाके पाइ संग मैं न दीप सरसत है^१ ।
 भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध
 सोउ^२ तही मध्य जाके जगतै^३ रहत है ॥
 कामना लहत द्विज कौसिक सरब विधि
 सज्जन भजत महातम हित रत है ।
 सेनापति बैन मरजाद कबिताई की जु
 हरि रवि अरुन तमी कौ बरनत है ॥ ७४ ॥
 प्रबल प्रताप दीप सात हूँ तपत जाकौं
 तीनि लोक तिमिर^४ के दलन दलत है^५ ।
 देखत अनूप सेनापति राम रूप^६ रवि
 सबै अभिलाष जाहि देखत फलत है ॥
 ताही उर धारौ दुरजन^७ कौ बिसारौ नीच
 थोरौ धन पाइ महा तुच्छ उछलत है ।
 सब विधि पूरौ सुरवर सभा रुरौ यह
 दिनकर सूरौ उतराइ न चलत है ॥ ७५ ॥
 तेरे नीकी बसुधा है वाके तौ न बसुधा है
 तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै ।
 सूर सभा तेरी जोति होति है सहसगुनी
 एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै ॥
 सेनापति सदा बड़ी^८ साहिबी अचल तेरी
 निसि-दिन चंद चल जगत बखानियै ।
 महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है
 तेरी समता कौ चंद कैसे मन^९ आनियै ॥ ७६ ॥
 अँखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम
 रोम सरसाती तन सरस^{१०} परस ते ।

१ मैं न दीपक रहत है (ख), मैं न दीपक रमत है (घ), नदी न परमत है (ङ); २ सोउ (घ); ३ जगत् हू (न) । ४ सातौ दाप (न); ५ तमन के (ख); ६ दल निदरत है (ख); ७ क (ख), रास रूप (न); ८ पुरजन (क) (ग) । ९ एक (ज); १० उर (त) । ११ दरस (ख)

रावरे अधीन तुम बिन अति दीन हम
 नीर हीन मीन जिम^१ काहे कौं तरसते ॥
 सेनापति जीवन अधार निरधार तुम
 जहाँ कौं ढरत तहाँ दूटत अरस ते ।
 उनै उनै गरजि गरजि आए घनश्याम
 ह्वैकै बरसाउ एक बार तौ बरसते ॥ ७७ ॥
 पर कर परै यातै^२ पाती तौ न दीनी लाल
 कीनी मनुहारि सो सभा में कत भाखियै ।
 बानी सुनि दूती की जिठानी तैं सकानी बाल^३
 सोचि रही ऊतर उचित कौन आखियै ॥
 सेनापति ताँहीं^४ परबीन बोली बीन जिमि
 दुहुन की संक सब दूरि करि नाखियै^५ ।
 पाती पाती कहै कोऊ^६ लावै जाँ कहूँ की पाती
 दै कै सिरपाउ तौ हरा मैं बाँधि राखियै ॥ ७८ ॥
 कीने नारि नीचे बैठी नारि गुरुजन बीच
 आयाँ है सँदेसौ ताँहीं^७ रसिक रसाल कौं ।
 सेनापति देखत ही जानि सब जानि गई
 कछ्यो पर ऊतर^८ उचित ततकाल कौं ॥
 होइ ज्यों सरस काम फीकौ^९ है कनक धाम^{१०} ।
 देहुँ तोहि कुंदन जो माल^{११} है बिसाल कौं ।
 बोलि कै सुनारी भावते कौं तेरी बलिहारी
 चोकी^{१२} मेरी देह तू सँजोग कोई लाल कौं ॥ ७९ ॥
 जेती बन बेली ओर तिनकी न कीजै दौर
 राखु मन एक ठौर नीके करि बस मैं ।
 देखि कै गुराई चिकनाई बार बार भूलि
 मति ललचाहि धीरता ही कौं अब समैं ॥

१ जन बिन मन इम (ज); २ परैया ते (ज); ३ मकानो ते न जानी बाल (ख); ४ त्योंही (ख); ५ राखियै (क) (छ); ६ कोहू (क) (ख) (ग) (छ) (न); ७ तो ह (ख), त्योह (ज); ८ प्रति ऊतर (ज); ९ की को (क); १० महस काम (न); ११ मोल (ज); १२ चौका (ख) (घ) (ज) ।

सेनापति स्याम रंग सेइ कै सुखित ह्वै
 कब्हा है उपाइ समुझाई कै सरस मैं ।
 पीरे पान खाइ नीरैं चूकि कै न जाइ मान
 खई मिटि जाइगी अरुसे ही के रस मैं ॥ ८० ॥
 मोती माल^१ पोहत ही सखिन मैं सोहत ही
 मोहत ही मन मृग-नैनी हाइ भाइ कै ।
 आयौ है अचानक तहाँई कान्ह बानक सौ
 प्यारी रस बस भई निरखत चाइ कै ॥
 सेनापति चातुर सखी के मिस आतुर ह्वै
 आप ही कहति ताहि बचन सुनाइ कै ।
 हित करि चित दै कै मोतियै परख लै कै^२
 आज लाल रेसमें सफल करु^३ आइ कै ॥ ८१ ॥
 छूटे आवै काज भिन्न करत संजोण साज
 अवगुन गहै नेह रूप सरसात है ।
 तीछन करथाँ है जातैं होति पति जीति करै
 लाल उर लागे अरि गात सियरात है ॥
 सेनापति बरने समान करि दोऊ तिनैं
 जानत हैं जान जाके ज्ञान अवदात है ।
 निसान कौ पाइ परै धन ही के अंतर तैं
 छूटि जात मान जैसे^४ बान छूटि जात है ॥ ८२ ॥
 आनंद कौ कंद मुख तेरौ ता समान चंद
 कैसे करि कीजियै कलेस नाम^५ धारी है ।
 आठ हू पहर कर तेरे ताप-हर कंज
 बिस कौ प्रसून कैसे होत अनुकारी^६ है ॥
 तेरी सुखदाई देह जोति की न सम होति
 केसरि सरिस कहियत कष्टवारी है ।
 सेनापति प्रभु प्रानप्यारी तू अनूप नारी
 तेरी उपमा की भाँति जाति न विचारी है ॥ ८३ ॥

१ लाल (ज); २ परखियै कै (क) (ग); ३ करि (ख) (ज) । ४ तैसें (ख) ।
 ५ मान (ख); ६ अलिकारी (ख) ।

हरि न है संग बैठी जोवन जुगारति है
 तिन ही कौ मन वच क्रम उमहति है ।
 जाकौं मन अनुराग बस ह्वैकै रह्यौ मधु
 बड़े-बड़े लोचननि चंचल^१ चहति है ॥
 सेनापति बार बार खेलत सिकार तहाँ
 मदन महीप तातैं सुख न लहति है ।
 कुंज कुंज छाँह तन तपति बरावति है
 हरिनी-ज्यौं ब्रज की बिरहिनी रहति है ॥ ८४ ॥

प्यारौ परदेस जाके नीकी मसि भीजति है
 अंजन की सोभा के समूह सरसत हैं ।
 कंत कौ मिले तैं कल मन कौं करति^२ ऐसी
 प्यारी है सदन अंग बिरह तपत हैं ॥
 सेनापति काम हू की बार है खरी भुलाई^३
 बावरे से भूले मन दंपति रहत हैं ।
 पानहिं^४ न लेत कर दोऊ अदभुत कर
 कैसे धौं परसपर पाती कौ लिखत हैं ॥ ८५ ॥

कमलै न आदरत रागै^५ अरुन धरत
 चित्त कौ बस करत^६ फूलन मैं न रमैं ।
 लै चलैं परमहंस गति महा उर राचैं
 जो हरि सौं मिलि रहैं आठ हू पहर मैं ॥
 करत सफल सब जीवन जनम जग
 जिनके प्रसंग सुख पावैं सुरतरु मैं ।
 सेनापति बरने हैं प्यारी के चरन जुग
 ताकी सब भाँति पाई^७ जाति मुनि बर मैं ॥ ८६ ॥

मिलत ही जाके बढ़ि जात घर मैंन चैन
 तन कौं बसन डारियत बगराड़ कै ।

१ लोचन निवंचल (क) (झ), लोचनानि वंचल (ग) (घ) । २ परत (ज); ३ बार
 मुह परी लाइ (ज); ४ पान हू (ख); ५ कमलै न आदर परागै (ज); ६ बस करन
 (ज); ७ पाइ (क) (ख) (ग) ।

आवत ही जाके नीकौ चंद न लगत प्यारी
छाया लोचन^१ की चाहियत सुखदाइके ॥
जाही के अरुन कर पाइ अब नित पति^२
सुखित सरस जाके^३ संगम कौ पाइ कै ।
ग्रीष्म की रितु बर बधू की समान करी
सेनापति बचन की रचना बनाइ कै ॥ ८७ ॥

निरखत रूप हरि लेत गद ही कौ सब
सूल है सु नीकाँ कछू कछो न परत है ।
अंगना सरूप यातैं भावति जो नाहै नारि
जोवत ही जाकौ मुख सो मन बरत है ॥
चित मैं न आवै नैक सरस^४ कौ देखत ही
तन तरुनापौ^५ देखैं चित उत रत है ।
सेनापति प्यारी कौ बखानी कै कुप्यारी हू कौ
बचन के पेच पटतर ही करत है ॥ ८८ ॥

कल है करति सब द्यौस निसाकर मुखी
पन ही कौ पाइ कै सुधाई^६ पकरति है ।
देखत ही भावै नर मन कौ अब निकाई
करति न कबहूँ जो हिय मैं अरति है ॥
निरखत सोभा नारि है न एक काम हू की
धनी सौ बहसि दारि लागियै रहति है ।
सेनापति कहै अचरज के बचन देखौ
भावती की सेज^७ अन भावती करति है ॥ ८९ ॥
घर तैं निकसि करि मार गहि मारत हैं
मन मैं निडर बन तीरथ करत हैं ।
संतन के पैडै परैं कुसै लै सदा ही चलैं
पर धन हरिबे कौ साध न करत हैं ॥

१ जोवना (ज); २ पति (क) (ख) (ग) (घ); ३ ताके (ख) । ४ परस (क) (ख) (ग) (घ); ५ तनु नापौ (ख) । ६ सुधाम (ख); ७ सेध (ग) (छ), सेव (ज);

नागा करमन कौं^१ करत दुरि छिपि पीछे
हरि मैं परत कै वे सूली^२ मैं परत हैं ।
सेनापति धुनि महा सिद्ध मुनि जस कर
ताहि सुनि तसकर त्रासन मरत हैं ॥ ६० ॥
रैनि ही के बीच पाँउ धरि लाल रंग भरि
होति जो कहनि महा रति रस डोर की^३ ।
सोभा परि नैन कौं बनाइ कर गहैं आइ
जो मुँह लगाई है भुलाई सुधि और की ॥
चीर है कुसुंभी बर बागों सुधरत जातैं^४
सदा सुख संगिनी रसिक सिरमौर की ।
बरनि कै प्यारी पन^५ रत है बताई कवि
सेनापति मति कौं सराहै कौन दोर की ॥ ६१ ॥
आप ईस सैल ही मैं अलकैं बहुत भौंति
राखत बसाइ उत मानत सुरति हौ ।
धनि हैं वे लोक आसा पालत जिनकी तुम
संतत रहत तजे दच्छिन की गति हौ ॥
सेनापति ईठ है न एक सी तिहारी डीठि
निरखत सब ही कौं लाल द्वै^६ जुगति हौ ।
धरौ निधि नील बास उत्तर सुधारत हौ
आए हौ कुबेर जू बहुत धनपति हौ ॥ ६२ ॥
तजत न गाँठि जे अनेक परबन^७ भरे
आगे पीछे और और रस सरसात हैं ।
गढ़ि गढ़ि छोलैं भली भौंति बोलैं आदर सौं
तपति हरन हिय^८ बीच सियरात हैं ॥
सेनापति जगत बखाने जे रसाल उर
बाढ़े पित्त कोप जिन तैं न ठहरात हैं ।
मानहु पिथूप बाढ़ै स्रवन की भूख माह
पूख कैसे ऊख बोल रावरे मिठात हैं ॥ ६३ ॥

१ वरमन कौं (ख); २ वसुली (ख) (घ); ३ महा सुगति के डोर की (क), हरि सुरति के डोर की (अ); ४ ताते (ख); ५ पर (ख) । ६ है (क) । ७ एखन (अ); ८ जिय (ख) ।

छतियाँ सकुच वाकी^१ को कहै समान तातै^२
 न रन तैं मुरै सदा बीर है करन मैं ।
 सबै भाँति पन करि बलमहि पाग राखै^३ ॥
 तेज की सुने तैं आप मानै मान खन^४ मैं ॥
 अबला लै अंक भरै रति जो निदान करै
 ससि सन मोभावंत मानियै जोधन मैं ।
 जुगति बिचारि सेनापति है बरनि कहै
 बर नर^५ नारि^६ दोऊ एक ही बचन मैं ॥ ६४ ॥
 मैलन घटावै महा तिमिर मिटावै सुभ
 डीठि कौं बढ़ावै चारि बेदन बतायौ है ।
 सन्यौ घनसार सम सीतल सलिल रस
 सेनापति पुरबिले पुन्यन ही पायौ है ॥
 कैसे मन आवै अचरज उपजावै बीच
 फूलैं सरसावै पीत बसन धरायौ है ।
 भव भय भंजन निरंजन के देखिबे कौं
 गंगा जू कौं मंजन सु अंजन बनार्यो^७ है ॥ ६५ ॥
 जाके रोजनामे सेस^८ सहस्र बदन पढ़ै
 पावत न पार जऊ सागर सुमति कौं ।
 कोई महाजन ताकी सरि कौं न पूजै नभ
 जल थल व्यापि रहै अद्भुत गति कौं ॥
 एक एक पुर पीछे अगन्ति कोठा तहाँ
 पहुँचत आप संग साथी न सुरति^९ कौं ।
 बानियै बखानै जाकी हुँडी न फिरति सोई
 नाहु सिय रानी जू कौं साहु सेनापति कौं ॥ ६६ ॥
 (इति श्लेष वर्णनम्)

१ ताकी (ख) (घ); २ छतिया सकुच ताने को कहै समान ताकी (ज); ३ मलमैं पगहि -
 राधै (क); ४ पन (ख); ५ बरनन (क) (ख) (ग) (घ) (ङ); ६ नाग (त) । ७ बतायौ (ख) ।
 ८ रोज ब मैं समु (क) (ग) (घ); ९ सुमति (घ) ।

दूसरी तरंग

शृंगार-वर्णन

अंजन सुरंग^१ जीते खंजन, कुरंग, मीन,
नैक न कमल उपमा का नियरात है ॥
नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे, प्यारे,
ज्यौ-ज्यौ मैं^२ निहारे त्यों त्यों खरा ललचात है ॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावै,
जिनको निरखि हियाँ हरषि सिरात है ।
कान लौ बिसाल, काम भूप के रमाल, बाल
तेरे दृग देखे मेरी मन न अघात है ॥ १ ॥
करत कलोल^३ सुति दीरघ, अमोल, लोल,
छुवै दृग-छोर, छवि पावत तरौना हैं ।
नाहिनै समान, उपमान और^४ सेनापति,
छाया कछू धरत चकित मृग-छाँना हैं ॥
स्याम हैं बरन, ज्ञान-ध्यान के हरन, मानौं
सूरति कौ धरे^५ बसीकरन के टोना हैं ।
मोहत हैं करि सैन, चैन के परम ऐन,
प्यारी तेरे नैन मेरे मन के खिलौना हैं ॥ २ ॥
चंचल, चकित चल, अंचल मैं झलकति,
दुरे नव नेह की निसानी प्रानपिय की ।
मदन की हेति^६, डारै ज्ञान हू के कन रेति,
मोहे मन लेति, कहे देति वात हिय की ॥
पैनी, तिरछौहीं, प्रीति-रीति ललचौहीं, कुल
कानि सकुचौहीं, सेनापति ज्यारी जिय की ।

१ तरंग (ङ); २ ही ज्यो ही ज्यों (ज); ३ करतल लोल (ख); ४ आन (ज);
५ मूरति ज्यों धरे (ज); ६ के हेत (ज);

नैक अरसौहीं, प्रेम-रस बरसौहीं, चुभी
 चित में हँसाहीं, चितवनि ताही तिय^१ की ॥ ३ ॥
 काम की कमान तेरी भृकुटी कुटिल आली,
 तातैं अति तीछन ए तीर से चलत^२ हैं ।
 घूँघट की ओट कोट, करि कै कसाई काम,
 मारे बिन काम, कामी केते ससकत हैं ॥
 तोरे तैं न दूटैं, ए निकासे हू तैं निकसैं न^३,
 पैने निसि-बासर करेजे कसकत हैं ।
 सेनापति प्यारी तेरे तमसे^४ तरल तारे,
 तिरछे कटाछ गड़ि छाती मैं रहत हैं ॥ ४ ॥
 हिय हरि लेत हैं, निकाई के निकेत, हंसि
 देत हैं सहेत, निरखत^५ करि सैन हैं ।
 सेनापति हरिनी के दृगन तैं अति नीके राजैं*
 दरद हैं हरत^६, करत चित चैन हैं ॥
 चाहत न अंजन, रसिक जन रंजन हैं,
 खंजन सरस रस-राग-रीति ऐन हैं ।
 दीरघ, ढरारे, अनियारे, नैक रतनारे,
 कंज से निहारे कजरारे तेरे नैन हैं ॥ ५ ॥
 केसरि निकाई, किसलय की रताई लिए,
 भाँई^७ नाहि जिनकी धरत अलकत हैं ।
 दिनकर-सागथी तैं सेना देखियत राते,

१ त्रिय (क) (ग) (घ) । २ लगत (त); ३ न निकसत (ख); ४ तार से (ज) । ५ नित
 प्रत (घ); ६ हरत हैं दरद (छ) (त) । ७ दाई (क) (ख) (घ) (छ) ।

* दो वर्यों के बद जाने से यहा छन्दोभंग दोष हो गया है । 'घ' प्रति के लिपि-
 कार ने 'सेनापति हरिनी के.....' आदि के स्थान पर 'सेना हरिनी के.....'
 पाठ दिया है । कन्तु ऐसा पाठ रखने से गति बिगड़ जाती है । बहुत संभव है कि 'राजैं'
 शब्द भ्रमवश प्रात्यों में लिख दिया गया हो । अर्थ की दृष्टि से भी यह अनावश्यक-सा
 है—संपादक ।

अधिक अनार की कली तैं आरकत हैं ॥
 लाली की लसनि, तहाँ हीरा की हसनि राजै,
 नैना निरखत, हरखत आसकत हैं ।
 जीते नरा लाल, हरि लालहिं ठगत, तेरे
 लाल लाल अधर रसाल झलकत हैं ॥ ६ ॥

कालिंदी की धार निरधार है अधर, गन
 अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं ।
 जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
 इंद्रनील कीरति^१ कराई नाहिं ए सहैं ॥
 गड़िन लगत सेना हिय के हरप-कर,
 देखत हस्त^२ रति कंत के कलेस हैं ।
 चीकने, सघन, अधियारे तैं अधिक कारे,
 लसत लछारे, सटकारे, तेरे केस हैं ॥ ७ ॥

नूतन जोबनवारी मिली ही^३ जो बन वारी,
 सेनापति बनवारी मन में बिचारियै ।
 तेरी चितवनि ताके चुभी चित बनिता के,
 है उचित बनि ताके मया कै पधारियै ॥
 सुधि न निकेतन की बाढ़ी उनके तन की
 पीर मीनकेतन की जाइ कै निवारियै ।
 तो तजि अनवरत^४ वाके और न बरत,
 कीजै लाल नव रत^५ बाल न बिसारियै ॥ ८ ॥

बिरह तिहारे घन बन उपवनन की,
 लागति हवाई^६ जैसी^७ लागति हवाई है ।
 सेनापति स्याम तुव आवन अवधि-आस,
 है करि सहाई बिथा केतियौ सहाई है ॥
 तजि निठुराई, आइ ज्यावौ जदुराई, हम
 जाति अबलाई जहाँ मदा अबलाई है ।

१ किरकि (क) (ख) (ग); २ रहत (ज); ३ है (ख) (ज); ४ अनवरति (ज); ५ रति (ज); ६ रुषाई (ज); ७ जैसे (ज);

दरस, परस, कृपा-रस सींचि अंग-लता
 जो^१ तुम लगाई^२ सोई^३ मदन लगाई है ॥ ६ ॥
 कुंद से दसन धन^४, कुंदन बरन तन,
 कुंद सी उतारि धरी^५ क्यों बनै^६ बिछुरि कै ।
 सोभा सुख-कंद, देख्यो चाहियै बदन-चंद,
 प्यारी जब मंद मुसकाति नैक मुरि कै ॥
 सेनापति कमल से फूलि रहैं अंचल मैं,
 रहैं दृग चंचल दुराए हू न दुरि कै ।
 पलकैं न लागैं, देखि ललकैं तरुन मन,
 भलकै कपोल, रहैं अलकैं बिथुरि कै ॥ १० ॥
 सोहैं संग आलि, रही रति हू के उर सालि,
 जोबन गरूर चाल चलति दुरद की ।
 कहै मुसकात बात, फूल से भरत जात,
 सेनापति फूली मानौं चाँदनी सरद की ॥
 छाव रही भरपूरि, पहिरे कपूर-धूरि,
 नागरी अमर-मूरि मदन दरद की ।
 मुख मृग-लंछन सौ कटि मृगराज की सी^७,
 मृग के से दृग, भाल बैंदी मृगमद की ॥ ११ ॥
 मधुर अमोल बोल, टेढ़ी है अलक लोल,
 मैनका न ओल जाकी^८ देखे भाइ अंग के ।
 रति की समान^९ सेनापति की परम प्यारी,
 तोहि देखे देवौ बस होत हैं अनंग के ॥
 सरस बिलास सुधाधर सौ प्रकास हास^{१०},
 कुच मानौं कुंभ दोऊ मदन मतंग के ।
 दीरघ, ढरारे, अनियारे, कजरारे प्यारे,
 लोचन ए तेरे मद-मोचन^{११} कुरंग के ॥ १२ ॥

१ जे (ज) २ जगाई (क) (ग); ३ तेई (ज) । ४ धन (ज); ५ उतरी धरि,
 उतारि धरि (ख); ६ बनै (ग) (घ) । ७ कैसी (घ) = जा के (क) (ग) (न); ८ सयान (क)
 (ग) (छ); १० मुख (ज); ११ मोचन (न) ।

नन्द के कुमार, मार हू तैं सुकुमार, ठाढ़े
 हुते निज द्वार^१, प्रीति-रीति परबीन हैं ।
 निकसि हौं आई, देखि रही सकुचाई, सेना-
 पति जदुराई मोहिं देखि हँसि दीन हैं ॥
 तब तैं है छीन छबि, देखिबे कौं दीन, सब
 सुधि-बुधि हीन हम निपट अधीन हैं ।
 बिरह मलीन, चैन पावत अली न, मन
 मेरो हरि लीन तातैं सदा हरि लीन हैं ॥ १३ ॥
 हित सौं निरखि हँसे, तौतैं तुम उर बसे,
 स्वाति हेत चातक से हम तरसत हैं^२ ।
 प्रीतम हौं ही के, हौं अधार सेनापति जी के,
 तुम बिन फीके मन कैसे हुलसत हैं ॥
 तेरे नेह नाते, तेरे लागत परौसी प्यारे,
 तेरी गली गए सुख सबै सरसत हैं ।
 तेरे मनोरथ चाउ, तेरेई दरस पथ
 तेरियै सपथ प्रान तोहि मैं बसत हैं ॥ १४ ॥
 चित चुभी आनि, मुसकानि मन-भावन की,
 मानि कुल-कानि रैन-दिन भरियत है ।
 भूलि गयौ गेह, सेनापति अति बाढ़्यौ नेह,
 चैन मैं न देह, मैं बस परियत है ॥
 लोग उतपाती, कानाबाती हैं करत घाती,
 जब गली बाकी^३ नैक पाउँ धरियत है ।
 एक संग रंग ताकी चरचा चलावै कौन,
 आँख भरि देखिबे की साध मरियत है ॥ १५ ॥
 तब तैं कन्हाई अब देत हौं दिखाई, रीति
 कहा है सिखाई तोहि देखे ही मुखारे हैं ।

१ गन-द्वार (ख) । २ हसत रसत है (क) (ख) (ग), हंस तरसत है (घ) । ३ ताकी
 गली (न) ।

नींद सौं उदास, सेनापति देखिबे की आस,
 तजि कै बिलास भए बैरागी बिचारे हैं ॥
 रूप ललचाने, भली बुरी कौं न पहिचानै^१,
 रावरे बियोग बावरे से करि डारे हैं ।
 लाल प्रानप्यारे सिख दै दै सब हारे, नैन
 तेरे मतवारे ते न मेरे मत वारे हैं ॥ १६ ॥
 रूप कै रिभावत हौं, किन्नर ज्यौं गावत हौं,
 सुधा वरसावत हौं लोचन^२ स्रवन^३ कौं ।
 हिय सियरावत हौं, जिय हू ते भावत हौं,
 गिरिधर ज्यावत हौं बर बधू जन कौं ॥
 रसिक कहावत हौं, यामैं कहा पावत हौं,
 चेटक लगावत हौं सेनापति मन कौं ।
 चितहिं चुरावत हौं, कबहुँ न आवत हौं,
 लाल तरसावत हौं हमैं दरसन कौं ॥ १७ ॥
 सैन समैं सुखधाम, सेनापति घनस्याम,
 कहत हैं मोसौं मेरे तुही सरबस है ।
 अब तौ विरमि रहे, जानौ कित रमि रहे,
 सुरत्यौ बिसारी भयौ दूभरौ दरस है^४ ॥
 प्रीति करि मोही तरसावत हौं मोही, तुम
 लाल निरमोही मन कीनौ करकस है ।
 बीती बरष सी आप^५ पातीहू कौं अरकसी,
 ऐसी चित बसी तौं हमारौ कहा बस है ॥ १८ ॥
 वैसौं करि नेह एक प्रान विवि देह, अब
 ऐसी निठुराई करि कौलौ तरसाइहौं ।
 बिरह तैं ताते, सेनापति अति राते, ऐसे
 कब दुख मोचन ए लोचन सिराइहौं ॥

१ कौन जाने अब (छ) । २ लोचन (ख) (ग) (छ); ३ सुवन को (क) । ४ अब तौ
 विरम रहे सेनापति रमि रहै सरतें बिसारी भयौ दूसरे बरसु है (ख); ५ आप (ख) (घ) ।

पाती पीछे पीछे हम आवत हैं निरधार,
 यह हरि बेर हरि^१ लिखत बनाइ हौ ।
 मोहिं परतीत न तिहारी कछु, कहा जानौ !
 कौन वह पाती जाके पीछे आप आइहौ ॥ १६ ॥

रोस करौ तोसौ, दोस तोही कौ सहस देहु,
 तोही कान्ह कोसौ, बोलि अनुचित बानियै ।
 तुही एक ईस, तोहि तजि और कासौ कहाँ,
 कीजै आस जाकी अमरष^२ ताकौ मानियै ॥

जीवन हमारो, जग-जीवन तिहारे हाथ,
 सेनापति नाथ न रुखाई मन आनियै ।
 तेरे पगन की धूरि, मेरे प्रानन की मूरि (?)
 कीजै लाल सोई, नीकी जोई जिय जानियै^३ ॥ २० ॥

छूट्यो ऐबो जैबो, प्रेम-पाती कौ पठैबो छूट्यो,
 छूट्यो दूरि दूरि हू तैं देखिबो दगन तैं ।
 जेते मधियाती सब तिन^४ सौ मिलाप छूट्यो
 कहिबो सँदेस हू कौ छूट्यो सकुचनतैं ॥

एती सब बातैं सेनापति लोक-लाज-काज
 दुरजन त्रास छूटी जतन जतन तैं ।
 उर अरि रही, चित चुभि रही देखौ एक,
 प्रीति की लगनि क्यों हूँ छूटति न मन तैं ॥ २१ ॥

चले तैं तिहारे पिय बाढ़्यो है बियोग जिय^५,
 रहियै उदास छूटि गयो है सदाई सौ ।
 लोचन खवत जल, पल न परति कल,
 आनंद कौ साज सब धर्यो है उठाइ सौ ॥

सेनापति भूले से सदा^६ रहियत तौतैं
 ज्ञान, प्रान, तन, मन लीनों है चुराइ सौ ।

१ बेर (ख), बार बार (छ) । २ अमरस (ख); ३ सोई जोई नीकी मन मानिये (ज) ।
 ४ मधिपाती सब तिन (घ), मध्य पाती सयतिन (न) । ५ लिय (ज); ६ सदाई (ज) ।

कछू न सोहाइ, दिन राति न बिहाइ, हाइ
 देखे तैं लगत अब ऊजर सौँ पाइसों ॥ २२ ॥
 लाल के बियोग तैं, गुलाब हू तैं लाल, सोई
 अरुन बसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यो है ।
 सैन सुख तज्यो, सज्यो रैन दिन जागरन,
 भूलि हू न काहूँ और रूप-रस चाख्यो है ॥
 प्यारी के नयन असुवान बरसत, तासौं
 भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यो है ।
 सेनापति मानौँ प्रानपति के दरस-रस,
 शिव कौँ जुगल जलसाई करि राख्यो है ॥ २३ ॥
 नूपुर कौँ भनकाइ मन्द ही धरति पाइ,
 ठाढ़ी आइ आँगन, भई ही साँझी^२ बार सी ।
 करता अनूप कीनी, रानी मैंन भूप की सी,
 राजै रासि रूप की, विलास कौँ आधार सी ॥
 सेनापति जाके दृग दूत हैं मिलत दारि,
 कहत अधीनता कौँ होत हैं सिपारसी ।
 गेह कौँ सिंगार सी, सुरत-सुख-सार^३ सी, सो
 प्यारी मानौँ आरसी, चुभी है चित आर सी ॥ २४ ॥
 बिब हैं अधर-बिब, कुंद मे कुसुम दंत,
 उरज अनार निरखत सुखकारी है ।
 राजै भुज-लता, कोटि कंटक कटाछ अति,
 लाल-लाल कर किसलै के अनुकारी है ॥
 सेनापति चरन^४ बरन नव पल्लव के,
 जंघन कौँ जुग रंभा थंभ दुति धारी है ।
 मन तौ मुनिन हू कौँ, जो बन-बिहारी हुतौ,
 सो तौ मृग-नैनी तेरे जोवन-बिहारी है ॥ २५ ॥

१ कौहूँ (क) (ग) (न) । २ साँझ (ख) (घ), सँझी (ङ); ३ आरसी (क) (ख) (ग) (न);
 ४ बरन (क) (ख) (ग) (च) (ङ) ।

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई
 सोभा मन्द पवन चलत जलजात की ।
 पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई
 ताही छवि कर ससि आभा पात पातकी ॥
 सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
 उज्ज्वल बिमल दुति पैयै गात गात की ।
 सैसव-निसा अथौत जोवन-दिन उदौत,
 बीच बाल-बधू^१ भाँई^२ पाई परभात की ॥ २६ ॥
 सुनि कै पुरान राखै पूरन कै दोऊ कान,
 बिमल निदान मति^३ ज्ञान कौ धरति है ।
 सदा अपमान, सनमान, सब सेनापति^४
 मानत समान^५, अभिमान तें विरति है ॥
 सेई है परन-साला सद्धा घाम, घन पाला,
 पंचागिनि ज्वाला, जोग, संजम^६, सुरति है ।
 लीनी सौं^७ माला, परे अंगुरीन जप-छाला,
 ओढ़ी मृगछाला पै न बाला बिसरति है ॥ २७ ॥
 मालती की माल तेरे तन कौ परस पाइ,
 और मालतीन हू तैं अधिक बसाति है ।
 सोने तैं सरूप, तेरे तन कौ अनूप रूप,
 जातरूप-भूपन तैं और न^८ सुहाति है ॥
 सेनापति स्याम तेरी सहज^९ निकाई रीभे,
 काहे कौ सिंगार कै कै बितवति^{१०} राति है ।
 प्यारी और भूपन कौ भूषन है तन तेरौ,
 तेरियै सुवास और बास बासी जाति है ॥ २८ ॥
 लोचन बिसाल, लाल अधर प्रबाल हू तैं,
 चंद तैं अधिक मंद हास की निकाई है ।

१ काल बधू (क) (घ); २ जाई (न) । ३ बुद्धि (न); ४ सदा सनमान अपमान हूँ की सेनापति (न); ५ सयान (क) (ख) (ग) । ६ संगम (न); ७ सोकु (क) (ग) (घ) (न); ८ ओटन (ख) (न), ओटन (घ), ओटत (छ); ९ अधिक (ख); १० चितवति (छ) (ज) ।

मन लै चलति, रति करति सुहासपन,
 बोलति मधुर मानौ सरस सुधाई^१ है ॥
 सेनापति स्याम तुम नीके रस बस भए^२,
 जानति हौं तुम्हैं उन मोहिनी सी लाई है ।
 काम की रसाल काढ़ै^३ बिरह के उर साल,
 ऐसी नव बाल लाल पूरे पुन्य पाई है ॥ २६ ॥
 झूठे काज कौ बनाइ, मिस ही सौं घर आइ,
 सेनापति स्याम बतियान उघरत हौं ।
 आइ कै समीप, करि साहस, सयान ही सौं,
 हँसी हँसी बातन ही बाँह कौ धरत हौं ॥
 मैं तौ सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
 जाकौं परपंच एतौ हम सौं करत हौं ।
 कहाँ एती चतुराई, पढ़ी आप^४ जदुराई,
 आँगुरी पकरि पहुँचा कौं पकरत हौं ॥ ३० ॥
 आए परभात सकुचात, अलसात गात,
 जाउक तिलक लाल भाल पर लेखियै ।
 सेनापति मानिनी के रहे रति^५ मानि नीके,
 ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै ॥
 सुख रस भीने, प्रानप्यारी बस कीने पिय,
 चिन्ह ए नवीने परतछ्छ अछ्छ पेखियै ।
 होत कहा नीदे, एतौ रैन के उनीदे अति,
 आरसीलै नैना आरसी लै क्योंन देखियै ॥ ३१ ॥
 नीके रमनी के उर लागे नख-छत, अरु
 घूमत नयन, सब रजनि^६ जगाए हौं ।
 आए परभात, बार-बार हौं जँभात, सेना-
 पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौं ॥

१ सुधाई (ख); २ सरबस भयै (अ); ३ बाढ़ै (अ) । ४ पढ़ि आए (ख) । ५ राति (क)
 (ख) (घ) (अ) । ६ रजनी (ख) (न) ।

कहा^१ है सकुच मेरी, हौं तौ हौं तिहारी चेरी,
 मैं तौ तुम निधनी^२ कौं धन करि पाए हौं ।
 आवत तौ आए, सुधि ताकी है कि नाहीं जाके,
 पाइ के महाउर की खौरि करि आए हौं ॥ ३२ ॥
 जाउकौ लिलार^३ ताके पाउकौ अधर, नैन
 अंजन है आज^४ मनरंजन लसत हौं ।
 वारी हौं तिहारी छवि ऊपर बिहारी, मेरे
 तारन कौं प्यारे सुधा-रस बरसत हौं ॥
 छूजियै न पाइ हौं तौं सेवक हौं सेनापति,
 प्रानपति मेरे तुम जीतैं सरसत हौं ।
 मान बिन सारौ, सरबस वारि डारौं, लाल
 वारौं ए चरन जे चरन परसत हौं ॥ ३३ ॥
 मो मन हरत, पै अनत बिहरत, इत
 डरत डरत पग धरनि धरत हौं ।
 ताही कौं सुहाग, सब ही तैं बड़ भाग जासैं
 करि अनुराग रस-रीति सौं ढरत हौं^५ ॥
 साँचे और ही सौं भूँठे हम सौं सुहासपन,
 सेनापति औसरै हू हमैं विसरत हौं ।
 तब वह कीनी, रैन बसे उनही के, अब
 पाइ परि मोहिं अपराधिनी करत हौं ॥ ३४ ॥
 बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
 भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हौं ।
 करि डारी छाती घोर घाइन सौं राती-राती^६
 मोहिं यौं बतावौं कौन भौंति छूटि आए हौं ॥
 पाँदौ बलि सेज, करौं औषद की रेज बेगि,
 मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौं ।

१ कहाँ (क) (ग) (न); २ नीधन (क) (ग) (घ) । ३ लिलाट (ख); ४ आजि (ख) ।
 ५ एतै अनुरागु नभ भावन करत हौ (न) । ६ तुम (ख) ।

कीने कौन हाल ! वह बाघिन है बाल ! ताहि
कोसति हौं लाल, जिन फारि-फारि खाए हौ ॥ ३५ ॥

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बैदी मृगमद की असित है ।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है ॥
हैं कै रस बस जब^१ दीबे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है ।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं
कही प्रानपति यह अति अनुचित है ॥ ३६ ॥

स्याम लछारे लसत, बार बारन-गमनी के ।
नव नव भूषन धरति, बार बार नग-मनी के ॥
ऐसी सुकृतन नारि, कनक बरन तन बनति है ।
सेनापति कवि जीभ, तनक बरनत न बनति है ॥
नव जोवन पूरन बिपुल, कुच कुंदन कलसा धरति ।
जाके निरखत खन बढ़ै, सुहिण मदन, कल, साध-रति^२ ॥ ३७ ॥

सहज^३ बिलास हास हिय के हुलास तजि,
दुख के निवास प्रेम पास परियत है ।
भूलि जात धाम, सोच बाढ़त है आठौं जाम,
बिना काम तरसि तरसि मरियत है ॥
मिलन न पैयै, बिन मिलै अकुलैयै अति,
सेनापति ऐसे कैसे दिन भरियत है ।
कहा कहौं तोसौं मन, बात सुनि मोसौं,
जाकौ देखिबौ कठिन तासौं नेह करियत है ॥ ३८ ॥

ज्यौं ज्यौं सखी सीतल करति उपचार सब^४,
त्यौं त्यौं तन बिरह की बिथा सरसाति है ।
ध्यान कौं धरत सगुनौतियौं करत, तेरे
गुन सुमिरत ही बिहाति दिन-राति है ॥

सेनापति जदुबीर मिलैं ही मिटैगी पीर,
जानत हौ प्यास कैसे ओसनि बुझाति है ।
मिलिबे के समैं आप पाती पठवत, कछू
छाती की तपति पति^१ पाती तैं सिराति है^२ ॥ ३६ ॥

मानहु प्रवाल पेसे ओठ लाल लाल, भुज
कंचन मृनाल तन चंपक की माल है^३ ।
लोचन बिसाल, देखि मोहे गिरधर लाल,
आज तुही बाल तीनि लोक में रसाल है ॥
तोहि तरुनाई सेनापति बनि आई, चाल
चलति सुहाई मानौ मंथर मराल है ।
नैंक देखि पाई, मो पै बरनी न जाई^४, तेरी
देह की निकाई सब गेह^५ की मसाल है ॥ ४० ॥

प्रीति सौं रमत, उन्हीं के बिरमत घर,
देखि बिहँसत, उन्हीं कौं वे सुहाति हैं ।
जानि वेई बाम, भोरैं आए हौ हमारे धाम,
सेनापति म्याम हम यातैं अनखाति हैं ॥
तुम अनबोले अनमने ह्वै रहत लाल,
यातैं हम बोले, बोलि पीछे पछिताति हैं ।
अब तौ जरुर कीनों चाहियै तिहारो कह्यो,
आए तैं कहाँगे ए^६ गुमान परि जाति हैं ॥ ४१ ॥

लोल हैं कलोल^७ पारावार के अपार, तऊ^८
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं ।
सेनापति नीकी पटवास हू तैं ब्रज-रज,
पारिजात हू तैं बन-लता सरसति हैं ॥
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी,^९
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं ॥

१ कक्षा (व), नाहि (ख); २ पति पाती देयै जाति है (न) । ३ चंपे की सी माल हैं (क) (ख); ४ आइ (न); ५ गेह (न) । ६ की (ज) । ७ कथोल (न); ८ तिउ (क) (ग) (घ), तैऊ (ज); ९ नारी (क) (ख) (ग);

कंचन अटा पर जराऊ परजंक, तऊ
 कुंजन की सेजें वे करेजे खरकति^१ हैं ॥ ४२ ॥
 चले उत पति के बियोग उतपति भई,
 छाती है तपति ध्यान प्रान के अधार कौ^२ ।
 सेनापति स्याम जू के बिरह बिहाल बाल,
 सखी सब करति बिचार उपचार कौ^३ ॥
 प्रीतम अरग जातैं, ताही तैं अरगजा तैं
 सीरक न^४ होति, जुर जारत है मार कौ^५ ।
 सीतल गुलाब हू सौं घिसि उर पर कीनौ,
 लेप घन सार कौं सो मानौ घनसार कौं^६ ॥ ४३ ॥
 कौहू तुव ध्यान करै, तेरौ गुनगान कौहू,
 आन की कहत आन, ज्ञान बिसरायौ है ।
 तो सौं उरभाइ, मन गिरै मुरभाइ, सकै
 कौन सुरभाइ, काहू मरम न पायौ है ॥
 सुधा तैं सरस ताकौं तेरौ है दरस, तेरे
 ताकौं न तरस सेनापति मन आयौ है ।
 तेरे हंसि हेरे हरि, हिये ऐसे हाल होत,
 हाला मैं हलाइ मानौं हलाहल प्यायौ है ॥ ४४ ॥
 वाके भौन बसे, भौन कीजै, हौं न मानौं रोस,
 कहाँ एती कौन तैं सकुच उर आनी है ।
 सेनापति आवत बनावत हौं प्रात बात,
 निपट कुटिल सब कपट की बानी हैं ॥
 तेरे काज दीन रहैं, तो बिन मलीन हम,
 तोही सौं अधीन हाथ तेरेई बिकानी हैं ।
 रावरे सुजान ! हम बावरे अजान, कीजै
 ताही सौं सयान जे कहावति सयानी हैं ॥ ४५ ॥
 लयौ मन मोहि, तातैं सूझत न मोहिं सखी,
 मदन-तिमिर मेरौ जीउ रह्यौ दबि है ।

१ करकति (ज) । २ के (न); ३ सीकरन (ज); ४ लेप घनमार के समानो अवसर के (न) ।

सेनापति जीवन-अधार बिन घनसार,
 गंधसार हार बिरहानल कौं हबि है ॥
 लोचन-कुमुद नँद-नंदन कौं मुख-चन्द,
 उर-अरबिंद ताकौं ऐन मैँन-रबि है ।
 छाँड़ि दै अपार बार बार उपचार मेरे
 ही-तम के हरिबे कौ प्रीतम की छबि है ॥ ४६ ॥
 बाल, हरिलाल के बियोग तैं बिहाल, रैन
 बासर बरावै बैठि बर की निसानी सौं ।
 बोल ? कौन बल^१ ? कर-चरन चलावै कौन ?
 रहत हैं प्रान प्रानपति की कहानी सौं ॥
 लागि रही सेज सौं, अचेत ज्यौं, न जानी जाति,
 सेनापति बरनत बनत न बानी सौं ।
 रही इकचक, मानौं चतुर चितेरे, तिय
 रंचक लिखी है कोई कंचन के पानी सौं ॥ ४७ ॥
 सखी सुख-दैन स्यामसुन्दर कमल-नैन,
 भिस कै सुनाए बैन देखि गुरुजन^२ मैं ।
 सेनापति प्रीतम की सुनत^३ सुधा सी बानी,
 उठि धाई बाम, धाम-काभ छाँड़ि छन मैं ॥
 छबि की सी छटा स्याम-घन की सी घटा, आई
 भाँकी चढ़ि अटा, पगी जोवन मदन मैं ।
 वे^४ जु सीस बसन सुधारिबे कौं भिस करि,
 कीनां पाइलागनौ सो लागि रह्यो मन मैं ॥ ४८ ॥
 पून्यों सी तिहारी लाल, प्यारी मैं निहारी बाल,
 तारे सम मोती के सिंगार रही साजि कै ।
 भीनौ पटु गात, चाँदनी सौं अवदात, जात
 लोचन-चकोरन कौं देखैं दुख भाजि कै ॥

१ बोल कौ नखु (क) (ग) (न) । २ दुरजन (क) (ग) (घ) (ङ) (ज) (न);
 ३ सुनी तू (क) (ग) (घ) (ज); ४ तै (क) (ग) (घ) ।

सेनापति तनसुग्य सारी की किनारी बीच,
 नारी के बदन आछी छवि रही छाजि कै ।
 पूरन सरद-चंद-बिंब, ताके आस पास,
 मानहु अखंड रह्यो मंडल बिराजि कै ॥ ४६ ॥
 काम-केलि-कथा कनाटेरी दै सुनन लागी,
 जऊ अनुरागी बाल केलि के रसन है ।
 तरुन के नैना पहिचानि, जिय में की जानि,
 लागी दिन द्वैक ही तैं भौहनि हसन है^१ ॥
 चंपे के से फूल, भुज-मूल की फलक लागी
 सेनापति स्याम जू के मन में बसन है ।
 सूधी चितवन तिरछौही सी लगन लागी,
 बिन ही कुचन लागी कंचुकी लसन है ॥ ५० ॥
 भौन सुधराए सुख साधन धराए, चारथौ
 जाम यौ बराए सखी आज रति राति है ।
 आयौ चढ़ि चंद, पै न आयौ बसुदेव-नंद,
 छाती न धिराति आधी राति नियराति है ।
 सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीति मोहिं,
 पँछति हौं तोहि मोसी^२ और को सुहाति है ।
 किन बिरमाए, केलि-कला कै^३ रमाए, लाल
 अजहूँ न आए धीर कैसे धरि जाति है ॥ ५१ ॥
 सजनी तिहारी सब रजनी गँवाई जागि,
 सेनापति ग्रौस मग जोवत गँवाए हैं ।
 चैत चौदनी चितै भई बिहाल बाल तब,
 ताके प्रान राखिबे कौ बानक बनाए हैं ॥
 लै कै^४ कर बीन, परवीन संग की अलीन,
 रवन तिहारे गीत स्रवन सुनाये हैं ।
 ताही एक राति उन लालन तिहारे गुन,
 पलक लगाए नैक पल कल गाए हैं ॥ ५२ ॥

१ भौह की हसनि । (घ) । २ तोसी (ज); ३ में (ज) । ४ लै लै (न) ।

चंद दुति मंद कीने, नलिन मलिन तैं ही,
 तो तैं देव अंगनाऊ रंभादिक तर हैं ।
 तोसी एक तुही, अरु तोसे तेरे प्रतिबिंब
 सेनापति ऐसे सब कवि कहत रहैं ॥
 समुझैं न वेई, मेरे जान यौ कहत जेई,
 प्रतिबिंब वैह^१ तेरे^२ भेष निरंतर हैं^३ ।
 यातैं मैं बिचारि प्यारी परे दरपन बीच,
 तेरे प्रतिबिंबौ पै न तेरी पटतर हैं ॥ ५३ ॥

लाल मनरंजन के मिलिबे कौं मंजन कै,
 चौकी बैठि बार सुखवति बर नारी^४ हैं ।
 अंजन, तमोर, मनि, कंचन^५, सिंगार बिन,
 सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है ।
 सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
 देखि कै दृगन जिय उपमा बिचारी है ।
 ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
 परबीन गाइन^६ की ज्यौं अलापचारी है^७ ॥ ५४ ॥

कोमल, अमल, कर-कमल विलासिनी के,
 रचि पचि कीनी बिधि सुंदर सुधारि है ।
 सोहति जराऊ, अँगुरीन मैं अँगूठी, पुनि
 द्वै ई द्वै छलान राखै पोरऊ सिंगारि है ॥
 मिहँदी की बिंदकी बिराजै तिन बीच लाल,
 सेनापति देखि पाई उपमा बिचारि है ।
 प्रात ही अनंद सौं अरुन अरबिंद मध्य,
 बैठी इंद्रगोपन की मानौं पँतवारि^८ है ॥ ५५ ॥

पहिले तौ इत, सेनापति प्रानपति नित,
 मेरे चित-हित बार बार हरि आउते ।

१ देह (ज); २ वेई (क) (ख) (ग) (घ); ३ निरत रहें (न) । ४ वृजनारी (ख);
 ५ कंचुकौ (ख); ६ गायक (ज); ७ तान बिन मान बिन सादियै रहति मन, परबीन
 इन की यो अलापचारी है (ख) । ८ पति चारि (ज) ।

हिय हिलि-मिलि हँसि हँसि बतियाँन कहि,
 भाँति-भाँति काम केलिकला सौँ रिझाउते ॥
 कहे सुने काहू के न आइबौ तजहु तुम,
 यह कहि आँचर सौँ भारी रज पाँउ ते ।
 करौंगी बधाई, आज कुँवर कन्हवाई आए,
 आवौ लाल भाउते^१ कहौ धौँ कौन गाँउ ते ॥ ५६ ॥
 चन्द की कला सी, चपला सी, तिय सेनापति,
 बालम के उर बीज आनंद के ब्रोति है ।
 जाके आगे कंचन मै रंचक न पैयै रुचि,
 मानौं मनि-मोती-लाल-माल^२ आगे पोति है ।
 देखी^३ प्रीति गाढ़ी, पैंधे तनसुख ठाढ़ी, जोर
 जोबन की बाढ़ी खिन खिन और होति है ॥
 गोरी देह भीने बसन मै भलकति मानौं (?)
 फानुस के अंतर दिपति दीप-ज्योति है ॥ ५७ ॥
 सो गज गमनि है^४, असोग जग-मनि देख,
 जात सेनापति है सो पैग से नापति है ।
 तेरे अब लाइक है, सोई अब लाइ कहै,
 सची सील-गति जातैं सची सी लगति है ॥
 बालम तिहारी उन बाल-मति हारी निद्रा,
 नाहिं नैक रति जातैं नहिंनै करति है ।
 न दरप धारौ, करि आदर पधारौ, तिय^५
 जोबन बनति पिय ! कीनी^६ नव नति^७ है ॥ ५८ ॥
 षोडस बरस की है, खानि सब रस की है,
 जो सुख बरस की है, करता सुधारौ है^८ ।
 उजरी कनक, मनि गूजरी भनक, ऐसी
 गूजरी बनक बनी^९, लाल तन सारो है ॥

१ आए आए लाल भावते (छ) । २ माल लाल (ख) (ज); ३ देखो (क) (ग) (छ) । ४
 सोग जग मनि है (क) (ख) (ग, घ); ५ कन्दर पधारौ भरी आदर पधारौ पिय (ख); ६
 जानि (न); ७ रति (क) (ग) । ८ समारो है (न); ९ बानि (ज) ।

सौह मो तिहारी, सेनापति है बिहारी ! मैं तौ
 गति-मति हारी जब रंचक निहारी है ।
 नन्द के कुमार वारी, प्यारी सुकुमार वारी,
 भेष मारवारी मानौ नारी मार वारी है ॥ ५६ ॥

नैन नीर बरसत, देखिबे कौ तरसत,
 लागे काम सरसत पीर उर आति की ।
 पाए न सँदेसे तातैं अधिक अँदेसे बदे,
 सोचै सुकुमारि पै न कहै मन गति की ॥
 ताही समैं काहू औचकाही^१ आनि चीठी दीनों,
 देखत ही सेनापति, पाई प्रीति रति की ।
 माथे लै चढ़ाई, दोऊ दगनि लगाई, चूमि
 छाती लपटाई राखी पाती प्रानपति की ॥ ६० ॥

जाँतैं प्रानप्यारे परदेस कौ पधारे ताँतैं,
 बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है ।
 करि कर ऊपर कपोलहिं कमल-नैनी,
 सेनापति अनमनी बैठियै रहति है ॥
 कागहिं उड़ावै, कौहू कौहू^२ करै सगुनौती,
 कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है ।
 पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू
 प्रीतम कौ चित्र मैं सरूप निरखति है ॥ ६१ ॥

तेरा मुख देखे चन्द देखों न सुहाई^३, अरु
 चंद के अछत जाकौ मन तरसत है ।
 ऐसे तेरे मुख सौ, कहत सब कबि, ऐसे
 देखों मुख चन्द के समान दरसत है ॥
 वे तौ समुझै न कछु, सेनापति मेरे जान,
 चन्द तैं मुखारबिंद तेरा सरसत है ।
 हँसि हँसि, मीठी मीठी, बातें कहि कहि, ऐसे
 तिरछे^४ कटाछ कब चन्द बरसत है ॥ ६२ ॥

१ औचकाई (ख) । २ क्योहू (ख), कोऊ (घ), कह (ङ) (ज) । ३ सुहात (घ); ४ तीछन (न) ।

हितू समभावैं, गुरुजन सकुचावैं, बैन
 सिख के सुनावैं, पै न चैन लहियत है ।
 सेनापति स्याम मुसकाइ मन बस^१ कीनौ,
 तातैं निसि-बासर बिरह दहियत है ॥
 नेह तैं बिकल, गेह बैठे रहियत नित,
 कुल कौ कलंक कहौ कैसे सहियत है ।
 कौहू जौ अचानक मिलैं तौ मिलैं मारग में,
 वाकी उत जैबौ अब कैसे सहियत है ॥ ६३ ॥
 अति ही चपल ए विलोचन हठीले आली,
 कुल कौ कलंक कछु मन में न आन्या है ।
 सेनापति प्यारे मुख^२-सोभा-सुधा-कीच-बीच,
 जाइ^३ परे जोरावर बरज्या न मान्या है ॥
 मैं तौ मतिहीन नैन फेरिवे कौ मन-हाथी,
 पठ्यौ मनाइ नेह-आँदू उरभान्या है ।
 पंकज की पंक^४ मैं चलाए गज की सी भौति,
 मन तौ समेत^५ नैन तहाँ मस सान्यौ है^६ ॥ ६४ ॥
 जरद बदन, पान खाए से रदन^७, मानौ
 हरद सरद-चंद दुति दिखावति है ।
 चीकने चिकुर छूटि रहे हैं विंसार भाल,
 बाँधी कसि पट्टी सेनापति रिभावति है ॥
 कीने नत नैन, देखै मुख-चंद नंदन^८ कौ,
 अंक लै मयंक-मुखी ताहि मल्हावति है ।
 बाएँ कर होरिल कौ सीस राखि^९ दाहिने सौं,
 गहे कुच प्यारी पयपान करावति है ॥ ६५ ॥
 सो तौ^{१०} प्रानप्यारौ साँचा नैनन कौ तारौ,
 जाहि नैक होत न्यारौ देखिबौई मूसियत है ।

१ बस कीन्हो मन (ज) । २ सुख (क) (ख) (ग) (घ) (न); ३ जाय (क) (ग) (घ); ४ पच (क) (ख) (ग); ५ समात (क) (ग), समाप (न); ६ मन ता समेत नैनन हा में समान्यो है (ज) । ७ सरदन (क)(ग)(घ)(ङ्ग) । ८ मुखनंद (ग); ९ सिर धरि (ज) । १० ता सौ (ख) ।

नैक जौ करत गौन, सूनों न सुहात भौन,
 सुनत न सौन कछु केतौ भूसियत है ॥
 सेनापति ईस सदा, सेइयै नवाइ सीस,
 जा बिन मरम उर कौं मसूसियत है ।
 सब सुख सार, तन-मन कौं सिंगार, ऐसौ
 जीवन-अधार तासौं कैसे रूसियत है ॥ ६६ ॥
 लागै न निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
 कही न बनत कछु जैसी तुम कंत की ।
 मिलन की आस तैं उसास नाहीं छूटि जात,
 कैसे सहौं सासना मदन मयमंत की ॥
 बीती है अवधि, हम अबला अवध, ताहि
 बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जंत की ।
 कहियौ पथिक परदेसी सौं कि धन पीछे,
 है गई सिसिर, कछु सुधि है बसंत की ॥ ६७ ॥
 कौनै विरमाए, कित छाए, अजहूँ^१ न आए,
 कैसे सुधि पाऊं प्यारे मदन गुपाल की ।
 लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल हैहैं,
 जा दिन बदन-छवि देखौं नंद-लाल की ॥
 सेनापति जीवन-अधार गिरिधर बिन,
 और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की ।
 इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी
 लहर लहर दृग बाँई ब्रज-बाल की ॥ ६८ ॥
 सेनापति मानद^२, तिहारी मोहिं आन, हौं तो
 जानति हो कान्ह तेरी मोसौं एक रति है ।
 सो तौ आन ठानत हौं, उत रति मानत हौं,
 जानत हौं ऐसी प्रीति क्यों खटक रति है ॥
 अब दिन द्वैक ही तैं हिलनि मिलनि तासौं,
 हिय की खिलनि सो हिए कौं पकरति है ।

सब सुख-दैनी, जाके बड़े नैना बैनी, वह
 तोसौं मैना बैनी सैना बैनी सी करति है ॥ ६६ ॥
 नीकी अंगना है, भावै सब अंग नाहै, देखी
 निज अंगना है ठाढ़ी अंग सिंगारति है ।
 यह वसुधा रति है, ऐसौ जसु^१ धारति है,
 केलि कौं सुधारति है देति सुधा रति है ॥
 पूरि कामना सकत, तोरौ ताकी आस कत,
 सेनापति आसकत, नींद बिसारति है ।
 बोलनै सराहति है, प्रान बलि हारति है,
 तन-मन हारति है तोहि निहारति है ॥ ७० ॥
 सहज निकाई मो पै बरनी न जाई, देखे
 उरबसी हूँ कौं बिन दरप करति है ।
 तोहि पाइ कान्ह, प्यारी होइगी बिराजमान,
 ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है ॥
 देखे ताहि जियौ, बिन देखे पै न पानी पियौ
 सेनापति ऐसी अति अर पकरति है ।
 तातैं घनस्याम ताके आप ही पधारौ धाम,
 जातैं^२ सब सुखन की अरप करति है ॥ ७१ ॥
 बागौ निसि-बासर सुधारत हौं सेनापति,
 करि निसि बास रसु धारत सुरत हौं ॥
 दै कै सरबस भरमावत हौं उनैं, मेरौ
 मन सरबस भरमावत रहत हौं ॥
 सादर, सुहास, पन ता ही कौ करत लाल,
 सादर सुहासपन ताही कौ करत हौं ।
 मानौ अनुराग, महाउर कौं धरत भाल
 मानौ अनुराग महा उर कौं धरत हौं ॥ ७२ ॥
 अमल कमल, जहाँ सीतल सलिल, लागी
 आस-पास पारिन^३ सबनि ताल जाति है ।

१ वसु (ख) । २ जाकी (क) (ग) (घ), जाके (ख) (ज) । ३ पारिनुस (क) (ख),
 फारिनुस (घ), पारिन सौ ।

तहाँ नव नारी^१, पंचवान बैस वारी^२, महा
 मत्त प्रेम-रस आस बनि ताल जाति है^३ ॥
 गावति मधुर तीनि, ग्राम सात सुर मिलि,
 रही ताननि मैं बसि^४, बनि ताल जाति है ।
 सेनापति मानौ रति, नीकी^५ निरखत अति,
 देखि कै जिनै सुरेस बनिता लजाति है ॥ ७३ ॥
 कमल तैं कोमल, बिमल अति कंचन तैं,
 सोभत हैं अंग भासमान बरनत के ।
 ताकी तरुनाई, चतुराई, की निकाई कीब,
 कान परी वा सभा समान बरनत के ॥
 सेनापति नंद-लाल पेंचन ही बस करी,
 पाए फल बल्लभा, समान वर न तके ।
 दिन दिन प्रीति नई, देखत अनूप भई,
 वाम भाग की प्रभा समान बरन तके ॥ ७४ ॥

(इति शृङ्गार वर्णनम्)

१ वनधारी (ख); २ चारी (छ); ३ महामत्त रस आस बसु यनिता चजाति है (न),
 महामत्त एन रस आस बनिता लज ति है (ज); ४ बस (क); ५ कीनी (ख) ।

तीसरी तरंग

ऋतु-वर्णन

बरन बरन तरु फूले उपवन बन^१,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है ।
बंदी जिमि^२ बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
गुंजत मधुप गान गुन^३ गहियत है ॥
आवै आस-पास पुहुपन की सुबास सोई
सोंधे के सुगंध मौंफ सने रहियत है ।
सोभा कौं समाज, सेनापति सुख-साज, आज
आवत बसंत रितुराज कहियत है ॥ १ ॥

मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर^४,
सरवर नीर जन मज्जन^५ के काज के ।
मधुकर पुंज पुनि मंजुल करत गुंज,
सुधरत^६ कुंज सम सदन समाज के ॥
व्याकुल बियोगी, जोग कै सकैन जोगी, तहाँ^७,
बिहरत भोगी सेनापति सुख साज के ।
सघन तरु लसत, बोलैं पिक-कुल सत,
देखौ हिय हुलसत आए रितुराज के ॥ २ ॥

लसत कुटज, घन चंपक, पलास, बन,
फूलीं सब साखा जे हरति जन चित्त हैं ।
सेत, पीत, लाल, फूल-जाल हैं बिसाल, तहाँ
आछे अलि अछर, जे कारज^८ के मित्त हैं ॥
सेनापति माधव महीना भरि नेम करि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं ।

१ बरन बरन फूले सब उपवन बन (न); २ जन (न); ३ गुन गान (न) ।
४ धरमधार (ख); ५ सब मंजन (न); ६ सुधरत (ख); ७ जहाँ (क) । ८ काजर (क) (ग);

कागद^१ रङ्गीन मैं प्रवीन हैं वसंत लिखे,
 मानौं काम-चक्कवै कै विक्रम^२ कवित्त हैं ॥ ३ ॥
 लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
 स्याम रंग भेंटि^३ मानौं मसि मैं मिलाए हैं ।
 तहाँ मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
 मलय पवन उपवन-वन धाए हैं ॥
 सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
 देखि देखि भाउ कबिता के मन आए हैं !
 आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
 बिरही दहन काम^४ क्वैला परचाए हैं ॥ ४ ॥
 केतकि, असोक, नव^५ चंपक, बकुल कुल
 कौन धौं बियोगिनी कौं ऐसौ बिकराल है ।
 सेनापति साँवरे की, सूरति की सुरति की^६
 सुरति कराइ करि डारत बिहाल है ॥
 दछिन-पवन एती ताहू की दवन जऊ,
 सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है ।
 लाल हैं प्रवाल फूले देखत बिसाल, जऊ
 फूले और साल^७ पै रसाल उर-साल है ॥ ५ ॥
 सरस सुधारी राज-मंदिर मैं फुलवारी,
 मोर करैं सोर, गान कोकिल विराव के ।
 सेनापति सुखद समीर है, सुगंध मंद,
 हरत^८ सुरत-सम-सीकर^९ सुभाव के ॥
 प्यारी अनुकूल, कौहू करत करन-फूल
 कौहू सीसफूल, पावँड़ेउ मृदु पाँव के ।
 चैत मैं प्रभात^{१०}, साथ प्यारी अलसात, लाल
 जात मुसकात, फूल वीनत गुलाब के ॥ ६ ॥
 धरथौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि
 ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत है ।

१ कागद (ज); २ विक्रम (क) (ख) (ग) (न) । ३ भेंट (ख); ४ काज (क) (ख) (ग) (घ) । ५ धन (ख) (ज); ६ मूरति को सुरति को (न) । ७ फूलेउ रसाल (क) । ८ रहत (ज); ९ सीतल (ख); १० विभात (क) (ग) (घ) (ज) (न) ।

सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ
 भौरी देखि होत अलि आनंद अनंत है ॥
 नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब
 सजी तेल ताई चैन मै न मयमंत है ।
 सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
 बनी दुलहिन बनी^१ दूलह बसंत है ॥ ७ ॥
 तरु नीके फूले बिबिध, देखि भए मयमंत ।
 परे बिरह बस काम के, लागे सरस वसंत ॥
 लागे सरस वसंत, सघन उपवन वन राजत ।
 कोकिल के कल गीत, मधुर सेनापति साजत ॥
 तजे सकुच के भाउ^२, भाउ तजि मान मनी के ।
 सुर, नर, मुनि, सुख संग रंग राचै तरुनी के ॥ ८ ॥
 दच्छिन धीर समीर पुनि, कोकिल कल^३ कूजंत ।
 कुसुमित साल रसाल जुत, जो बन सोभावंत ॥
 जोवन सोभावंत, कंत-कामिनि मनोज-बस ।
 सेनापति मधु मास, देखि बिलसत प्रमोद-रस ॥
 दरस-हेत तिय लिखत, पीय^४ सियरावहु अच्छिन ।
 हरहु हीय-संताप, आइ हिलि^५ मिलि सुख दच्छिन ॥ ९ ॥
 जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
 ताग^६ तहखाने के^७ सुधारि भारियत हैं ।
 होति है मरम्मति बिबिध जल-जंत्रन की,
 ऊँचे ऊँचे^८ अटा, ते^९ सुधा सुधारियत हैं ॥
 सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
 सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं ।
 ग्रीपम के बासर बराइबे कौ सीरे सब,
 राज-भोग काज साज यौ सम्हारियत^{१०} हैं ॥ १० ॥
 वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि^{११},
 ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है^{१२} ।

१ बना (ख) (घ), बन्यो (न) । २ साज तजे सब सकुच (न) । ३ कुल (न); ४ पिय (अ); ५ मिलि (ख) । ६ ताल (ख); ७ ते (न); ८ ऊँची ऊँची (अ); ९ तै (घ); १० सवारिअत (न), समाजियत (अ) । ११ करनि कर (न); १२ है (ख) (घ);

तचति धरनि, जग^१ जरत भरनि, सीरी
 छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी^२ विरमत है^४ ॥
 सेनापति नैक दुपहरी के डरत, होत^३
 धमका बिपम, ज्यों न^४ पात खरकत है^५ ।
 मेरे जान पौनों सीरी ठौर कौं पकरि कौनों,
 घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है^५ ॥ ११ ॥
 सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुवै,
 नद, नदी, कुवै कोपि डारत सुखाइ कै ।
 चलत पवन, मुरझात उपवन बन,
 लाग्यो है तवन, डार्यो भूतलों^६ तचाइ कै ॥
 भीषम तपत रितु ग्रीषम सकुचि तातैं,
 सीरक छिपी है तहखानन में जाइ कै ।
 मानौं सीत काल, सीत-लता के जमाइवे कौं,
 राखे हैं विरंचि बीज धरा में धराइ कै ॥ १२ ॥
 प्रात नृप न्हात, करि असन बसन गात,
 पैधि सभा जात जो लौं बासर सुहात है ।
 पीछे अलसाने, प्यारी संग सुख साने, बिह-
 रत खसखाने, जब घाम^७ नियरात है ॥
 लागे हैं कपाट, सेनापति रंग-मंदिर के^८,
 परदा परे, न खरकत कहूँ पात है ।
 कोई न भनक, ह्वैकै चनक-मनक रही,
 जेठ की दुपहरी कि मानौं अधरात है ॥ १३ ॥
 काम कै^९ प्रथम जाम, बिहरै उसीर धाम,
 साहिव सहित वाम, घाम बितवत हैं ।
 नैक होत साँझ, जाइ बैठत सभा के माँझ,
 भूपन बसन फेरि और पहिरत हैं ॥
 ग्रीषम की^{१०} बासर बड़ाई बरनी न जाइ,
 सेनापति कवि कहिबे कौं उमहत हैं ।

१ जनु (ख); २ पंथ (ख); ३ दुपहरी डरकत होत (अ); ४ जो न (ख), पै न (न);
 ५ है (ख) (घ) । ६ भूतल (न), भूत ज्यों (ख) । ७ वाम (अ); ८ मे (छ) । ९ के
 (ख) (घ); १० के (न); १० के (न) ।

सोइ जागे जानैं दिन दूसरौ भयौ है, बातैं^१
 काल्ह की सी करी भोरैं भोर की कहत हैं ॥ १४ ॥
 सेनापति तपन तपति उतपति तैसौ,
 छायाँ उत पति, तातैं बिरह बरत है ।
 लुवन की लपटैं, ते चहुँ ओर लपटैं, पै^२
 ओढ़े सलिल पटैं (?) न चैन उपजत है ॥
 गगन गरद धूँधि, दसौ दिसा रही रूँधि,
 मानौ नभ भार की भसम बरसत है ।
 बरनि बताई, छिति-व्यौंम की तताई, जेठ
 आयौ आतताई पुट-पाक सौँ करत है ॥ १५ ॥
 तपै इत जेठ, जग जात है जरनि^३ जरनौ,
 तापकी तरनि मानौ मरनि^४ करत है^५ ।
 उतहिं असाढ़ उठै^६ नूतन सघन घटा,
 सीतल समीर हिय धीरज धरत^७ है ॥
 आधे अंग ज्वालन के जाल विकराल, आधे^८
 सीतल सुभग^९ मोद हीतल भरत है ।
 सेनापति ग्रीष्म तपत रितु भीषम है,
 मानौ बड़वानल सौँ बारिधि बरत है ॥ १६ ॥
 सुंदर बिराजैं राज-मंदिर सरस, ताके
 बीच सुख-दैनी, सैनी सीरक उसीर की ।
 उछरै सलिल, जल-जंत्र है विमल उठैं,
 सीतल सुगंध मंद लहर समीर की ॥
 भीने हैं गुलाब तन सने हैं अरगजा सौँ,
 छिरकी पटीर-नीर टाटी तीर-तीर की ।
 ऐसे बिहरत^{१०} दिन ग्रीष्म के^{११} बितवत,
 सेनापति दंपति मया तैं रघुबीर की ॥ १७ ॥
 देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर
 तिन तरवर सब ही कौँ रूप हरनौ है ।

१ बातैं (क) । २ सो (ख) । ३ भरनि (क) (ग) (घ) (न); ४ भरनि (ज); ५ भरत
 है (ज); ६ उठा (ज); ७ हरत (ज); ८ गाढ़े (ख); ९ सुभाग (क) (ख) (ग) (घ) (ङ) ।
 १० बिरहत (ज); ११ को (क) ।

महा भर लागै जोति भादव की होति चलै
 जलद पवन तन सेक मानौ परथौ है ।
 दारुन तरनि तरै नदी सुख पावै सब
 सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धरथौ है ।
 देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु
 ग्रीषम बिषम बरपा की सम करथौ है ॥ १८ ॥
 रजनी के समै दिन सीरक न सोयौ जात
 प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है ।
 रंगित सुवास राखै भूपति रुचिर साल
 सूरज की तपति किरनि तन ताई है ॥
 सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात^१ परै
 आँगन ही कल ज्यौं त्यौं^२ अगिनि बराई है ।
 ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
 लीजियै समुझि एक भौंति सी बनाई^३ है ॥ १९ ॥
 छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु,
 और सुखदाई है सरद छिरकाइ की ।
 हेमंत सिसिर हू तैं सीरे खसखाने, जहाँ
 छिन रहैं तपति मिटति सब काइ की ॥
 फूले तरवर, फूलवारी फूल सौ भरत,
 सेनापति सोभा सो बसंत के सुभाइ की ।
 ग्रीषम के समै साँझ, राज महलन माँझ,
 पैयति है सोभा षट-रितु समुदाइ की ॥ २० ॥
 ग्रीषम तपति हर, प्यारे नव जलधर,
 सेनापति सुखकर जे हैं दंपतीन कौ ।
 भुव तरवर जीव सजत^४ सकल घर^५,
 धरत कदम-तरु कोमल कलीन कौ ॥
 सुनि घनघोर, मोर कूकि उठे चहुँ ओर,
 दादुर करत सोर भोर जामिनीन कौ ।
 काम धरे बाढ़ तरवारि, तीर, जम-डाढ़,
 आवत असाढ़ परी गाढ़ विरहीन कौ ॥ २१ ॥

१ सुहाथ (ख); २ ज्यों (ख); ३ बताई हैं (ज)। ४ सजल (ख); ५ सकल सजत घन (ज)।

सुधा के भवन उपवन बीच छूटै नल,
 सलिल सरल धार तातैं निकरत है ।
 ऊरध गमन बारि, ताकी छवि कौं निहारि,
 सेनापति कछू बरनन कौं करत है ॥
 मति कोऊ तरु विन सीच्यौ रहि गयौ होइ,
 ताहि फेरि^१ सीचौ यह जीय^२ मैं धरत है ।
 यातैं मानौ^३ जल, जल-जंत्र के कपट करि,
 बाग देखिबे कौं ऊपर (?) कौं उछरत है ॥ २२ ॥
 पवन परम तातैं लगत, सहि नहि सकत सरीर ।
 बरसत रबिसहसौ किरनि, अवनि तपति^४ के तीर ॥
 अवनि तपति के तीर, नीर मज्जन सीतल तन ।
 सेनापति रति करति. नारि धरि मुकता-भूषन ॥
 भूषन मंदिर बास, सकल सूकत सरिता-गन ।
 पात पात मुरझात जात बेली-बन-उपवन ॥ २३ ॥
 वृष चढ़ि महा भूत-पति ज्यौं तपत अति,
 सुखवत सिंधु सब^५ सरवर सोत है ।
 धनुष कौं पाइ खग^६ तीर सौं चलत, मानौं
 ह्वै रही^७ रजनि दिन पावत^८ न पोत है ॥
 सेनापति उकति, जुगति, सुभ-गति मति,
 रीझत सुनत कवि-कोविद^९ कौ गोत है ।
 यातैं जानी जात जिय जेठ मैं सहस-कर,
 दिनकर पूस मैं सहस-पाइ होत है ॥ २४ ॥
 आई रिनु-पाउस कृपाउस न कीनी कंत,
 छाड़ि रह्यौ अंत, उर विरह दहत है ।
 गरजत घन, तरजत है मदन, लर-
 जत तन-मन नीर नैननि बहति है ॥
 अंग-अंग भंग, बोलै चातक बिहंग, प्रान
 सेनापति स्याम संग रंगहि चहत^{१०} है ।

१ ताकौ फिरि (ज); २ जिय (ज); ३ मानौ (ज) । ४ तपति (छ) । ५ सुषवत नदी
 नद (न); ६ पुनि (न); ७ गइ (न); ८ लहतु (न); ९ सब कविन (ज) । १० सु (क)
 (ग); ११ बहतर (क) (ग) (छ);

धुनि सुनि^१ कोकिल की विरहिनि को किलकी,
 केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत है^२ ॥ २५ ॥
 दामिनि दमक, सुरचाप की चमक, स्याम
 घटा की भमक^३ अति घोर घनघोर तैं ।
 कोकिला, कलापी. कल कूजत हैं जित-तित,
 सीकर ते सीतल^४, समीर की भकोर तैं ॥
 सेनापति आवन कहाँ है^५ मनभावन, सु
 लाग्यो तरसावन विरह-जुर जोर तैं ।
 आयौ सखी सावन, मदन^६ सरसावन, ल-
 ग्यो है बरसावन, सलिल चहूँ ओर तैं ॥ २६ ॥
 दामिनी दमक सोई मंद बिहसनि, बग-
 माल है बिसाल सोई^७ मोतिन कौ हारौ है ।
 बरन बरन घन रंगित बसन तन,
 गरज गरूर सोई बाजत नगारौ है ॥
 सेनापति सावन कौ बरसा नवल बधू,
 मानौ है बरति^८ साजि सकल सिंगारौ है ।
 त्रिविध बरन पर्यौ इंद्र कौ धनुष, लाल
 पन्ना सौ जटित मानौ हेम खगवारौ है ॥ २७ ॥
 दूरि जदुराई, सेनापति मुखदाई देखौ,
 आई रितु पाउस, न पाई प्रेम-पतियाँ ।
 धीर^९ जलधर की, सुनत धुनि धरकी, है^{१०}
 दरकी^{११} सुहागिल की छोह भरी छतियाँ ॥
 आई सुधि बर की, हिए मैं आनि खरकी, 'तू
 मेरी प्रानप्यारी' यह पीतम की बतियाँ ।
 बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
 डग भई बावन की, सावन की रतियाँ ॥ २८ ॥
 गगन-अँगन घनाघन तैं सघन तम,
 सेनापति नैक हू न नैन मटकत हैं ।

१ सनि धुनि (ज); २ हैं (क) (ग) । ३ जमक (क); ४ सीतल है हितल (ज);
 ५ हो (क) (ख) (ग); ६ विरह (ज) । ७ महा (क) (ग) (घ); ८ बरति (छ) । ९ धार
 (क) (ग) (छ); १० मु (ज); ११ धरकी (ख) ।

दीप की दमक, जीगनान की झमक छाँड़ि
 चपला चमक और^१ सौ न अटकत हैं ॥
 रबि गयौ दबि मानौ ससि सोऊ धसि^२ गयौ,
 तारे तोरि डारे से न कहूँ फटकत हैं ॥
 मानौ महा तिमिर तैं भूलि परी^३ बाट, तातैं
 रबि, ससि, तारे कहूँ भूले भटकत हैं ॥२६॥
 नीके हौं निटुर कंत, मन लै पधारे अंत,
 मै न मयमंत, कैसे वासर बराइहौं ।
 आसरो अवधि कौं, सो अवधौं बितीत भई,
 दिन दिन पीत भई, रही मुरझाइ हौं ॥
 सेनापति प्रानपति साँची हौं कहति, एक
 पाइ कै तिहारे पाइ प्रानन कौं पाइहौं ।
 इकली डरी हौं, धनु देखि कै डरी हौं, खाइ
 बिस की डरी हौं घनस्याम मरि जाइहौं ॥ ३० ॥
 सेनापति उनए नए जलद सावन के,
 चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कै ।
 सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति^४,
 आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै ॥
 घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
 देखि न परत मानौं रबि गयौ खोइ कै ।
 चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि^५
 मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै ॥ ३१ ॥
 उन एते दिन लाए, सखी अजहूँ न आए,
 उनए ते मेह भारी काजर पहार से ।
 काम के बसीकरन, डारैं अब सीकरन,
 तातै ते समीर जे हैं सीतल तुसार से ॥
 सेनापति स्याम जू कौं बिरह छहरि रखौं,
 फूल प्रतिकूल तन डारत पजार से ।

१ आन (ज); २ ससि है उधसि (क) (ख) (ग) (घ); ३ गई (न) (ज) । ४ बिधि (न);
 ५ भानि (ज) ।

मोर हरखन लागे, घन वरखन लागे,
 बिन बर खन लागे बरख हजार से ॥ ३२ ॥
 अब आयौ भादौ, मेह बरसै सघन कादौ,
 सेनापति जादौ-पति बिना^१ क्यों बिहात है ।
 रवि गयौ दबि, छबि अंजन तिमिर भयौ,
 भेद निसि-दिन कौ न क्योंहू जान्यौ जात है ॥
 होति चकचौंधि जोति चपला के चमके तैं,
 सूझि न परत पीछे मानौ अधरात है ।
 काजर तैं कारौ, अधियारौ भारौ गगन में,
 घुमरि घुमरि घनघोर घहरात है ॥ ३३ ॥
 सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
 मोर मन हरषावै अति अभिराम है (?) ।
 जीवन अधार बड़ी गरज करनहार
 तपति हरनहार देत मन काम है ॥
 सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति
 पावत अधिक तन मन बिसराम है ।
 सपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
 आयौ घनस्याम सखि मानौ घनस्याम है ॥ ३४ ॥
 बरसत घन, गरजत^२ सघन, दामिनि दिपै अकास ।
 तपति हरी, सफलौ करी, सब जीवन की आस ॥
 सब जीवन की आस, पास नूतन तिन अनगन ।
 सोर करत पिक-मोर, रटत चातक बिहंग गन ॥
 गगन छिपे रबि-चंद, हरष सेनापति सरसत ।
 उमगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत ॥ ३५ ॥
 सारंग^३ धुनि सुनि पीय की, सुधि आवत अनुहारि ।
 तजि धीरज, बिरहिनि बिकल, सबै रहैं मनु हारि ॥
 सबै रहैं मनुहारि, जे न मानैं जुवती जन^४ ।
 ते आपुन तैं जाइ धाइ भेंटति प्रीतम-तन ॥

मत न मान के चलहिं, देखि जलधर चपला रंग ।
 सेनापति अति मुदित, देखि वासरै^१ निसा रंग ॥ ३६ ॥
 पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ
 जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं ।
 विमल अकास, होत वारिज बिकास, सेना-
 पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं ।
 छिति न गरद, मानौ रगे हैं हरद सालि
 सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं^२ ।
 मत्त हैं दुरद, मिथ्यौ खंजन-दरद, रितु
 आई हं सरद सुखदाई सब जीय कौं ॥ ३७ ॥
 खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
 सेनापति मानौ सृंग^३ फटक पहार के ।
 अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
 छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के ॥
 सलिल सहल मानौ सुधा के महल नभ,
 तूल के पहल किधौ पवन आधार के ।
 पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
 गग गग गाजत गगन घन क्वार के ॥ ३८ ॥
 बिबिध बरन सुर चाप के न देखियत,
 मानौ मनि भूषन उतारिबे के भेस हैं ।
 उन्नत पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
 नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं ॥
 सेनापति आण तैं सरद रितु फूलि रहै,
 आस-पास कास खेत खेत चहुँ देस हैं ।
 जीवन हरन कुंभ जोनि उदण तै भई
 बरसा विरध ताके^४ सेत मानौ केस हैं ॥ ३९ ॥
 कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-
 पति है^५ मुहाति मुखी जीवन के गन हैं ।

१. वासरौ (क) (ग) (छ) (न) । २. रंग से हरद सालि सोहत जरद कहूँ रही न गरद को मिलावे प्राण पीय कौ (न) ३. अंग मानौ (न) ४. माके (ख) (घ) । ५. सेनापतिहि (ख);

फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन वन,
 फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं ॥
 उदित बिमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही,
 राम कैसौ^१ जस अध ऊरध गगन हैं ।
 तिमिर हरन भयो, सेत है वरन सब,
 मानहु जगत छीर-सागर मगन हैं ॥ ४० ॥
 बरन्यो कबिन कलाधर कौं कलंक, तैसौ
 को सकै बरनि, कवि हू की मति छीनी है ।
 सेनापति वरनी अपूरब जुगति ताहि,
 कोविद विचारों कौन भाँति बुद्धि दीनी है ॥
 मेरे जान जेतिक सौं सोभा होत जानी राखि,
 तेतिके कलान रजनी की छवि कीनी है ।
 बढ़ती के राखे, रैन हू तैं दिन हैहै, यातैं
 आगरी मयंक तैं कला निकासि लीनी है ॥ ४१ ॥
 सरसी निरमल नीर पुनि चंद चाँदनी पीन ।
 घन बरसै आकास अरु अवनी रज है लीन ॥
 अब नीरज है लीन, बिमल तारागन सोभा ।
 राज हंस पुनि लीन, सकल हिमकर की जो भा ॥
 इत सरवर, उत गगन, दुहुँ समता है परसी ।
 सेनापति रिनु सरद, अंग अंगन छवि सरसी ॥ ४२ ॥
 प्रात उठि आइबे कौं, तेलहिं लगाइबे कौं,
 मलि मलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है ।
 ओढ़िबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
 बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौं धाम^२ है ॥
 धूप कौं अगर, सेनापति सोंधौ सौरभ कौं,
 सुख करिबे कौं छिति अंतर^३ कौं धाम है ।
 आए अगहन, हिम पवन चलन लागे,
 ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है ॥ ४३ ॥

सूरै तजि भाजी, बात कातिक मौ^१ जब सुनी,
 हिम की हिमाचल तैं चमू उतरति है ।
 आए अगहन, कीने गहन दहन हू कौं,
 तित^२ हू तैं चली, कहूँ धीर न धरति है ॥
 हिय मैं परी है हूल दौरि गहि^३, तजी तूल,
 अब निज मूल सेनापति सुमिरति है ।
 पूस मैं त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
 गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है ॥ ४४ ॥
 सीत कौं प्रबल सेनापति कोपि चढ़थो दल,
 निबल अनल, गयों सूर सियराइ कै ।
 हिम के समीर, तेई वरसैं बिषम तीर,
 रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै ॥
 धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
 हिए सौं लगाइ रहैं नैक सुलगाइ कै ।
 मानौ भीत^४ जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
 छतियाँ की छाँह राख्यो पाउक छिपाइ कै ॥ ४५ ॥
 आयौ सखी पूसो, भूलि^५ कंतसौं न रूसो, केलि
 ही सौं मन मूसो जीउ ज्यौ^६ सुख लहत है ।
 दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत-
 ताई हू कौं सेनापति बरनि कहत है ॥
 याही तैं निदान प्रात^७, बेगिदै न होत, होत
 द्रौपदी के चीर कैसों राति कौं महत है ।
 मेरे जान सूरज पताल तप ताल मँझ,
 सीत कौं सतायौ कहलाइ कै^८ रहत है ॥ ४६ ॥
 पूस के महीना काम-वेदना सही ना जाइ,
 भोग ही के द्यौस निसि बिरह अधीन^९ के ।
 भोर हो कौं सीत सो न पावत छुटन, त्यौही
 राति आइ जाति है, दुखित गन दीन के ॥

१ मैं (घ) (न); २ तिन (अ); ३ गृह (अ) । ४ भीत (ख) । ५ फूल (ख); ६ जो (छ);
 ७ प्रात (व), ८ कै हलाई कै (घ) । ९ अशान (ख) (ग) (घ) (झ) ।

दिन की नन्हाई सेनापति बरनी न जाइ
 रंचक जनाई मन आवै परबीन के ।
 दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमकि, ज्यौं न
 फूलन हू पावत सरोज सरसीन के ॥ ४७ ॥

बरसै तुसार, बहै सीतल समीर नीर,
 कंपमान उर क्योंहू धीर न धरत है ।
 राति न सिराति, सरसाति विथा बिरह की,
 मदन अराति^१ जोर जोवन करत है ॥
 सेनापति स्याम हम धन हैं तिहारी, हमें
 मिलौ, बिन मिले, सीत पार न परत है ।
 और की कहा है^२, सबिता हू सीत रितु जानि,
 सीत कौं सतायौ धन रासि मैं परत है ॥ ४८ ॥

मारग-सीरष, पूस मैं सीत-हरन-उपचार ।
 नीर समीरन तीर^३ सम, जनमत सरस तुसार ॥
 जन-मत सरसतु सार, यहै रमनी-संग रहियै ।
 कीजै^४ जोवन-भोग, जनम जीवन-फल लहियै ॥
 तपन, तूल, तंबूल, अनल, अनुकूल होत जग ।
 सेनापति धन^५ सदन बास, न बिदेस, न मारग ॥ ४९ ॥

सिसिर मैं ससि कौं सरूप पावै सबिताऊ^६,
 धाम हू मैं चाँदिनी की दुति दमकति है^७ ।
 सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
 रजनी की भाँई बासर (?) मैं भ्रमकति है ॥
 चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
 चकवा की छाती तजि धीर धसकति है^८ ।
 चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
 ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है ॥ ५० ॥

१ अराति (न), २ कहा ही (क) (ख) (ग) (घ) (ङ) । ३ नीर समीर सु (ज); ४ कांजी
 ; ५ धन (क) (ग) । ६ सबिताहू (ख); ७ दामिनी की दुति धाम हू मैं दमकति है (ज);
 ८ धीर धसकति है (ज) ।

सिसिर तुषार के बुखार^१ से उखारत^२ है,
 पूस बीते होत सून^३ हाथ-पाइ ठिरि कै ।
 द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
 सेनापति पाई कछू सोचि कै सुमिरि कै ॥
 सीत तैं सहस-कर सहस-चरन हैं कै,
 ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै ।
 जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौ लौं होति राति,
 कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि कै ॥ ५१ ॥

अब आयौ माह प्यारे लागत हैं नाह, रवि
 करत न दाह, जैसौ अवरेखियत है ।
 जानियै न जात, बात कहत बिलात दिन,
 छिन सौं न तातैं^४ तनकौ बिसेखियत है ॥
 कलप सी राति, सो तौ सोएन सिराति क्यौंहू,
 सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है ।
 सेनापति मेरे जान दिन हू तैं^५ राति भई,
 दिन मेरे जान सपने में देखियत है ॥ ५२ ॥

कब^६ दिन दूलह के अरुन-बरन^७ पाइ,
 पाइहौं सुभग, जिनै पाइ पीर जाति है ।
 ऐसे मनोरथ, माह मास की रजनि, जिन
 ध्यान सौं गवाँई, आन^८ प्रीति न सुहाति है ॥
 सेनापति ऐसी पर्दामनी कौं दिखाई नैंक,
 दूरि ही तैं दै कै, जात होत इहि भाँति है ।
 कछू मन फूली रही, कछू अन-फूली, जैसे
 तन-मन फूलिबे की साध न बुझाति है ॥ ५३ ॥

धायौ हिम-दल, हिम-भूधर तैं सेनापति,
 अंग-अंग जग, थिर-जंगम ठिरत है ।

१ बखार (ख), २ उबारतु (क) (घ) (ङ) (न); ३ मास होत सून (ख) (घ) ।
 ४ तातो (ज); छिन सौ लता तैं (ख); ५ मैं (ज) । ६ रवि (ज); ७ चरन (ज)
 = और (ज) ।

पैयै न बताई भाजि गई है तताई, सीत
 आयौ आतताई, छिति-अंबर घिरत है ॥
 करत है प्यारी, भेष धरि कै उज्यारी ही कौं,
 घाम बार बार बैरी बैर सुमिरत है ।
 उत्तर तैं भाजि सूर, ससि कौं सरूप करि,
 दच्छिन के छोर छिन आधक फिरत है ॥ ५४ ॥
 आयौ जोर जड़कालौ^१, परत प्रबल पालौ,
 लोगन कौं लालो परथौ, जियै कित जाइ कै ।
 ताप्यौ चाहै बारि कर^२, तिन न सकत टारि,
 मानौ हैं पराए, ऐसे भए ठिठराइकै ॥
 चित्र कैसौ लिख्यौ, तेजहीन दिनकर भयौ,
 अति सियराइ गयौ घाम पतराइ कै ।
 सेनापति मेरे जान सीत के सताए सूर,
 राखे हैं^३ सकोरि कर अंबर छपाइ कै ॥ ५५ ॥
 परे तैं तुसार, भयौ^४ झार पतझार, रही
 पीरी सब^५ डार, सो बियोग सरसति है ।
 बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रही है, आस-
 पास निरजास, नैन नीर बरसति^६ है ॥
 सेनापति केली बिन, सुन री सहेली ! माह
 मास न अकेली बन-बेली बिलसति है ।
 बिरह तैं छीन तन, भूषन-बिहीन दीन^७,
 मानहु बसंत-कंत काज^८ तरसति है ॥ ५६ ॥
 लागैं न निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
 कही न बनति कछु जैसी तुम कंत की ।
 मिलन^९ की आस तैं उसास नाही छूटि जात,
 कैसे सहौ सासना मदन मयमंत की ॥

१ जोर जड़ कालो आयो (क) (ग) (घ) (ज); २ करि (ज); ३ राख्यौ हैं (ख) (घ) ।
 ४ रह्यौ (ख); ५ साख (ख); ६ परसति (क) । ७ मलीन दिन (ज); ८ काम (ज) ।
 ९ मिलिबे (न) ।

बीती है अबधि, हम अबला अबध, ताहि
 बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जंत की ।
 कहियौ पथिक परदेसी सौँ कि धन पीछे,
 है गई सिसिर कछु सुधि है बसंत की ॥ ५७ ॥

सोए संग सब राती सीरक परति^१ छाती
 पैयत रजाई नैंक आलिंगन कीने तैं ।
 उर सौँ उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई
 सुथरी अधिक देह कुंदन नवीने तैं ॥
 तन सुख रासि जाके तन के तनकौ छुवैं
 सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं ।
 सब सीत हरन बसन कौँ समाज प्यारी
 सीत क्यों न हरै उर अंतर के दीने तैं ॥ ५८ ॥

तब न सिधारी साथ, मीड़ति है अब हाथ,
 सेनापति जदुनाथ विना दुख ए सहैं ।
 चले मन-रंजन के, अंजन की भूली सुधि^२,
 मंजन की कहा उनही के गूँदे केस हैं ॥
 बिछुरे गुपाल लागै^३ फागुन कराल, तातैं
 भई है बिहाल, अति मैले तन भेस हैं ।
 फूल्यों है रसाल सो तौ भयौ उर साल, सखी
 डार न गुलाल, प्यारे लाल^४ परदेस हैं ॥ ५९ ॥

चौरासी समान, कटि किंकिनी बिराजति है^५,
 साँकर^६ ज्यौँ पग जुग घुँघरू^७ बनाई है ।
 दौरी बे-सँभार उर अंचल उघरि गयौ,
 उरुच कुच कुंभ मनु^८, चाचरि मचाई^९ है ॥
 लालन गुपाल, घोरि केसरि कौँ रंग लाल,
 भरि पिचकारी मुँह ओर कौँ चलाई है ।

१ सीकर परत (ज); २ सुधि भूली (क) (ग) (घ); ३ लागे (ज); ४ न गुलाल (क) (ग);
 रंग लाल (अ) । ५ बिराजमान (न); ६ संकर (ज); ७ जे हरि (ज); ८ चमू (क) (ग) (घ)
 (ज) (न); ९ भजाई (क) (ग) (घ);

सेनापति धायौ मत्त काम कौं गयंद जानि,
 चोप^१ करि चपैं मानौं चरखी छुटाई है ॥ ६० ॥
 नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल
 होरी में रही है मद जोबन के छकि कै ।
 चपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
 जाकै बोझ खीन कटि जाति है लचकि कै ॥
 लाल है चलायौ, ललचाइ ललना कौं देखि,
 उघरारौ उर^२, उरबसी ओर तकि कै ।
 सेनापति सोभा कौं समूह कैसे कह्यौ जात,
 रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै ॥ ६१ ॥
 मकर सीत बरसत विषम, कुमुद कमल कुम्हिलात ।
 बन-उपवन फीके लगत, पियरे जोउत पात^३ ॥
 पिय रे जो उतपात, करत जाड़ौ दारुन अति ।
 सो दूनौ बढि जात, चलत मारुत प्रचंड गति ॥
 भए नैक माहौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर ।
 सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर ॥ ६२ ॥

(इति ऋतु वर्णनम्)

चौथी तरंग

रामायण-वर्णन

सुरतरु सार की सवारी है बिरंचि पचि^१,
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की ।
रानी कमला कौ^२ पिय-आगम कहनहारी,
सुरसरि-सखी, सुख-दैनी, प्रभु-पाइ की ॥
वेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की ।
देव-दुख-दंडन, भरत - सिर - मंडन, वे
बंदौ अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की ॥ १ ॥

कंज के समान सिद्ध^३-मानस-मधुप-निधि,
परम निधान^४ सुरसरि-मकरंद के ।
सब सुख साज, सुर-राजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल^५ मुक्ति रूप कंद के ।
सरजू-बिहारी, रिषिनारी ताप-हारी^६, ज्ञान-
दाता हितकारी सेनापति मतिमंद के ।
बिस्व के भरन, सनकादि के सरन, दोऊ
राजत चरन महाराज रामचंद के ॥ २ ॥

भूषित रघुबर बंस, भक्त-वत्सल, भव-खंडन ।
मुनि-जन-मानस-हंस, बिहित सीता-मुख-मंडन ॥
त्रिभुवन पालन^७ धीर, बीर रावन-मद-गंजन ।
उदित बिभीषन भाग^८, धेय निज परिजन रंजन ॥
सुरपति, नरपति, भुजगपति, सेनापति बंदित^९ चरन ।
राजाधिराज जय जय सदा, राम बिस्व-मंगल-करन ॥ ३ ॥

१ रचि (क); २ के (क) । ३ सीय (न); सिद्धि (ख); ४ निधाम (क); ५ भाजत अमंगल
(च) (ट); ६ सापहारी (ज) । ७ पालक (ख); ८ साग (च) (ट); ९ बंदत (ख) (ज) ।

मंद मुसकान कोटि चंद तैं अमंद राजै^१,
 दीपति दिनेस कोटि हू तैं अधिकानियै ।
 कोटि पंचवान^२ हू तैं महा बलवान, कोटि
 कामधेनु हू तैं महादानि जग जानियै ॥
 और ठौर भँटौ बरनन एतौ सेनापति,
 सीतापति याहू तैं अधिक गुन-खानियै ।
 ऐसी अति उकति जुगति मो बतावौ जासौं,
 राजा राम तीनि लोक नाइक बखानियै ॥ ४ ॥
 धाता जाहि गावै, कछू मरम न पावै, ताहि
 कैसे कै रिभावै, भलौ मौन ठहराइयै ।
 रसना कौं पाइ, पाइ बचन-सकति, बिन
 राम-गुन-गान, तऊ मन अकुलाइयै ॥
 जैसे बिन अनल, सलिल ही कौं दीपक दै,
 दीपति-निधान भान कौं भलौ मनाइयै ।
 ऐसे, थोरी उकति, जुगति करि सेनापति,
 राजा राम तीनि लोक तिलक^३ रिभाइयै ॥ ५ ॥
 गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं,
 संख्या सत-कोटि जाकी कहत प्रबीने हैं ।
 नारद तैं सुनी बालमीकि, बालमीकि हू तैं
 सुनी भगतन, जे भगति-रस भीने हैं ॥
 एती राम-कथा, ताहि कैसे कै बखानै नर,
 जातैं ए बिमल^४ बुद्धि बानी के बिहीने हैं ।
 सेनापति यातैं कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
 काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं ॥ ६ ॥
 बीर महाबली, धीर, धरम-धुरंधर है,
 धरा मैं धरैया एक सारंग-धनुष कौं ।
 दानौ-दल-मलन, मथन कलि-मलन कौं,
 दलन है देव द्विज दीनन के दुख कौं ॥

जग अभिराम, लोक-वेद जाकौं नाम, महा-
 राज-मनि राम, धाम सेनापति सुख कौं ।
 तेज-पुंज रुरौ, चंद सूरौ न समान जाके^१,
 पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष कौं ॥ ७ ॥
 सोहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाइ, किधौं
 चतुरंग संपति के अंग निरधार हैं ।
 किधौं ए पुरुष रूप चारि पुरुषार्थ हैं,
 किधौं वेद चारि धरे मूरति उदार हैं ॥
 सब गुन आगर, उजागर सरूप धीर^२,
 सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं ।
 दीपति बिसाल, किधौं चारि दिगपाल, किधौं
 चारौ^३ महाराजा दसरथ के कुमार हैं ॥ ८ ॥
 पाँचौ सुरतरु कौं जौं एकै सुरतरु, एक
 देह जौ बसंत रति-कंत की बनाइयै ।
 बीते, होनहार चंद पून्यौं के सकल जोरि,
 चंद^४ करि एकै जौ दृगन दिखराइयै ॥
 दसौ लोकपालन कौं एकै लोकपाल, एक
 बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै ।
 सेनापति महाराज राम कौं अनूप तब,
 राज-तेज रूप नैक बरनि बताइयै ॥ ९ ॥
 कीजै को समान, चापवान सौं बिराजमान,
 बिक्रम-निधान, उपधान सिय बाम के ।
 परम कृपाल, दिगपालन के रछिपाल,
 थंभ हैं बिसाल जे पताल देवधाम के ॥
 दीरघ उदार भुव-भार^५ के हरनहार,
 पुजवनहार सेनापति मन काम के ।

१ जाकी (क) । २ धर (क); ३ चारि (क) (ख) (न) । ४ वदु (क) (ख) । ५ भव
 भार (क) (ख), भुज भार (न);

साजत समर वर, गाजत^१ जगत पर,
 राजत प्रबल भुज दोऊ राजा राम के ॥ १० ॥
 तजि भुव-अंबर कौं, सीता के स्वयंवर कौं,
 जुरे^२ नरदेव-देव के समूह पेखिये ।
 जाति न बखानी प्रभा, जनक नरिंद सभा,
 सोभा ते^३ सुधरमा तैं सौगुनी बिसेखियै ॥
 सेनापति राम जू के आवत सुरासुर की,
 छिपि गई छबि मानौं चित्र अवरेखियै ।
 तेज-पुंज-धारी जैसे सूरज उदित भए,
 दूसरौ न तेज न तिमिर कहूँ देखियै ॥ ११ ॥
 सकल सुरेस, देस देस के नरेस, आइ
 आसनन बैठे जे महा गरुर धरि कै ।
 जोवन के मद, कुल-मद, भुज-बल-मद^४,
 संपति के मद सौं रहे निदान भरि कै^५ ॥
 सेनापति कहै राम रूप धरपित भूप,
 ह्वै रहे चकित पै न रहे धीर धरि कै ।
 भूल्यौ अभिमान, देखे भानु-कुल-भानु, सव
 ठाढ़े सिंहासनन तैं ह्वै रहे उतरि कै ॥ १२ ॥
 आयौ^६ राम चापहिं चढ़ाइवे कौं महा-बाहु,
 सेनापति देखे मन मोद गया बढि कै ।
 अगन, गगन-चर, देखत तमासों सव,
 रह्यौ आसमान है विमानन सौं मढ़ि कै ॥
 आए सिद्ध चारन, कुतूहल के कारन हैं,
 बोलत बिरद बीर वानी हू कौं पढ़ि कै ।
 चख, चित, चाहति हैं, सूरति^७ सराहति हैं,
 बाला चंद्र-मुखी चंद्रसालन^८ मैं चढ़ि कै ॥ १३ ॥

१ राजत (ख) । २ जुर्यौ (क) (ज) (न); ३ कै (ज) (ख) (ग) (ट) । भुव मद
 कुल मद बल (ख); ४ संपति के मद सौं छके से खरे भरि के (न) । ५ आप (ज) । ६ बानी
 को (न); ८ चित्रसालनि (ज) ।

दीरघ प्रचंड महा पीन भुजदंड जुग,
 सुंदर बिराजत फनिद हू तैं अति है ।
 लोचन बिसाल, राज-दीपति^१ दिपति भाल,
 मूरति उदार कौ लजानौ^२ रति-पति है ॥
 चापहिं चढ़ाइबे कौ चलयौ जुवराज^३ राम,
 सेनापति मत्त गजराज कैसी गति है ।
 बिन कहे, दूरि तैं बिलोकत ही जानी जाति,
 बीस बिसे दसौ दिगपालन कौ पति है ॥ १४ ॥

त्रिभुवन-रच्छन-दच्छ, पच्छ रच्छिय कच्छप बर ।
 फन फनिद संभार, भार दिग्गज तुव दुंभर ॥
 धरनि धुक्कि जनि परहि, मेरु डगमग जनि डुल्लहि ॥
 सेनापति हिय फुल्लि क्यों न बिरुदावलि बुल्लहि ॥
 इहि विधि विरंचि सुक्कितबदन, कुक्किधीर चहुं चक्क दिय ।
 करषत पिनाक दसरत्थ सुत, राम हत्थ समरत्थ लिय ॥ १५ ॥
 हहरि गयौ हरि हिण, धधकि धीरत्तन मुक्किय ।
 ध्रुव नरिंद थरहरथौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय ॥
 अखिख पिखिय नहिं सकइ, सेस नखिखन लगिय तल ।
 सेनापति जय सह, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल ॥
 उदंड चंड भुजदंड भरि, धनुष राम करषत प्रबल ।
 दुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि, लुट्टिय दिगंत दिग्गज बिकल ॥ १६ ॥

तोरथौ है पिनाक, नाकपाल बरसत फूल,
 सेनापति कीरति बखानै रामचंद की ।
 लै कै जयमाल, सिय बाल है बिलोकी छवि,
 दसरथ लाल के बदन-अरविंद की ॥ १७ ॥
 परी प्रेम-फंद, उर बाढ़थौ है अनंद अति,
 आछी मंद-मंद चाल चलति गयंद की ।
 बरन कनक बनी, बानक बनक^४ आई,
 कनक मनक बेटी जनक नरिंद की ॥ १७ ॥

देखि चरनारविन्द बंदन करथौ बनाइ,
 उर कौ बिलोकि, बिधि कीनी^१ आलिंगन की।
 चैन के परम ऐन, राखे करि नैन नैक,
 निरखि निकाई इंदु सुन्दर बदन की ॥
 मानौ एक पतिनी के व्रत की, पतिव्रत की,
 सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
 सिय^२ रघुराई जू कौ माल पहिराई, लोचन
 राई करि वारी सुंदराई त्रिभुवन की ॥ १८ ॥
 मा जू महारानी कौ बुलावौ महाराज हू कौ,
 लीजै मत^३ केकई सुमित्रा हू के जिय कौ।
 रातिन कौ^४ बीच सात रिधिन के बिलसत,
 सुनौ उपदेस ता अरुधती के पिय कौ ॥
 सेनापति बिस्व मै बखानै^५ बिस्वामित्र नाम,
 गुरु बोलि पूछियै, प्रबोध करै हिय कौ।
 खोलियै निसंक, यह धनुष न संकर कौ,
 कुँवर मयंक-मुख^६ ! कंकन है सिय कौ ॥ १९ ॥
 सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम,
 सेनापति देखि नैन नैकहू न मदके।
 रूप देखि देखि रानी, बारि फेरि पियै पानी,
 प्रीति सौ बलाइ लेत कैयौ कर चटके ॥
 पहुँची के हीरन मै दंपति की भाँई परी,
 चन्द विवि^७ मानौ मध्य^८ मुकुर निकट के।
 भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परसपर,
 दुहुन के दृग प्रतिबिंबन सौ^९ अटके ॥ २० ॥
 आनन्द मगन चन्द महा मनि-मंदिर मै,
 रमै सियराम सुख, सीमा हैं सिंगार की।

१ कीनी बिधि (न); २ सीय (ज)। ३ मनु (न); ४ मै (च); ५ बखानौ (क) (ग) (ज);
 ६ कुँवर कमल नैन (ख) (च), कुँवर मयंक मुखी (ज)। ७ विवि (क) (च) (ज); ८ मध्य (ज);
 ९ मै (च)।

पूरन सरद-ससि सोभा सौ परस पाइ,
 वादी है सहस गुनी दीपति अगार की ॥
 भौन^१ के गरभ^२, छबि छीर की छिटकि रही,
 बिबिध रतन जोति अंबर^३ अपार की ।
 दोऊ बिहसत बिलसत सुख^४ सेनापति,
 सुरति करत छीर-सागर बिहार की ॥ २१ ॥

तीनि लोक ऊपर सरूप पारबती, जातैं
 संभु संग रंग अरधंग प्रीति पाई है ।
 ताही पारबती के अछत मोहिनी के रूप,
 मोहि कै महेस-मति महा भरमाई है ॥
 सोई राम मोहिनी के रूप कौ धरनहार,
 जाके रूप मोह्यौ और बाल बिसराई है ।
 सेनापति यातैं सुर, नर, सुंदरीन हू तैं,
 सुंदर परम सिय रानी की निकाई है ॥ २२ ॥

मोहिनी कौ सिव, सारदा हू कौ बिरंचि, पुर-
 हूत हू अहिल्या कौ बिलोकि न भलाई की ।
 भूली है समाधि^५ सिद्धि रिद्धि भुलई है सुधि,
 पारबती, सावित्री, सची सरूपताइ की ॥
 सेनापति राम एकनारी व्रत-धारी भयौ,
 सो तौ न बड़ाई रघुबीर धीरताई की ॥
 जा पर गँवारि देव-नारि वारि डारी, सो तौ
 महिमा अपार सिय रानी की निकाई की ॥ २३ ॥

जनक नरिंद नंदिनी कौ बदनारबिंद,
 सुंदर बखान्यौ सेनापति बेद चारि कै ।
 वरनी न जाई जाकी नैक हू निकाई, लौन
 राई करि पंकज निसंक डारे^६ वारि कै ॥

१ भौर (क), नौर (न); २ गरव (न), अगार (ख); ३ अंतर (क) (च) (ट) (ज); ४ कवि (न), मुख (ज) । ५ भलाई (ज) । ६ निकाई डारा (ज);

बार बार जाकी बराबरि कौं बिधाता अब,
 रचि पचि बिधु कौं बनावत सुधारि कै ।
 पून्यौं कौं बनाइ जब जानत न वैसौ भयौ,
 कुहू के कपट तब^१ डारत बिगारि कै ॥ २४ ॥
 भयौ एकनारी-व्रत-धारी हरि-कंत, ताहि
 बिन मिल मोहि कहाँ कैसे धौं^२ बनति है ।
 सुंदर नरिंद रामचंद जू कौं सुख-चंद,
 सेनापति देखि बाढ़ी गाढ़ी अति रति है ॥
 हौं तो याही भाँति प्रानपति की भगति करौं,
 सिय^३ तौ सुहाग भाग पूरी बिलसति है ।
 यह जिय जानि, मेरे जान रानी जानकी के,
 मध्य रसना के^४ आप सारदा बसति है ॥ २५ ॥
 भीज्यौ है रुधिर, भार भीम, घनघोर धार,
 जाकौं सत कोटि हू तैं कठिन कुठार है ।
 छत्रियन मारि कै, निछत्रिय करी है छिति
 बार इकईस, तेज-पुंज कौं अधार है ॥
 सेनापति कहत कहाँ हैं रघुवीर कहौ ?
 छोह भरघौ लोह, करिबे^५ कौं निरधार है ।
 परत पगनि, दसरथ कौं न गनि, आयौ
 अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार है ॥ २६ ॥
 लीनौ है निदान अभिमान सुभटाई ही कौं,
 छाँड़ी रिधि-रीति है न राखी कहनेऊ की ।
 डारु रे हथ्यार, मार मार करैं आए^६, धरे^७
 उद्धत कुठार सुधि-बुधि^८ न भनेऊ की ॥
 सेनापति राम गाइ-बिप्र कौं करै प्रनाम,
 जाके उर^९ लाज है बिरद अपनेऊ की ।

१ करि (च) (ट) । २ कै (ख) ; ३ साय (च) (ज) (न) ; ४ में (ज) । ५ लारवें (ज) ।
 ६ करै आयौ (ज) ७, धरै (च) ; ८ सुद्धि बुद्धि (क) (ज) (ज) ; ९ मन (ट) ;

आज जामदग्नि ! जानतेऊ एक घरी माँफ^१,
होती जौ^२ न ज्यारी यह जिरह जनेऊ की ॥ २७ ॥

बज्र हू दलत, महा कालै संहरत, जारि
भसम करत प्रलै काल के अनल कौं ।
भंभा षवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल, थल करै जल कौं ।
पन्बै मेरु-मंदर कौं फोरि^३ चकचूर करै,
कीरति कितीक, हनै दानव के दल कौं ।
सेनापति ऐसे^४ राम-बान तऊ बिप्र हेत,
देखत जनेऊ खैंचि राखैं निज बल कौं ॥ २८ ॥

बिस्व के सुधारन कौं, काम-जस-धारन कौं,
आप ही तैं आयौ, तजि आपने भवन कौं ।
ताकौं राज अवनौ कौं, कहौं कहा अब नीकौ,
बसिबौ वनी कौं, दास-आस-पुजवन कौं ॥
जद्यपि है ऐसी, तऊ चाहियै कब्यौई कछु,
यातैं सेनापति कहै सज्जन^५ सवन कौं ॥
देवन के हेत दसरथ^६ कौं निकेत छाँड़ि,
पन्नगरि-केतु चलयौ पाइन ही बन कौं ॥ २९ ॥

पिखिख हरिन मारीच, थपि लख्खन सिय-सत्थह ।
चलयौ बीर^७ रघुपत्ति, क्रुद्ध उद्धत धनु हत्थह ॥
परत पग-भर मग, किन्ति सेनापति बुझिय ।
जलनिधि-जल उच्छलिय, सब्ब पन्बै गन डुल्लिय ॥
दब्बिय जु छित्ति^८ पत्ताल कहं, भुजग-पत्ति भगिय^९ सटक ।
रखिय जु हट्टि सुट्टिय कठिन, कमठ पिट्टि टुट्टिय चटक ॥ ३० ॥
सेनापति सी-पति की अंतर-भगति, रति,
मुकति के हेत ताको जुगति बनाइ कै ॥

१ आज जामदग्नि को जानते घरी में राजु (ज); २ ज्यौ (क) (ख) । ३ फेर (ज); ४ ऐसो (ज) । ५ सुजन (ज); ६ दसरथ (ज) (अ) । ७ धीर (न); ८ खित्ति (ज); ९ भजिय (ख) ।

बंचना सी करि राम-लछन की ताही छन,
 कंचन मरीच मृग-माया उपजाइ कै ॥
 बीस-भुजदंड दससीस बरिवंड तब,
 गिद्धराज^१ हू के अंग-अंग घोर घाइ कै ।
 राघव की जाया, ताकी^२ कपट की काया,
 सोई छाया हरि लै गयौ गगन-पथ धाइ कै ॥ ३१ ॥
 चलयौ हनूमान राम बान के समान, जानि^३
 सीता सोध काज दसकंधर नगर कौं ।
 राम कौं जुहारि, बाहु बल कौं संभारि करि,
 सबही के संसै निरवारि डारि उर^४ कौं ॥
 लागी है न बार, फौंदि गयौ पारावार पार,
 सेनापति कबिता बखानै बेग-बर^५ कौं ।
 खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच,
 दृगन कौं तारौ दौरि मिलै दिनकर कौं ॥ ३२ ॥
 सेनापति महाराजा राम की चरन रज,
 माथे लै चढ़ाई, है बढ़ाई देह बल मैं ।
 लै कै कर-मूठी मॉझ कंचन अंगूठी, चलयौ
 धीर^६ गरजत साखा-मृगन के दल मैं ॥
 एते मान कूद्यौ^७ महा बेग सौं पवन-पूत
 पारावार पार फौंदि गयौ^८ आध पल मैं ।
 दीनी न दिखाई, छाँह छीरध्यों न छूवाई, परधौ
 बोल की सी^९ भाँई जाइ लंका के महल मैं ॥ ३३ ॥
 सीता-सोध-काज, कपिराज चलयौ पैज करि,
 तेज बढ़यौ पाए राम पाइ के परस के ।
 ताके महा बेग की बढ़ाई बरनी न जाइ,
 सेनापति पाइ जे करैया हैं सुजस के ॥

१ गीधराज (ज); २ जाकी (ख) । ३ जान (क) (ख); ४ डर (क); ५ बेग चर (क) (ग);
 ६ वीर (ट); ७ कूद्यौ (ज); ८ चलयौ (ज); ९ कैसी (ज) ।

कब चढ़ि कूँथौ, परथौ पार के पहार कब,
 अंतर न पायौ, दूनौ देह भार मसके ।
 देखौ छल-बल, दोऊ एक ही पलक बीच,
 परे वार पार के^१ वरावर ही धसके ॥ ३४ ॥
 महा बलवंत, हनुमंत वीर अंतक ज्यौ^२;
 जारी है^३ निसंक लंक विक्रम सरसि कै ।
 उठी सत-जोजन तैं चौगुनी भरफ, जरे
 जात सुर-लोक^४, पै न सीरे होत ससि कै ॥
 सेनापति कछू ताहि^५ बरनि कहत मानौ
 ऊपर तैं परे तेज लोक हैं बरसि कै ।
 आगम बिचारि राम-बान कौं अगाऊ किधौ,
 सागर तैं परथौ बड़वानल निकसि कै ॥ ३५ ॥
 कोप्यौ रघुनाइक कौं पाइक^६ प्रबल कपि,
 रावन की हेम-राजधानी कौं दहत है ।
 कोटिक लपटैं उठीं अंबर दपेटे लेति,
 तप्यौ तपनीय पयपूर ज्यौं बहत है ॥
 लंका बरि जरि एते मान है तपत भई,
 सेनापति कछू ताहि बरनि कहत है ।
 सीत माँझ उत्तर तैं, भानु भाजि दच्छिन में,
 अजौं ताही आँच ही के आसरे रहत है ॥ ३६ ॥
 बिरच्यौ प्रचंड बरिवंड है पवन पूत,
 जाके भुजदंड दोऊ गंजन गुमान के ।
 इत तैं पखान चलैं, उत तैं प्रबल बान,
 नाचै हैं कबंध, माचे महा घमसान के ॥
 सेनापति धीर^७ कोई धीर न धरत सुनि
 घूमत गिरत गजराज हैं दिसान के ।

१ पव्वै पारावार के (ज) । २ जो (ज) ; ३ है (क) ; ४ सबलोक (ज) ; ५ ताहि कछु (ज) ॥
 ६ पावक (क) (ग) । ७ वीर (ख) ।

बरजत देव कपि, तरजत रावन कौ,
 लरजत गिरि गरजत हनुमान के ॥ ३७ ॥
 रझौ तेल पी ज्यों धिय हू कौ पूर भीज्यौ, ऐसौ
 लपट्यौ समूह पट कोटिक पहल कौ
 बेग सौ भ्रमत नभ देखियै बरत^१ पँछि,
 देखियै न राति जैवौ^२ महल महल कौ ॥
 सेनापति बरनि बखानै मानौ धूम-केतु,
 उदयौ बिनासी दसकंधर के दल कौ
 सीता कौ संताप, कि खलीता उतपात कौ, कि
 काल कौ पलीता प्रलै काल के अनल कौ ॥ ३८ ॥
 पूरबली जासौ पहिचान ही न कौहू^३, आइ
 भयौ न सहाइ जो सहाइ की ललक मैं ।
 पहिले ही आयौ, बैरी बीर कै^४ मिलायौ, छिन
 छ्वायौ सीस लाल-पद नख की झलक मैं ॥
 सेनापति दया-दान-बीरता बखानै कौन,
 जो न भई पीछे, आगे होनी न खलक मैं ।
 परम कृपाल, रामचन्द भुवपाल, बिभी-
 षन दिगपाल कीनौ पाँचई पलक मैं ॥ ३९ ॥
 रावन कौ बीर, सेनापति रघुबीर जू की
 आयौ है सरन, छाँड़ि ताही मद-अंध कौ ।
 मिलत ही ताकौ राम कोप कै करी^५ है ओप,
 नामन कौ^६ दुज्जन, दलन-दीन बन्ध कौ ॥
 देखौ दान-बीरता, निदान एक दान ही मैं,
 कीने दोऊ दान, को बखानै सत्यसंध कौ ।
 लंका दसकंधर की दीनी है बिभीषन कौ,
 संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकंध कौ ॥ ४० ॥

१ जरत (ज); २ छवैवौ (ख) (ज) । ३ काहू (ज) ; ४ फेरिकै (ज) । ५ कही (ज)
 ६ नाम का है (ज);

सेनापति राम-वान-पाउकै वखानै कौन,
 जैसी सिख दीनी सिंधुराज कौ रिसाइ कै ।
 ज्वालन के जाल जाइ पजरे पताल, इत
 छै गयौ गगन, गयौ सूरजौ समाइ^१ कै ॥
 परे मुरभाइ ग्राह-सफर फरफराइ,
 सुर कहैं हाइ को वचावै नद-नाइकै ।
 बूँद ज्यौ तए की तची, कमठ की पीठ पर,
 छार भयौ जात छीरसिंधु छननाइ कै ॥ ४१ ॥
 सेनापति राम अरि-सासना^२ के साइक तैं
 प्रगथ्यौ हुतासन, अकास न समात है ।
 दीन महा मीन, जीव-हीन जलचर चुरै,
 बरुन मलीन कर मीड़ै, पछितात है ॥
 तब तौ न मानी, सिंधुराज अभिमानी, अब
 जाति है न जानी कहा होत उतपात है ।
 संका तैं सकानी, लंका रावन की रजधानी,
 पजरत पानी धूरि-धानी भयौ जात है ॥ ४२ ॥
 सेनापति राम-वान-पाउक अपार अति,
 डारथौ पारावार^३ हू कौ गरव गवाँइ कै ।
 को सकै वरनि बारि-रासि की वरनि, नभ
 भैं गयौ भरनि, गयौ तरनि समाइ कै ॥
 जेई जल-जीव बड़वानल के त्रास भाजि,
 एकत रहे हे सिंधु सीरे नीर आइ कै ।
 तेई वान-पाउक तैं, भाजि कै तुसार जानि,
 धाइ कै परे हैं बड़वानल में जाइ कै^४ ॥ ४३ ॥
 चुरइ^५ सलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि-जल भंपिय ।
 मच्छ कच्छ उच्छरिय, पिखि अहिपति उर कंपिय ।

१ छिपाइ (च) (ट) । २ ना सन (अ) । ३ सिंधुराज (न); ४ आनि कै परत बड़वानल
 पाइ कै (अ) । ५ चुरहि (ख);

लपट लगि उच्छरत, चटकि फुटत नग पत्थर ।
सेनापति जय-सद^१, बिरद, बोलत विद्याधर ॥
अति ज्वाल-जाल पज्जलिय घिरि, चहइ भगि वाड़वअनल ।
प्रगट्यौ प्रचंड पत्ताल जिमि, राम-वान-पाउक प्रबल ॥ ४४ ॥

जहँ उच्चरत बिरंचि वेद, बंदत सुर-नाइक ।
जलधि कूल अनुकूल, फूल बरसत मुख-दाइक ॥
जहँ^२ उघटत संगीत, गीत बाँके^३ सुर पूरत ।
सेनापति अति मुदित संभु, अरधंग-बधूरत ॥
जहँ बजाइ वीना मधुर, मन नारद-सारद हरत ।
राजाधिराज रघुवीरतह, उदधि-बंध आयसु करत ॥ ४५ ॥

इत वेद-बंदी बीर बानी सौं बिरद बोलैं,
उत सिद्ध-विद्याधर गाइ^४ रिभावत हैं ।
इत सुर-राज, उत ठाढ़े हैं असुर-राज,
सीस दिगपाल, भुवपाल, नवावत हैं ॥
सेनापति इत महाबली साखामृग-राज,
सिंधुराज बीच गिरि-राज गिरावत हैं ।
तहाँ महाराजा राम, हाथ लै धनुष^५ वान,
सागर के बाँधिवे कौं व्यौत बतावत हैं ॥ ४६ ॥
आयसु अपार पारावार हू के पाटिवे कौं,
सेनापति राम दीनों साखा के मृगन कौं ।
धारत चरन रज, सार-तन^६ भए ऐसे,
हारत न क्यौहू जे उखारत^७ नगन कौं ॥
पच्चय परत पयपूर उछरत, भयौ
सिंधु के समान आसमान सिद्ध गन^८ कौं ॥
मानहु पहार के प्रहार तैं डरपि करि,
छाँड़ि कै धरनि चल्याँ सागर गगन कौं ॥ ४७ ॥

१ जय संब्द (ख) । २ जय (ज); ३ बाके (ज) । ४ रंग (न); ५ प्रबल (क) (ख) (न)
(ज) । ६ सूत तन (न); ७ उबारत (न); सिंधु गन (ज) (न) ।

बहुरि बराह अवतार भयौ, किधौ दिन
 विन ही प्रलय प्रगटत प्रलै-काल के ।
 सेनापति फेरि^१ सुरासुर हैं मथत किधौ,
 छिपै धीरधर^२ त्रास असनि कराल के ॥
 सोचत सकल अप-अपने बिकल जिय,
 लागत प्रबल बान राम भुवपाल के ।
 परी खलभलि, जलनिधि जल होत थल,
 काँपे हलहल खल दानव पताल के ॥ ४८ ॥
 सेनापति राम कौ प्रताप अदभुत, जाहि^३
 गावत निगम, पै न पार वे परत हैं^४ ।
 जाके एक बल, जलनिधि-जल होत थल,
 तेल ज्यौ अनल मध्य, बारिधि बरत हैं ॥
 सिंधु-उपकूल ठाढ़े रघुवंस^५ सारदूल,
 अरि प्रतिकूल हिय हूल हहरत हैं ।
 मंदर के तूल^६ जरै जिनकी पताल मूल,
 ऐसे^७ गिरि तोड़, तूल-फूल ज्यौ तरत^८ हैं ॥ ४९ ॥
 पेड़ि तैं उचारि^९, बारि-रासि हू के बारि बीच,
 पारि पारि पव्वय पताल आटियत है ।
 कीनौ है न काहू, आगे करि है न कोई, ऐसे
 सेनापति अदभुत ठाठ ठाटियत है ॥
 सूर सरदार, जैतवार दिगपालन कौ,
 महा मद-अंध दसकंध डाटियत है ।
 देवन के काज, धरि लाज महाराज, करि
 आज अजुगति सिंधुराज पाटियत है ॥ ५० ॥
 राम के हुकुम, सेनापति सेतु-काज कपि,
 दौरे दिगपालन की डारि कै अमन कौ ।

१ फिरि (अ); २ छितिधर (क) । ३ ताहि (न); ४ तऊ पार न परत हैं (अ)
 ५ रामचंद्र (न); ६ मूल (क) (ख) (ग) (अ); ७ जैसे (न); ८ जरत (ज) । ९ उचारि (ज) (अ)

लै चले उचारि^१ एक बार ही पहारन कौं,
 बीर रस फूलि ऊलि^२ ऊपर गगन कौं ॥
 हाले देव लोक धराधरन के धकान^३ सौं,
 धुक्त^४ बिलोकि, सिद्ध बोलत बचन कौं ।
 धिरथौ आसमान, पिसे^५ जात पिसेमान मुर^६,
 लीजै नैक दया, मने कीजै बानरन कौं ॥ ५१ ॥
 कीजियै रजाइस कौं, हरि-पुर जाइ सकौं,
 पौनौ बीर जाइ सकौं जा तन खरो सौं है ।
 काहू कौं न डर, सेनापति हौं निडर सदा,
 जाके सिर ऊपर जु साँई राम तोसों है ॥
 कुलिस कठोरन कौं, देखौ नख कोरन कौं,
 लाए नैक पोरन कौं, मेरु चून कैसां है ।
 चूर करौ सोरन कौं, कोटि कोट तोरन कौं,
 लंका गढ़ फोरन कौं, को रन कौं मोसौ है ॥ ५२ ॥
 धरथौ पग पेलि दसमत्थ हू के मत्थ पर,
 जोरौ आइ हत्थ समरत्थ बाहु-बल मैं ।
 यह कहि कोपि कै कपीस पाउँ रोपि करि,
 सेनापति बीर बिरभानौ बैरि-दल^७ मैं ॥
 फूल है फनिद गए, पन्बै चकचूर भए,
 दिग्गज गरद, दल^८ दारुन दहल मैं ।
 पाइ बिकराल के धरत ततकाल, गए
 सपत पताल फूटि पापर से पल मैं ॥ ५३ ॥
 धरथौ है चरन दससीस हू के सीस पर,
 ईस की असीस कौं गरब सब लोपि कै ।
 सेनापति महाराजा राम की दुहाई मोहि,
 तोरौ गढ़ लंक,^९ चकचूर करौ कोपि कै ॥

१ उचारि (ज) (ज); २ फूलो अलि (न); ३ धकन (ज); ४ धुक्त (ज); ५ पिचे (ज);
 ६ मुर (न) । ७ पर दल (क) (ख) (ग); ८ दल (क) । ९ लंका (ख) (न);

आइ कै उठावौ^१, बाहु-बल कौ गुमान जाहि,
 दीपति बढ़ावौ सुभटाई की सु ओपि कै ।
 बैरिन तरजि, भुज ठोंकि कै गरजि, कही
 महा बली बालि के कुमार पाउँ रोपि कै ॥ ५४ ॥
 बालि कौ सपूत, कपि-कुल-पुरहूत, रघु-
 वीर जू कौ दूत, धारि^२ रूप विकराल कौ ।
 जुद्ध-मद गाढ़ौ, पाउँ रोपि भयौ ठाढ़ौ, सेना-
 पति बल बाढ़ौ, रामचन्द भुवपाल कौ ॥
 कच्छप कहलि रख्यौ, कुंडली टहलि गए,
 दिग्गज दहलि, त्रास पर्यौ चकचाल कौ ।
 पाउँ के धरत, अति भार के परत, भयौ
 एकै है^३ परत मिलि सपत-पताल कौ ॥ ५५ ॥
 सीता फेरि दीजै, लीजै ताही की सरन, कीजै
 लंक हू निसंक, ऐसे जीजै आप है भली ।
 सूल-धर हर तैं न हैहै धरहरि, कुंभ-
 करन, प्रहस्त, इंद्रजीत की कहा चली ॥
 देखौ^४ सब देव, सिद्ध विद्याधर सेनापति,
 धीर वीर वानी सौ पढ़त^५ विरुदावली ।
 सागर के तीर, संग लछन प्रबल वीर,
 आर्यो राजा राम दल जोरि कै महाबली ॥ ५६ ॥
 पजरत पाउक, न चलत पवन कहूँ^६,
 नैक न रहत लागि^७ तेज ससि सूर सौ ।
 भूलि जात गरज, सकल सात सागरन,
 लीन है तरंग मीन रहैं पयपूर सौ ॥
 अमर समर तजि, भाजै^८ भयभीत मन,
 सेनापति कौन समुहात^९ ऐसे^{१०} सूर सौ ।

१ उठावै (न) । २ धारा (क) (ग) (ज), धरि (ज); ३ एक ही (च), एकई (ज) ।
 ४ देखै (न); ५ पठत (क) । ६ कछू (ज); ७ लगी (ज); ८ सम होत (च); ९ अति (क) (ग)
 (ज), नर (ज) ।

महा बली धराधर-राज कौं धरनहार,
 जब चढ़ै कोपि दसकंधर गरूर सौं ॥ ५७ ॥
 बीर रस मद माते, रन तैं न होत हाँते,
 दुहू के निदान अभिमान चाप-बान कौं ।
 सर बरपत, गुन कौं न करषत मानौं,
 हिय हरपत, जुद्ध करत बखान कौं ॥
 सेनापति सिंह-सारदूल से^१ लरत दोऊ,
 देखि धधकत दल देव जातुधान^२ कौं ।
 इत राजा राम रघुवंस कौं धुरंधर है,
 उत दसकंधर है सागर गुमान कौं ॥ ५८ ॥
 सारंग धनुष कुंडलाकृति विराजै बीच,
 तामस तैं लाल मुख लाल कौं लसत है ।
 कान-मूल कर, हेम-बान कौं करत झर,
 ताकौं सुर नर चलत न (?) दरसत है ॥
 ताकी उपमा कौं सेनापति को बखानि सकै,
 एक अंस^३ मन उपमाहिं^४ परसत है ।
 मंडल के बीच भानु-मंडल उदित मानौं,
 तेज-पुंज किरन समूह बरसत है ॥ ५९ ॥
 काढ़त निषंग तैं, न साधत^५ सरासन मैं,
 खैंचत, चलावत, न बान पेखियत है ॥
 स्रवन मैं हाथ, कुंडलाकृति धनुष बीच,
 सुंदर वदन इकचक^६ लेखियत है ॥
 सेनापति कोप-ओप-गेन हैं अरुन-नैन,
 संबर-दलन मैंन तैं^७ बिसेखियत है ।
 रह्यो नत ह्वै कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
 चित्र कैसो लिख्यो राजा राम देखियत है ॥ ६० ॥

१ सौं (ज); २ देवता जुधान (क) (ख) (ग) (ट) । ३ अंग (ज); ४ मनु रूप माहि (क)
 (ग) (ज), मानौं उपमा को (ट) । ५ साजत (ख); ६ एक टक (ज); ७ सो (ज) ।

जिनकी पवन फौक, पंछिन मैं पंछिराज,
 गौरव मैं गिरि, मेरु मंदर के नाम के ।
 पोहैं दिगपाल बपु, अंबर बिसाल^१ बसैं,
 भाल मध्य निकर दहन दिन-धाम^२ के ॥
 अनल कौं जल करैं, जल हू कौं थल करैं,
 अगम सुगम^३, सेनापति हित काम के ।
 बज्र हू तैं दारुन, दनुज-दल-दारन, वे
 पञ्चय-विदारन, प्रबल बान राम के ॥ ६१ ॥
 जुद्ध-मद-अंध दसकंधर के महा बली,
 वीर महा वीर डारे बानर बितारि^४ कै ।
 कोऊ तुंग शृंगनि, उत्तंग भूधरन कोऊ,
 जोई हाथ परै सोई डारत उखारि कै ॥
 जौ कहूँ नरिंद सेनापति रामचंद्र, ताकी
 बाहु अध-चंद सौं न डारै निरवारि कै ।
 तौतौ^५ कुंभकरन चलाइवे कौं फूल जिमि,
 लेतौ मारतंड हू कौं मंडल उचारि कै ॥ ६२ ॥
 चंडिका-रमन, मुंड-माल^६ मेरु करिबे कौं,
 मुंड कुंभकरन कौं माँग्यौ चित चाइ कै ।
 सेनापति संकर के कहे अनगन गन,
 गरब सौं दारे दर-बर सब धाइ कै ॥
 जोर कै उठायौ, जुरि-मिलि कै सबन तौहीं^७
 गिरि हू तैं गरुआँ, गिरथौ है डगुलाइ कै ।
 हाली भुव, गनन की आली^८ चपि चूर भई,
 काली भाजी, हँस्यौ है कपाली^९ हहराइ कै ॥ ६३ ॥
 पच्छन कौं धरे, किधौं सिखर सुमेर के हैं,
 बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धहिं करत हैं ।

१ विलास (ख); २ बिन धाम (ख) (८); ३ सुभग (न) । ४ विदारि (ज); ५ तौलौ (न) ।
 ६ मुंडमाला (ख) (न); ७ तोऊ (ख); ८ गगन को चाली (ज); ९ पिनाकी (ज); १

किधौं मारतंड के द्वै मण्डल अडंबर सौं,
 अंबर में किरन की छटा बरसत हैं ॥
 मूरति कौं धरे सेनापति द्वै धनुरवेद,
 तेज रूपधारी^१ किधौं अस्त्रनि अरत हैं ।
 हेम-रथ बैठे, महारथी^२ हेम बानन सौं,
 गगन में दोऊ^३ राम-रावन लरत हैं ॥ ६४ ॥

सोहत विमान, आसमान मध्य भासमान^४
 संकर बिरंचि, पुरहूत, देव, दानों है ।
 करत विचार, कहत न समाचार, डर-
 पत सब चार दस-मुख आगे मानौ है ॥
 सेनापति सारदा की देखौ चतुराई, वात
 कही पै दुराई मन बैरी तैं सकानौ है ।
 अमर बखानैं राम-रावन के समर कौं,
 गिरि भुव अंबर में रावन समानौ है ॥ ६५ ॥

सुर अनुकूल भरे, फूल बरसत फूलि^५,
 सेनापति पाए हैं समूह सुख-साज के ।
 जै जै सह भयौ, दसकन्धर-दलन हू कौं,
 गूँजे हैं^६ दिगंत दस परत अवाज के ॥
 जुद्ध मध्य जूझि दसकंध के परत, नाद
 संकर बजायौ, सिद्ध भए मन काज के ।
 भुवन के भय भाजे, दिग्गज गंभीर गाजे,
 बाजे हैं नगारे दरबार देवराज के^७ ॥ ६६ ॥

पाउक प्रचंड, राम-पतिनी प्रवेस कीनौ^८,
 पतिव्रत पूरी पै न त्रासै परसति है ।
 सत्त सिय रानी जू के आगि सियरानी जाति,
 हियरा हिरानी देव-सभा दरसति है ॥

१ रूपधारे (ज); २ महारथ (क) (ख) (न); ३ बैठे (ज) । ४ भासमान मध्य आसमान (४) । ५ फूल (क) (ख) (ग) (ज); ६ गरजे (ज); ७ बाजे बहु बाजे दरवाजे देवराज के (ज); ८ कर्यौ (क);

सेनापति बानी सौ न जाति है बखानी, देह
 कुंदन तैं अधिकानी बानी सरसति है ।
 लागत ही लूक मानौ लागत पिलूक^१ नभ,
 होति जै जै^२ कूक जगाजोति परसति है ॥ ६७ ॥
 सोहैं संग सिय रानी, दृग देखि सियरानी,
 सेनापति नियरानी सबै आस फलि कै ।
 फूल के बिमान, आसमान मध्य भासमान,
 कोटि सुरपति-दिनपति डारे बलि कै ॥
 आनन्द मगन मन, चौदहौ भुवन जन,
 देखिवे कौ आण नरदेव-देव चलि कै ।
 दसरथ-नन्द रघुकुल-चन्द रामचन्द,
 आयौ दसकंधर के दल दलमलि कै ॥ ६८ ॥
 भए हैं भगत भगवंत के भजन-रस^३,
 ह्वै रहे बिबेकी, जग^४ जान्यौ जिन^५ सपनौ ।
 सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
 पायौ मनोरथ, सब काहू अप-अपनौ ॥
 यह अद्भुत, सेनापति है भजन कोई^६
 कह्यौ न बनत तन-मन कौ अपनौ ।
 जैसा हनूमान जान्यौ भजन कौ रस, जिन
 राम के भजन ही लौ जीबौ माँग्यौ अपनौ ॥ ६९ ॥
 कीनी परिकरमा छलत बलि वामन की,
 पीछे जामदगनि कौ दरसन पायौ है ।
 पाइक भयौ है, लंक-नाइक-दलन हू कौ,
 दै कै जामवंती भलौ कान्ह^७ कौ मनायौ है ॥
 ऐसे मिलि औरौ अवतारन कौ जामवन्त,
 अति सिय-कंत ही कौ सेवक कहायौ है ।

१ उलूक (ज); २ (जैसे) (क) (ख) (ग) । ३ रत (ज); ४ जन (ट); ५ जिय (न); ६ कोऊ (ज) । ७ काहू (ट);

सेनापति जानी यातैं^१ सब अवतारन मैं,
 एक राजा राम गुन-धाम करि गायौ है ॥ ७० ॥
 भए और राजा राजधानियों अनेक भई,
 ऐसौ प्रेम^२-नेम पै न काहू^३ बनि आयौ है ।
 अति अनुराग, सब ही तैं बड़भाग, पूरौ
 परम सुहाग, जो अजुध्या एक पायो है^४ ॥
 रही बाँह-छाँह, राजा राम की जनम^५ भरि,
 भूलि हू न सेनापति और उर आयौ^६ है ।
 अंत समैं जाकौं, देव लोकन के थोक छाँड़ि,
 तीनि लोक नाथ लोक पंद्रहौ बनायो है ॥ ७१ ॥
 पाए सब काम, बड़े धनी ही की बाँह-छाँह,
 भाँति द्वै न जानी सपने हू मैं अनाथ की ।
 कोऊ सुरराज, जमराज हू तैं डरपै न,
 और सौं प्रनाम करिवे की चरचा थकी ॥
 सेनापति जग मैं जे राखे ते अमर कीने,
 बाकी संग लीने, दै मुक्ति निज साथ की ।
 साँचे हैं सनाथ एक साकेत-निवासी जीउ,
 साँची है रजाई एक राजा रघुनाथ की ॥ ७२ ॥
 राम महाराज जाकौं सदा अविचल^७ राज,
 बीर बरिवंड जो है दलन दुवन कौं ।
 कोऊ^८ सुरासुर, ताकी सरि कौं न पूजै, कौन
 तारौ धरै धाम धाम निधि के उवन कौं ॥
 ताकी तजि आस, सेनापति और आस, जैसे
 छाँड़ि सुधा-सागर कौं, आसराँ कुँवन कौं ।
 दुख तैं बचाउ, जातैं होत चित चाउ, मेरे
 सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौं ॥ ७३ ॥

१ एतै (ज) । २ प्रेम (ट) ; ३ काऊ (ख) ; ४ भजन (ट) ; ५ दायौ (ज) । ६ निहचल (न), इकछत (ज) ; ७ कोई (ख) ।

होति निरदोष, रवि-जोति सी जगमगति,
 तहाँ कविताई कछु हेतु न धरति है ।
 ऐसौई सुभाउ हरि-कथा कौ सहज जातैं,
 दूषन बिना ही^१ भूपन सौ सुधरति है ॥
 कीने हैं कवित्त कछु राम की कथा के, तामैं
 दीजियै न दूषन कहत सेनापति है ।
 आप ही बिचारौ तुम जहाँ खर-दूषन^२ हैं
 सो अखर दूषन^३ सहित कहियत है ॥ ७४ ॥

सिव जू की निद्धि^४, हनूमानहू की सिद्धि^५, बिभी-
 पन की समृद्धि बालमीकि नैं बखान्यौ है ।
 विधि कौ अधार, चारथौ^६ बेदन कौ सार, जप^७
 जज्ञ कौ सिंगार, सनकादि उर^८ आन्यौ है ॥
 सुधा के समान, भोग-मुकति निधान,^९ महा
 मंगल निदान^{१०} सेनापति पहिचान्यौ है ।
 कामना कौ कामधेनु, रसना कौ बिसराम
 धरम कौ धाम राम-नाम जग जान्यौ है ॥ ७५ ॥

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि
 भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है ।
 देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौ
 बिसद वरन जाकी सुधा सम बानी है ॥
 भुवपति रूप देह धारी पुन सील हरि
 आई सुरपुर तैं धरनि सियरानी है ।
 तीरथ सरव सिरोमनि सेनापति जानी
 राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है ॥ ७६ ॥

(इति रामायण वर्णनम्)

१ बिहीन (ज); २ पर दूषन (ज); ३ सोई पर दूषन (ख) । ४ निधि (क) (ख) (ज)
 (ट); ५ सिधि (क) (ख) (ज) (ट); ६ चर्यों (ज); ७ जय (क) (ट); ८ मन (अ); ९ निदान
 (क); १० निधान (क), विधान (ज) ।

पाँचवीं तरंग

रामरसायन-वर्णन

दै कै जिन^१ जीव, ज्ञान, प्रान, तन, मन, मति,
जगत दिखायौ, जाकी^२ रचना अपार है ।
दृगन सौ देखै, बिस्वरूप है अनूप जाकौ,
बुद्धि^३ सौ विचारै निराकार निरधार^४ है ॥
जाकौ अध-ऊरध, गगन, दस-दिसि^५, उर,
व्यापि रह्यौ तेज, तीनि लोक कौ आधार है ।
पूरन पुरुष, हृषीकेस गुन-धाम राम,
सेनापति ताहि बिनवत^६ बार बार है ॥ १ ॥

राम महाराज, जाकौ सदा अविचल^७ राज,
बीर बरिवंड जो है दलन दुवन कौ ।
कोऊ^८ सुरासुर, ताकी सरि कौ न पूजै, कौन
तारौ धरै धाम धाम निधि के उवन कौ ॥
ताकी तजि आस, सेनापति और आस, जैसे
छाँड़ि सुधा-सागर कौ आसरो कुँवन कौ ।
दुख तैं बचाउ जातैं होत चित चाउ, मेरे
सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौ ॥ २ ॥

पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तैं उबारथौ^९ जिन,
जाकौ^{१०} नाभि-कमल, विधाता हू कौ भौन है ।
ध्यावैं सनकादि, जाहि गावैं वेद-बंदी, सदा
सेवा कै रिझावैं सेस, रवि, ससि पौन है^{११} ॥

१ निज (ख); २ ताका (ट); ३ हिय (ख) (ट); ४ निराकार निराधार (ट); ५ दिसि
दस (न); ६ ताही को प्रनाम (ट) । ७ निहचल (न), इकछत (ज); ८ कोई (ख) । ९ बचायो
(न); १० जाके ११ (ज); रवि ससि सेस पौन है (न) (ज);

ऐसे रघुवीर कौं, अधीर है सुनावौ पीर,
 बंधु-भीर आगे सेनापति भली^१ मौन है ।
 साँवरे-वरन, ताही सारंग-धरन बिन,
 दूजो दुख-हरन हमारौ और कौन है ॥ ३ ॥
 सोचत न कौहू, मन लोचत^२ न बार बार,
 मोचत न धीरज, रहत मोद धन है ।
 आदर के भूखे, रूखे रूख सौ अधिक रूखे,
 दूखे दुरजन सौ न डारत बचन है ॥
 कपट बिहीन, ऐसों कौन परबीन, जासों
 हूजिये अधीन सेनापति मान^३ धन है ।
 जगत-भरन, जन^४-रंजन-करन, मेरों^५
 बारिद-वरन राम दारिद-हरन है ॥ ४ ॥
 देव दया-सिंधु, सेनापति दीन-बंधु सुनौ,
 आपने^६ बिरद तुम्हें कैसे बिसरत हैं ।
 तुम ही^७ हमारे धन, तोसौ बाँध्यों पेम-पन,
 और सौ न मानै मन, तोही सुभिरत हैं ॥
 तोही सौ बसाइ, और सूझै न सहाइ, हम
 यातैं अकुलाइ, पाइ तेरेई परत हैं ।
 मानों कै न मानों, करौ सोई जोई जिय जानों,
 हम तौ पुकार एक तोही सौ करत हैं ॥ ५ ॥
 लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी,
 ईस महामाया हू कौं निगमन गायो है ।
 लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत, जाकौं
 नंदन विधाता, हर नाती जाहि भायों है ॥
 चारि दिगपाल हैं बिसाल भुजदंड, जाके
 सेस सुख-सेज, तेज तीन लोक छायों है^८ ।

१ भली (क) (न) (न) । २ लोचन (क) (ग) (न); ३ मान (ख); ४ मन (ख); ५ मेरे (क) (ख) (ग) । ६ अपने (न); ७ तुम्ही है (क) (ख) (न), तैही है (ज) । ८ सुख सेज तेज तीन लोक जस छायों है (न) ।

महिमा अनंत सिय-कंत राम भगवंत,
 सेनापति संत भागिवंत काहू पायौ है ॥ ६ ॥

अगम, अपार, जाकी महिमा कौं पारावार,
 सेवै वार वार परिवार सुरपति कौं ।
 धाता कौं बिधाता, भाव-भगति सौं राता, देव
 चारि वर दाता, दानि जाता को सुपति कौं ॥
 तीनि लोक नाइक है, बेद गुन गाइ कहै,
 सरन सहाइक है सदा सेनापति कौं ।
 जगत कौं करता है, धरा हू कौं धरता है^१,
 कमला कौं भरता है^२ हरता विपति कौं ॥ ७ ॥

छाँड़ि के कुपैडै, पैडै परे जे विभीषनादि,
 ते हैं तुम तारे, चित-चीते काम करे हैं ।
 पैडों तजि बन मैं, कुपैडै परी रिषि-नारी,
 तारी ताके दोष मन मैं न कछु धरे हैं ॥
 पैडों तजि हम हू, कुपैडै परे तरिवे कौं,
 तारियै अपार कलमष भार भरे हैं ॥
 सेनापति प्रभु पैडै परे ही जो तारत हों,
 तौव हम तरिवे कौं तेरे पैडै परे हैं ॥ ८ ॥

चाहत है धन जो तू^३, सेउ^४ सिया-रमन कौं,
 जातैं विभीषन पायौ राज अविचल है ।
 चाहै जाँ अरोग, तौ सुमिरि एक ताही, जिन
 मरथौ फेरि ज्यायौ साखामृगन कौं दल है ॥
 चाहै जाँ मुकति जोहै^५ पति रघुपति, जिन
 कोसल नगर कीनों मुकत सकल है ।
 सेनापति ऐसे राजा राम कौं बिसारि जाँ पै^६
 और कौं भजन कीजै, सो धौं कौन फल है ॥ ९ ॥

१ कमला कौ भरता है (ख); २ सब सुप करता है (ख) । ३ चाहत जो धन तौ तू (क), चाहत है तू जो धन (ख); ४ सेइ (ख); ५ तो है (क); ६ जाकौ (क) (ख) (ग) (न), जो तै (अ) ।

सुख सरसाउ^१, किधौं दुख मैं बिलाइ जाउ^२,
 जैसी कछू^३ जानौ, तैसी होउ गति काइ की ।
 जग जस कहौ, किधौं जाइ अपजस कहौ,
 नाहीं^४ परवाह काहू बात के सहाइ की ॥
 और हौं न चाहौं, चित चाहत हौं ताही नित,
 सेनापति जाकी तीनि लोक इक नाइकी ।
 हूजियौ न दूरि, मेरे जिय की अमर मूरि,
 रहौ भरपूरि एक प्रीति हरि राइ की ॥ १० ॥
 नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति,
 सेनापति चेत कछू^५ पाहन अचेत है ।
 करम करम करि करमन कर, पाप
 करम न कर मूढ़, सीस भयौ सेत है ॥
 आवै बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
 पुत्र के बनिज तन मन किन देत है ।
 आवत विराम, बैस बीती अभिराम, तातैं
 करि विसराम^६ भजि रामैं^७ किन लेत है ॥ ११ ॥
 कीनौ^८ बालापन^९ बालकेलि मैं मगन मन,
 लीनौ तरुनापै तरुनी के^{१०} रस तीर कौं ।
 अब तू जरा मैं परथौ मोह पींजरा मैं, सेना-
 पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं ॥
 चितहिं चिताउ भूलि काहू न सताउ, आउ
 लोहे कैसौ ताउ, न बचाउ है सरीर कौं ।
 लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह,
 जीमै अवलेह देह सुरसरि नीर कौं ॥ १२ ॥
 को है उपमान ? भासमान हू तैं भासमान,
 परम निदान^{११} सेनापति के सहाइ कौं ।

१ सरसाइ (ज); २ मिलाइ जाइ (ज); ३ कछू (क) (ग); ४ नाहिं (न) । ५ कछा (ज);
 ६ विसरामैं (ज); ७ राम (ख) । ८ बीन्यो (न); ९ बालपन (ख); १० को (क) (ग) ।
 ११ निधान (ट);

तेज कौं आधार, अति तीछन, सहस-धार,
 एकै सरदार हथियार^१ समुदाइ कौं ॥
 अमर-अवन, दल-दानवद-वन^२, मन
 पवन-गवन^३, पुजवन जन^४ चाइ कौं ।
 कामना कौं बरसन, सदा सुभ दरसन,
 राजत सुदरसन चक्र हरि राइ कौं ॥ १३ ॥

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि,
 कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाइ कै ।
 जातैं दारा नसी, बास तातैं बारानसी, किधौ
 लुंज ह्वैकै वृन्दावन कुंज बैठ जाइ कै ।
 भयौ सेतु अंध ! तू हिए कौं हेतु बंध जाइ,
 धाइ सेतुबन्ध के धनी सौं^५ चित लाइ कै ।
 बसौ कंदरा मैं, भजौ खाइ कंद रामैं, सेना-
 पति मंद ! रामैं मति सोचौ^६ अकुलाइ कै ॥ १४ ॥

कीनौ है प्रसाद, मेटि डार्यौ है बिषाद^७, दौरि
 पाल्यौ प्रह्लाद, रछा कीनी दुरदन की^८ ।
 दीनन सौं प्रीति, तेरी जानी यह^९ रीति, सेना-
 पति परतीत कीनी, तेरीयै सरन की ॥
 कीजै न गहर, वेग मेरीं दुख हर, मेरे
 आठहू पहर आस रावरे चरन की ।
 सूझत न और कोई निरभय ठौर राम
 देव सिरमोर, तो लौं दौर मेरे मन की ॥ १५ ॥

कोई^{१०} परलोक सोक भीत अति बीतराग,
 तीरथ के तीर बसि पी रहत नीर ही ।
 कोई तपकाल बाल ही तैं तजि गेह-नेह,
 आगि करि आस-पास जारत सरीर ही ॥

१ है हथियार (न); २ दमन (क) (ख) (ट); ३ गमन (क) (ट); ४ मन (ज) । ५ मौ (क); ६ सावो (क) । ७ सय हर्यौ है बिषाद (न); ८ कीनी है दुरद की (ज); ९ जानियत (ख) । १० कोऊ (ज);

कोई छाँड़ि भोग, जोग-धारना सौं मन जीति^१,
 प्रीति^२ सुख-दुख हू मैं साधत समीर^३ ही ।
 सोवै सुख सेनापति, सीतापति के प्रताप,
 जाकी^४ सब लागै पीर ताही रघुवीर ही ॥ १६ ॥
 ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ, तन
 कंथा पहिराऊँ, करौं साधन जतीन के ।
 भसम चढ़ाऊँ, जटा सीस मैं बढ़ाऊँ, नाम
 वाही के^५ पढ़ाऊँ, दुख-हरन दुखीन के ॥
 सबै बिसराऊँ, उर तासौं उरभाऊँ, कुंज
 बन बन छाऊँ^६, तीर भूधर नदीन के ।
 मन बहिराऊँ, मन ही मन^७ रिभाऊँ, बीन
 लै कै कर गाऊँ, गुन वाही परबीन के ॥ १७ ॥
 करुना-निधान जातैं पायौ तैं बिमल ज्ञान^८,
 जाके दीने प्रान, तन, मन धारियत है ।
 जगत कौं करतार, बिस्व हू कौं भरतार,
 हिय मैं निहार, सब ही निहारियत है ॥
 सेनापति तासौं, प्रेम प्रीति परतीति^९ छाँड़ि,
 उत्तम जनम पाइ, क्यों बिगारियत है ।
 सब ही सहाई, बर-दानि, सब^{१०} सुखदाई,
 ऐसौ राम साँई, भाई यौ बिसारियत है^{११} ॥ १८ ॥
 धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौं^{१२},
 गीध हू कौं बन्धु सबरी कौं मिहमान है ।
 पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
 छाती बिप्र-लात कौं धरैया तजि मान है ॥
 व्याध अपराध-हारी स्वान समाधान-कारी,
 करै छरीदारी, बलि हू कौं दरबान है ।

१ मारि (न); २ सीत (न); ३ सरीर (ख); ४ जाके (न) । ५ को (ज); ६ धाऊँ (अ); ७
 मन मन ही (अ) । ८ जान (क) (ख); ९ परतीति प्रेम प्रीति (ज); १० बढ़ो (ज); ११ ऐसो
 प्रभु माथौ भाई यौ बिसारियतु है (न) । १२ सखा धीवरन को सहाई बनचरन को (अ);

ऐसों अबगुनी ! ताके सेइबे कौं तरसत,
 जानियै न कौन^१ सेनापति के^२ समान है ॥ १६ ॥
 रोस करौं तोसौं, दोस तोही कौं सहस देहुं,
 तोही कान्ह कोसौ बोलि अनुचित बानियै ।
 तुही एक ईस, तोहि तजि और कासौं कहाँ,
 कीजै आस जाकी अमरष^३ ताकौं मानियै ॥
 जीवन हमारौं, जग-जीवन तिहारे हाथ,
 सेनापति नाथ न रुखाई मन आनियै ।
 तेरे पगन की धूरि, मेरे प्रानन की मूरि (?)
 कीजै लाल सोई, नीकी जोई जिय जानियै^४ ॥ २० ॥
 पान चरनामृत कौं, गान गुन गनन^५ कौं,
 हरि कथा सुनि^६ सदा हिय कौं हुलसिबौं ।
 प्रभु के उतीरन की, गूदरीयौ चीरन की,
 भाल, भुज, कंठ, उर, छापन कौं लसिबौं ॥
 सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
 वृन्दावन-सीमा तैं न बाहिर निकसिबौं ।
 राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की,
 माल गरे गुंजन की, कुंजन कौं बसिबौं ॥ २१ ॥
 बिनती बनाइ, कर जोरि हौं कहत तातैं,
 जातैं तुम करता जगत उत्पत्ति के ।
 तुम सरनागत कौं देत हौं अभय दान,
 तुम ही हौं दाता अबिचल अधिपत्ति^७ के ॥
 सदा इह लोक, पर लोक, तिहू लोकन में,
 लोकपाल पालिबे कौं, हरता बिपत्ति के ।
 सेनापति ईस, बिसे बीस, मोहिं महाराज^८ !
 तेरोई भरोसौं दसरथ चक्रवत्ति के ॥ २२ ॥

१ करे (ज); २ को (ज) ३ अमरम (ख); ४ सोई जोई नीकी मन जानियै (ज) ।
 ५ गुन गानन (ज); ६ सुने (क) (ग) । ७ आधिपत्ति (क) (न); ८ मोहिं बीस बिसे
 महाराज (न) ।

मोहिं महाराज आप नीके पहिचानैं, रानी
 जानकीयौ जानैं, हेतु लछन कुमार को ।
 बिभीषन, हनूमान, तजि अभिमान, मेरौ
 करें सनमान, जानि बड़ी सरकार को ॥
 एरे^१ कलिकाल ! मोहिं कालौ न निदरि सकै,
 तू^२ तौ मति मूढ़ अति^३ कायर गँवार को ।
 सेनापति निरधार, पाइपोस बरदार,
 हौं तौ राजा रामचन्द जू के दरवार को ॥ २३ ॥
 गिरत गहत बाँह, घाम में करत छाँह,
 पालत^४ बिपत्ति माँह, कृपा-रस भीनौ है ।
 तन कौं बसन देत भूख में असन, प्यासे
 पानी हेतु सन^५, बिन माँगे आनि दीनौ है ।
 चौकी तुही देत, अति हेतु कै गरुड़-केतु !
 हौं^६ तां सुख सोवत न सेवा परवीनौ है ।
 आलस की निधि, बुधि बाल, सु जगतपति !
 सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है ॥ २४ ॥
 श्री बृन्दावन-चन्द, सुभग धाराधर सुन्दर ।
 दनुज-बंस-वन-दहन, वीर जटुबंस^७-पुरन्दर ॥
 अति बिलसति बनमाल, चारु^८ सरसीरुह लोचन ।
 बल बिदलित^९ गजराज, बिहित बसुदेव विमोचन ॥
 सेनापति कमला हृदय, कालिय-फन-भूपन चरन ।
 करुनालय सेवौ^{१०} सदा, गोबरधन गिरवर-धरन ॥ २५ ॥
 निगमन गायौ, गजराज-काज धायौ, मोहिं^{११}
 संतन बतायौ, नाथ पन्नगारि-केत है ।
 सेनापति फेरत दुहाई तोहि^{१२} टेरत है,
 हेरत न इत, जानियै न कित चेत है ॥

१ क्यो रे (क) (ख) (ज); २ तै (ज); ३ महा (न) । ४ पालक (क) (न); ५ सब (ख);
 ६ सो (ख) (ग) (न) (छ) । ७ जय बस (न); ८ लाल (न); ९ बिदलित (ग); १० पालन
 (न) । ११ मोइ (ख); १२ ताइ (ख);

और हैं न तोसे, सोवे^१ कौन के भरोसे, कछू
 है रहे इकौसे, हौं न जानौं कौन हेत है ।
 तू कृपा-निकेत, तेरो दीनन सौं हेत, मोहि
 मोह दुख देत, सुधि मेरी क्यों न लेत है ॥ २६ ॥
 बारन लगाई ही पुकार एक बार, ताकौं
 बार न लगाई, रछिपाल भगतन के ।
 देव^२-सिरताज तुम, आज^३ महाराज बैठि
 रहे तजि लाज, काज मो गरीब जन के ॥
 सेनापति राम भुवपाल जू कृपाल, आज
 जानि जन^४ हूजियै सरन असरन के ।
 धाइ हरि राइ, है सहाइ आइ दूरि करौ,
 त्रास लछ मन के सु भैया लछमन के ॥ २७ ॥
 आदर बिहीन, नाहिं^५ परद्वार दीन जाइ^६,
 होत है भली न^७ बात सुनि अनबात की ।
 सदा सुख पीन, राम-नाम^८ रस-लीन रहै,
 कौहू^९ चित चिंता न करत प्रान-गात की ॥
 आसरो न और कौं करत काहू ठौर कौं, जु
 सेनापति एक हरि राइ की कृपा तकी ।
 जाके सिर पर आज राजत है महाराज,
 ताहि कहौ परी परवाह कौन बात की ॥ २८ ॥
 तुम करतार जन^{१०} रच्छा के करनहार,
 पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के ।
 यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,
 हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के ॥
 जौ कौहू^{११} कहौ कि तेरे करम न तैसे, हम
 गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के ।

१ वे वे (क) (ग) (न) (ज) । २ सिव (न); ३ आपु (न); ४ जिय (न) । ५ नाहीं (क)
 (ख) (न); ६ जोइ (क) (म); ७ मलीन (ज); ८ राम (क); ९ कोऊ (ख), केहू (ज) । १०
 जग (न); ११ कहू (ख) ।

आपने करम करि हौं ही निबहौंगों, तौब
 हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ? ॥ २६ ॥
 तू है निरवान कौं निदान ज्ञान^१ ध्यान करै
 तेरौ चतुरानन, बसैया नाभि-भौन कौं ।
 सोई^२ सिरजनहार, भार कौं धरनहार,
 तू है प्रभु पाउक, पुहुमि, पानी, पौन कौं ॥
 दीजियै न पीठि, इत कीजियै दया की दीठि^३;
 सेनापति पाल्यौ है तिहारे एक लौन कौं ।
 आपु ही कृपाल पालौ राम भुवपाल, और
 दूसरौ न तोसौं, पैड़ौ देखत हौं कौन कौं ? ॥ ३० ॥
 धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार,
 सो न करतार तू बिचार बैठि गेह रे ।
 राखु दीठि अंतर, कछु न सून-अंतर है,
 जीभ^४ कौं निरंतर जपाउ तू हरे हरे ! ॥
 मंजन बिमल सेनापति मन-रंजन तू,
 जानि कै निरंजन परम पद लेह रे ।
 कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, क-
 हा है^५ बीच देहरे ? कहा है बीच देह रे ? ॥ ३१ ॥
 निगमन हेरि, समुझाइ, मन फेरि राख,
 मन ही कौं घेरि रूप देखि मचलत^६ है ।
 सेनापति देख राम तोही मैं अलेख, धरि
 भगत कौं भेष कत बिस्व कौं छलत है ॥
 तोरि मरौ पाउ करौ कोटिक उपाउ, सब
 होत है अपाउ, भाउ चित्त कौं फलत है ।
 हिए न भगति जातैं होत सुभ गति^७, तन
 तीरथ चलत मन ती रथ चलत है ॥ ३२ ॥

१ गान (क); २ साई (ज); ३ डीठि (क) (ज) । ४ जीब (ज); ५ कही है (ज) ।
 ६ मवलत (क) (ख) (ग); ७ हिए न भगत जाते होत न भगत (ज) ।

केतो करौ कोई, पैयै करम लिख्यौई, तातैं
 दूसरी न कोई^१, उर सोई^२ ठहराइयै ।
 आधी तैं सरस गई बीति कै बरस^३, अब
 दुजन-दरस-बीच न रस^४ बढ़ाइयै ॥
 चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित
 सेनापतिहै सुचित राजा राम जस^५ गाइयै ।
 चारि बरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के,
 पाइक मलेच्छन के काहे कौ कहाइयै ॥ ३३ ॥
 सागर अथाह, भौर भारी, बिकराल गाह,
 जद्यपि पहार हू तैं दीरघ लहरि है ।
 देखि न डराहि, कतराहि^६ मति बार बार,
 बाउरे कछू न तेरौ तऊ तौ बिगिरि है^७ ॥
 बाँध्यौ जिन सिंधु, जो^८ है दीनन कौ बंधु, जिन
 सेनापति कुंजर की कीनी धरहरि है ।
 राम महाराज, धरि बिरद की लाज, सोई
 साजि कै जहाज कौ निबाह पार करिहै ॥ ३४ ॥
 एरे मन मेरे, खोए बासर घनेरे, करि
 जोष^९ अभिलाष अजहूँ न उह रत^{१०} है ।
 तजि कै बिबेक, राम-नाम कौ सरस रस,
 सेनापति महा मोह ही मैं बिहरत है ॥
 जद्यपि दुलभ तऊ और अभिलाष, दैव
 जोग तैं सुलभ, ज्यौं घुनच्छर परत है ।
 कीजियै कहाँ लौ तेरे मन की बढ़ाई, जातैं
 मरेन के जीबे कौ मनोरथ करत है ॥ ३५ ॥
 अरि करि आँकुस बिदारथौ हरिनाकुस है,
 दास कौ सदा कुसल, देत जे हरष हैं ।

१ होई (ज); २ साइ (ज); ३ बात गई है बरस (ज); ४ रस न (ज) । ५ रघुपति गुन (ज) । ६ कदराहि (ज); ७ बाउरे तऊ न तेरो कछू पै बिगिरि है (क); ८ सो (ख) । ९ लाख (ज); १० उघरत (ख) ।

कुलिस करेरे, तोरा तमक^१ तरेरे^२, दुख
 दलत दरेरे कै, हरत कलमष हैं ॥
 सेनापति नर होत ताहि तैं निडर, डर
 तातैं तू न कर, बर करुना-बरष हैं ।
 अति अनियारे, चंद-कला से उजारे, तेई
 मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख हैं ॥ ३६ ॥
 करि धीर नादै, कीनौ पूरन प्रसादै दौरि,
 पाल्यौ प्रह्लादै जिन ज्यायौ भौति सौं भली ।
 कीजै न बिबादै नित्त, छाँड़ि कै विपादै, मन
 ताही कौं सदा दै, जातैं दास-कामना फली ॥
 पावै सुख-साजै, जग-मध्य सो बिराजै, सो
 मिटावै जमराजै, रोग दोष की कहा चली ।
 कहत सदा 'जै', सेनापति भय भाजै, जाके
 सिर पर गाजै नरसिंह सौं महा बली ॥ ३७ ॥
 जोर^३ जलचर, अति क्रुद्ध करि जुद्ध कीनौ,
 बारन कौं परी आनि बार^४ दुख-दंद की ।
 हैकै नकवानी दीन-बानी कौं सुनाइ, जौ लौ^५
 लै कै कर पानी, पूजा करै जगबंद की ॥
 तौ लौं दौरि दास की पुकार लाग्यौ दीन-बंधु,
 सेनापति प्रभु मन हू की गति मंद की ।
 जानी न परति, न बखानी जाति कछू, ताही^६
 पानी में प्रगथ्यौ, किधौं बानी में गयंद की ॥ ३८ ॥
 आह के गहे तैं अति व्याकुल बिहाल भयो,
 प्राण-पत ताने^७, रख्यौ एक ही उसास कौं ।
 तहाँ सेनापति, महाराज बिना और कौन,
 धाइ आइ साँकरे, सेघाती होइ दास कौं ॥

१ तपकि (ज); २ सरेरे (ख) । ३ जुरि (ख); ४ अनिवार (क) (ख) (ग); ५ कै जौ (क); ६ देखौ (ज) । ७ प्राण पात ताने (ख), प्रार पर ताये (ज) ।

गाढ़ में गयंद, गरुडध्वज के पूजिबे कौं,
 जौ लौं कोई कमल लपकि लेइ पास कौं ।
 तो लौं, ताही बार, ताही बारन के हाथ परथौ,
 कमल के लेत हाथ कमला-निवास कौं ॥ ३६ ॥

चीर के हरत बलवीर जू बढ़ायौ चीर^१,
 दौरि मारि डारथौ न दुसासन प्रगटि कै ।
 सेनापति जानि^२ याकौ जान्यौ है निदान, सुनि
 जुगति बिचारौ जौब रावरे मन टिकै ॥
 जोई मुख मँग्यौ, सोई दीनौ बरदान, ओप
 दीनी द्रौपदी कौं, रही पट सौं लपटि कै ।
 रोवत में श्रीवर^३ कहत कही छीबर, सु
 मेरे जान यातैं चले छीबर उपटि कै^४ ॥ ४० ॥

पारथ की रानी, सभा बीच बिललानी, दुसा-
 सन अभिमानी, दौरि गही केस-पास में ।
 तबहीं बिचारी, सारी खँचत पुकारी 'कान्ह !
 कहाँ हौ ? परी हौ नीच लोगन के त्रास में' ॥
 सेनापति त्योंहीं^५, पट कोटिक उपटि चले,
 चारथौ बेद उठे जस गाइ कै अकास में ।
 बैरिन के बास में, बिपत्ति के निवास में, ज-
 गन्निवास वा समैं, दिखाई^६ प्रीति बास में ॥ ४१ ॥

द्रौपदी सभा में आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
 कौरव कुपित कह्यौ काहूँ कौं न मानहीं ।
 लच्छक नरेस, पै न रत्नक उठत कोई,
 परी है बिपत्ति पति लागी पतता नहीं^७ ॥
 जब^८ स्यामसुन्दर अनन्त हरे पीत-बास^९ !
 कहि करि टेरी लाज जात है निदान ही ।

१ वीर (क); २ जान (क); ३ सीबर (अ); ४ रहे छीबर ही पटि कै (अ) । ५ तौही (क)
 (ग); ६ जनाई (अ) । ७ काऊ (ख); ८ पतितान की (अ); ९ तब (ख); १० बासदेव (अ) ।

सेनापति तब मेरे जान तेई हरि नाम,
 है गए बसन हरि नाम के समान ही ॥ ४२ ॥
 पति उतरति, देखौ परी है बिपति अति,
 द्रौपदी पुकारै, सेनापति जदुनाइकै ।
 दुरजन-भीर जानि ताकी तब पीर, बर^१
 दोनौ बलबीर, बेद उठे जस गाइ कै ॥
 खैचि खैचि थाक्यौ, न उसास है दुसासन मै,
 अंध ज्यौ धरनि घूमि गिरथौ भहराइ कै ।
 मंदर मथत छीर-सागर के छीर जिमि,
 पैयत न छीर^२ चीर चले उफनाइ कै ॥ ४३ ॥
 पदी और बिद्या, गई छूटि न अबिद्या, जान्यौ
 अच्छर न एक, घोख्यौ^३ कैयौ तन मन^४ है ।
 तातैं कीजै गुरु, जाइ जगत-गुरु कौं, जातैं
 ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानंद घन है ॥
 मिटत है काम-क्रोध, ऐसौ उपजत बोध,
 सेनापति कीनौ सोध, कछौ निगमन है ।
 बारा नसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
 संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है ॥ ४४ ॥
 सोहति उतङ्ग, उत्तमङ्ग, ससि सङ्ग गङ्ग,
 गौरि अरधङ्ग, जो अनङ्ग प्रतिकूल है ।
 देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
 चाम सारदूल कौं, सदा कर त्रिसूल है ॥
 कहा भटकत ! अटकत क्यौं न तासौं मन ?
 जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै ।
 लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेलपात,
 चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है ॥ ४५ ॥
 हित उपदेस लेह^५, छाँड़ि दै कलेस, सदा
 सेइयै महेस, और ठौर कहा भटकै ।

१ बर (क) (ग) । २ पैयै न उछोर (क) (ख) (ग) । ३ देखो (ज); ४ जन (ज) ।

५ लेइ (ख) ।

सदन उषित रहु, संतत सुखित, मति
 होउ तू दुखित, जोग-जाग मैं निपट कै ॥
 चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक,
 जिन्हें लेत कोई कहूँ भूलि हू न हटकै ।
 सेनापति सेवक कौं चारि बरदानि, देव
 देत हैं समृद्धि जो पुरंदर के खटकै ॥ ४६ ॥
 जाकौं महा जोगी, जोग साधन करत हठि,
 जाकौं सब जगत करत जज्ञ-जाप है ।
 जहाँ चतुराननौ अनेक जतनन जात,
 होत है न जाकौं सनकादि कौं मिलाप है ॥
 ताही हरि-लोक गए कोसल-निवासी जीउ,
 जे हे^१ थिर-जंगम, न देख्यौ भव-ताप है ।
 सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
 सो तौ महाराजा^२ रामचंद कौं प्रताप है ॥ ४७ ॥
 पति के अछत, सुरपति जिन पति कीनौ,
 जाके नख-सिख, रोम-रोम भर्यौ पाप है ।
 देह दुति गई, तई,^३ बन मैं पखान भई^४
 लाग्यौ बिकराल रिषिराज कौं सराप है ॥
 सोई है अहिल्या, सिय-सिवा के समान भई,
 पतिव्रत पाइ, पायौ सती कौं प्रताप है ।
 सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
 सो तौ महाराजा रामचंद कौं प्रताप है ॥ ४८ ॥
 महा मद-अंध दसकंध सनबन्ध छाँड़ि,
 जाके लात मारी, न बिचारी होत पाप है ।
 पाइ अपमान जातुधान की^५ सभा के बीच,
 बाम हू बिसारि, चल्यौ करि परिताप है ॥
 सोई बिभीषन, दिगपाल सौं बिराजत है,
 पायौ पद पूरौ पुरहूत कौं दुराप है ।

सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तो महाराजा रामचंद कौं प्रताप है ॥ ४६ ॥

जाही हनुमान के अछत अपमान पाइ,
भाज्यौ भानु-सुत, करि जियौ^१ जाप-थाप है ।

कौहू बस्यौ मन्दर मैं कौहू मेरु कन्दर मैं
बस्यौ बल मंद रह्यौ करत सँताप है ॥

सोई तरि सिधु कौं, निसंक लंक जारि आयौ,
लायौ द्रोण अचल मिटायौ परिताप है ।

सेनापति बेद मैं बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तो महाराजा रामचन्द कौं प्रताप है ॥ ५० ॥

यह कलिकाल बढ़्यौ दुरित कराल, देखि
आई दुचिताई, सुचिताई सब लूट हीं ।

हम तपहीन, जाइ तरैं कत दीन, तोसी
दूसरी नदी न, देखि फिरे चहुँ खूँट हीं ।

सेनापति सिव-सिर संगिनी तरंगिनी तू,
तोहि^२ अचवत पचवत कालकूट हीं ।

तजि कै अपाइ, तीर बसैं सुख पाइ, गंगा !
कीजै सो उपाइ, तेरे पाइ ज्यौं न छूटहीं ॥ ५१ ॥

यह सरबस चतुरानन कमंडल कौं,
सेनापति यह चरनोदक है हरि को ।

यह ईस-सीस हू की सोभा है परम, साढ़े
तीन कोटि तीरथ मैं याकी सरवरि को ? ॥

छाँड़ि देह तप तू, भुलाइ डार सबै जप,
कौन की है चप तोहि, तेरो और अरि को ?

मेटि जम-दुंद, द्वार नरक कौं मूँद, बेनी
मैनका की गूँद, बूँद^३ पी कै सुरसरि को ॥ ५२ ॥

कोई महा पातकी मर्यौ हो जाइ मगह मैं,
सो तो बाँधि डार्यौ बीच नरक समाज के ।

कीनौ गर-जोरि और नारकीन बीच घेरि,
 जे हे निसि-बासर करैया पाप काज के ॥
 ताही के करकै सेनापति गंग न्हैयान कौ,
 लागत पवन जान आए सुर साज^१ के ।
 साँकरैं कटाइ, जमदूत रपटाइ, सोइ^२
 लै चलयौ छुटाइ बन्दीवान जमराज के ॥ ५३ ॥
 यह सुरसरि, कौन करै सुर सरि याकी,
 भू पर जो ऊपर है तीरथ समाज के ।
 धरम अधार धार याकी निरधार दाता
 याही कै तरैंगे^३ सेनापति सुभ काज के ॥
 को कहै बखानि, अवलोकन करत जाके,
 सोक न रहत, ओक होत सुख साज के ।
 थोक नसैं पापन के, दोक जल-कन चाखैं,
 ओक भरि पियैं लोक जीतै जमराज के ॥ ५४ ॥
 राम जू के पाइ, मुनि-मन न सकत पाइ,
 पैयै जौ समाधि, जोग, जप, तप, करियै ।
 मोह-सर-सरसाने, हम कलि-मल-साने,
 पैड़ौ राम पाइ गहिवे^४ कौ अटकियै ॥
 एकै है उपाइ, राम पाइन के पाइवे कौ,
 सेनापति बेद कहैं अंध की लकारियै ।
 राम-पद सगिनी, तरंगिनी है गंगा, तातैं
 याहि पकरे^५ तैं पाइ राम के पकरियै ॥ ५५ ॥
 सुर-लोक सीतल करत अवनीतल तैं
 गई धरनीतल, बटोही तीनि बाट की ।
 गनैं कौन गुन जाके, सुर नर मुनि थाके,
 मति अटकति चतुरानन से भाट की ॥

१ पर साज (ख); २ सो तौ (ख) । ३ के तरैंगे (ख), के तरंगे (क) (ग) । ४ पाइवे (ख); ५ परसे (ख) ।

सोहति अधार, हेम-कंजन कौं निरधार,
 गंगा जू की धार, निधि सोभान के ठाट की ।
 कछू वाँधि लीनी, कछू सेनापति लटकति,
 छापेदार पाग मानौं पुरुष बिराट की ॥ ५६ ॥
 कीने सौ जनम ही मैं, जे अघ जन मही मैं
 दूरि जन होत धूरि तनकौं जु छुजियै ।
 पाइ मघ वाके धरि, पाइ मघवा के धाम
 करै दुसमन सो^१ समन, सो न^२ दूजियै
 भीजैं जाके बारि पद, पावै दानवारि पद,
 सेनापति नै करि बिनै करि जाँ पूजियै ।
 देखैं सुरसिंधु-रन चढ़ैं सुर-सिंधुरन,
 कूल-पानि हू पियैं त्रिसूल-पानि हूजियै ॥ ५७ ॥
 पतित उधारै हरि-पद पाँउ धारै, देव-
 नदी नाँउ धारै, कौन तीनि-पथ धावई ।
 ईस सीस लसै (बसै ?)^३ विधि के कमंडल मैं,
 काकौं^४ भगीरथ नृप तप तन तावई ॥
 सब सरितान कौं बिसारि करि आप हरि,
 आपनी बिभूतिन मैं कौन कौं गनावई ।
 गते गुन-गन सेनापति कौन तीरथ मैं ?
 तातैं^५ सुरसरि जू की पदवी कौं पावई ॥ ५८ ॥
 राम जू की आन कोई तीरथ न आन देख्यौ,
 गंगा की समान होतौ बेद तौ बतावतौ ।
 सम सरिता की, जाँव होती सरि ताकी, तौ पै
 याही कौं कन्हैया क्यौं बिभूति मैं गनावतौ ॥
 सगर-कुमारन कौं सेनापति तारन कौं,
 तीरथ जाँ कोऊ सुरसरि सम पावतौ ।

१ सौं (क) (ग); २ साँ जु (क) (ग) । ३ यहाँ पर एक शब्द नहीं है । पं० शिवाग्रधार
 पाँडे ने इस स्थान पर 'बसै' शब्द होने की कल्पना की है ।—संपादक; ४ ताकौं (ख);
 ५ ताने (क) ।

गंगा ही के अरथ भगीरथ बिरथ है, तौ
 काहे कौ बिरथ तप करि तन तावतौ ॥ ५६ ॥

काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै
 ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समैं ।
 ब्याधि के अरंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधौ अंग,
 रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं ।
 ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
 पैयती न बाकी तिल एकौ कहुँ ईस मैं ।
 सेनापति जिय जानी सुधा तैं^१ सहस्र बानी,
 जौ पैगंगारानी कौ न पानी होतौ सीस मैं ॥ ६० ॥

कोह कौ घटाइ, लोभ मोहन मिटाइ काम
 हू तैं निबटाइ करि, करति उधार है ।
 देखैं बारि दीन, दारिदी न होत सपने हू,
 पावै राज बसु, ताके^२ बस बसुधा रहै ॥
 रोग करै दूरि, भोग राखै भरपूरि, एक
 अमर करन मूरि मानहू सुधा रहै ।
 धरम आधार, सेनापति जानी निरधार,
 गंगा तेरी धार कामधेनु तैं दुधार है ॥ ६१ ॥

बिस्व की जुगति जीतै जोग की जुगति हू कौ,
 भुक्ति-मुक्ति देत लावति न पल है ।
 जाकौ पौन लागैं, दल दुरित के भागैं, जाके
 आगे न चलत जमराज हू कौ बल है ।
 सेनापति प्रीति-रीति, कीजै परतीति करि,
 गंगा जप-तप नेम-धरम कौ फल है ।
 रूप न बरन, उत्पति न मरन, जाके
 कर न चरन, ताके चरन कौ जल है ॥ ६२ ॥

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके,
 लागे सर दैन, सेनापति सुख-दाइकै ।

तौही कही आप, सुर न दीजै प्रवीन,। हौं अ-
 लापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइकै ।
 धोखे 'सुरनदी जै' के कहत-सुनत, भए
 तीन्यो तीन देव, तीन लोकन के नाइकै ।
 गाइन गरुड़-केतु भयौ, द्वै सखाऊ भए
 धाता महादेव, बैठे देव-लोक जाइ कै* ॥ ६३ ॥

लहुरी^१ लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके^२
 बीच परे भौर फटिका से सुधरत हैं ।
 परे परवाह पानि ही मैं जे बसत सदा,
 सेनापति जुगति अनूप बरनत हैं ॥
 कोटि कलिकाल कलमष सब काक जिमि,
 देखे उड़ि जात पात पात है नसत हैं ।
 सोहत गुलेला से बलूला सुरसरि जू के,
 लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं ॥ ६४ ॥

जाकी नीर-धार, निरधार निरधार हू कौं,
 परम अधार आदि-अंत और अबहूँ^३ ।

१ लहुरी (क); २ ताके (क) (ग) । ३ अबहूँ (ख) ।

*इस कवित्त के पहले 'क' तथा 'ग' प्रति में एक कवित्त दिया है जो कि खंडित है ।

'ख' तथा 'अ' प्रति में वह नहीं है । 'क' में वह इस रूप में है—

जाही लोक तीरथ के थोक पहुँचावत

×	×	न न्हाइ	न्हाइ जिन में ।
×	×	×	×
×	×	सेनापति	जान्यो मन में ॥

तीरथ सकल एतो बासी भुवतल ही के

धरि जे सकत क्यों हू पगन पगन में ।

यह तौ त्रिपथगा है जानै त्रिभुवन पथ

यातैं सुर पुर पहुँचावति हैं पल मैं ॥

—संपादक

सुख कौं निधान, सेनापति सन्निधान जो है,
 मुकति निदान भगवान मानी भव हूँ ॥
 ऐसी गंगा रानी वेद बानी मैं बखानी, जग
 जानी सनमानी, दीप सात खंड नव हूँ ।
 कामधेनु हीन, सुरतरु बारि दीन, जाकौं
 देखैं बारि दीन दारिदी न होत कबहूँ ॥ ६५ ॥
 रहाँ पर लोक ही के सोक मैं मगन आप,
 साँची कहाँ हिन्दू कि मुसलमान राउरे ।
 मेरी सिख लीजै, जामैं कछुव^१ न छीजै,
 मन मानै तब कीजै तोसौं कहत उपाउ रे ॥
 चारि बर दैनी, हरिपुर की नसैनी गंगा,
 सेनापति याकौं^२ सेइ सोकहिं मिटाउ रे ।
 न्हाइ कै बिसुन-पदी, जाह तू बिसुन-पद,
 जाहनवी न्हाइ जाह नबी पास बाउरे ॥ ६६ ॥
 कहा जगत आधार ? कहा आधार प्रान कर ? ।
 कहा बसत बिधु मध्य ? दीन बीनत कह घर घर ? ॥
 कहा करत तिय रूसि ? कहा जाचत जाचक जन ? ।
 कहा बसत मृगराज ? कहा कागर^३ कौं कारन ? ॥
 धीर बीर हरषत कहा ? सेनापति आनंद घन ! ।
 चारि वेद गावत कहा ? 'अंत एक माधव सरन' ॥ ६७ ॥
 को मंडन संसार ? गीत मंडन पुनि को है ?
 कहा मृगपति कौं भच्छ ! कहा तरुनी मुख सोहै ? ॥
 को तीजौ अवतार ? कवन जननो-मन-रंजन ? ।
 को आयुध बलदेव हत्थ दानव-दल-गंजन ? ॥
 राज अंग निज संग पुनि कहा नरिंद राखत सकल ? ।
 सेनापति राखत कहा ? 'सीतापति कौं बाहु बल' ॥ ६८ ॥
 को पर नारी पीउ ? करन-हंता पुनि को है ? ।
 को बिहंग पुनि पढ़इ ? कौन गृह पंकज कौं है ? ॥

१ कछुव (क) (ग); २ याइ (ख) । ३ कागद (ग) ।

को तरु^१ प्रान निधान ? कवन बासी भुजंग मुख ? ।
 को हरषत घन देखि ? कवन बाढ़त तुसार दुख ? ॥
 आदान दान रच्छन करन को कृपान धारै समर ? ।
 सेनापति उर धरत कह ? 'जानकीस जग मोद^२ कर' ॥ ६६ ॥

असरन सरन, सकल खल करपन,
 दशरथ तनय, सघन अघ धरपन ।
 जलज नयन, चर अचर अयन, जल
 सदन सयन, अरचन जन हरपन ॥
 अचल धरन, गज दरद दलन, जग
 रछन करन, सस-धर गन दरसन ।
 नरक हरन, 'जय' कहत तरत नर,
 अरचत चरन गगन-चर अनगन ॥ ७० ॥

जी मै^३ दरद न छक्यौ सकल मदन तरु (?)
 केतिक सदन काज काटै तैं^४ हरे हरे ।
 पाइ नर तन भयौ राम सौं रत न वर,
 कंचन रतन पेट काज के हरे हरे ॥
 अबहूँ तू^५ चेत मन ! सीस^६ भयौ सेत, सेना-
 पति सिख देत, जप हेतु सौं हरे हरे ।
 और न जुगति जासौं होति आजु गति, देति
 भुगति-मुकति हरि-भगति हरे हरे ॥ ७१ ॥

संतन के तीर, सेनापति बरती रहि कै^७
 तीरथ के तीर बसि बासर बराइहौं^८ ।
 माया के बिलास, तातैं ह्वै करि उदास, हरि
 दासन की गनती मैं आप हू गनाइहौं ॥
 राखौं और साध न, चलोँगौ मन^९ साधन कै,
 बिना जोग-साधन परम-पद पाइहौं ।

१ तनु (क) (ख) (ग); २ मोह (ज) । ३ जामैं (क) (ख) (ग); ४ तैं (क) (ख) (ग);
 ५ तौ (ज); ६ मूढ़ सीस (ज) । ७ वर तीर हिये (ज); ८ बसाइ हौं (ज); ९ मत (ख) (ग)।

विपे की कतार, ताकी करि हटतार, कोऊ^१

लै कै करतार करतार गुन गाइहौं ॥ ७२ ॥

लोली लल्ला लल्लली^२ लै ली^३ लीला^४ लाल ।

लालों लीलों लोल लै^५ लै लै लीला लाल ॥ ७३ ॥

रे रे रामा मैं रमै^६, रोम रोम मैं रारि ।

रमों रमा मैं राम मैं, मार मार रे^७ मारि^८ ॥ ७४ ॥

लीला लोने नलिन^९ लौं, ललना नैनन लीन ।

लोल लोल लाली निलै^{१०}, नौल लाल लौ लीन ॥ ७५ ॥

मौन नेम, नामौ नमै^{११}, मुनि मन^{१२} मानै^{१३} मैंन ।

मन-मानै^{१४} नामी, मनौ मीन मानिनी नैन ॥ ७६ ॥

रे रे सूरौ ! सुरसरी सौरौ^{१५}, संसौ सास ।

रोस रूसि^{१६} संसार सौ सौरै सो रस-रास^{१७} ॥ ७७ ॥

दानी दिन दिन दादनी दाना दाना दीन ।

दानौ-दंदन^{१८} दादि दै दाना दाना दीन ॥ ७८ ॥

हरि हरि हारी, हारिहै^{१९} हेरे रूरी हेरि ।

हीरे हीरे^{२०} हार^{२१} है, रे हरि हीरै हेरि ॥ ७९ ॥

तो रति राती राति तैं^{२२}, रेती तारे तीर ।

तन्त्री तैं^{२३} रूरी ररै, त्री तेरी तरु^{२४} तीर ॥ ८० ॥

अब सपरे सुरसरि करै सिव केसव बिधि धाम^{२५} ।

अबस परे सुरसरि करै सिव के सब बिधि वाम^{२६} ॥ ८१ ॥

मारगु मानी को पकरि, छाँड़िथौ ती छन तीर ।

मार गुमानी कोप करि, छाँड़िथौ तीछन तीर^{२७} ॥ ८२ ॥

१ कौहू (क) (ग), कहू (ख) । २ लल्लला (क); ३ लै (ज); ४ लाला (ग); ५ लौ (क) (ग) । ६ रमैं (क) (ख); ७ रै (क) (ग); ८ मारि मरू रे मारि (ज) । ९ ललिन (क); १० लालीनि लै (क) (ख) । ११ मनै (क) (ग); १२ मानि (क); १३ मानैं (क) (ग), मानौ (ज) । १४ मुन (ज) । १५ सौरौ (ज); १६ रासि (ज); १७ सौरैं सौर सुरासू (क) । १८ दान; (क) (ज) । १९ हेरिहै (ज); २० होरे होरे (ज); २१ हारू (क) (ग) । २२ ते (ज); २३ तू (ज); २४ तनु (क) । २५ वाम (क); २६ धाम (ज), सुभ जन को करि कै ठरै जब संतन की नारि (क) । २७ हरि मैं तजि संसार मैं मिलै अभय पद जाइ (क)

सुख से ना पति पाइहै, भगतिन मन मैं जानि ।
 सुख सेनापति पाइहै, भगति नमन मैं जानि ॥ ८३ ॥
 मधु खंडन परि नाम है, सिय रानी कौं पीय ।
 मधु-खंडन परिनाम है सिय रानी कौं पीय ॥ ८४ ॥
 नरक-हरन तैं^१ राखियै, नर कहरन तैं दास ।
 करुनाकर मों सीस पर करुना करत उदास ॥ ८५ ॥
 संबत सत्रह सै छ मैं, सेइ सियापति पाइ ।
 सेनापति कविता सजी, सज्जन सजौ सहाइ* ॥ ८६ ॥
 (इति रामरसायन वर्णनम्)

१ ते (क) ।

*अंतिम दोहे के पहले 'क' प्रति में यह खंडित कवित्त दिया है :—

पूरा	पंडिताई	कविताई	परबीनताई
×	×	साधुताई	की जौ अब खानि है ।
अति	गुन	वंत सील	वंत सब संतनु को
×	×	निंदा	का सुहानि है ॥
×	×	×	×
	×	×	×
		×	×

परिशिष्ट

सूचना :—निम्नलिखित १७ छन्द 'अ' प्रति में हैं जो सं० १६४१ की लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य प्राचीन प्रति में ये नहीं पाये जाते हैं इसीसे इन्हें मूल-ग्रंथ में नहीं दिया गया है। रचना-शैली की दृष्टि से ये सेनापति कृत जान पड़ते हैं। अधिकांश छन्दों में 'सेनापति' भी लिखा हुआ मिलता है।

—संपादक

चन्द से न तारे है न भारे कनकाचल से
 प्रान से न प्यारे न उजारे और वाम से ।
 संकर से सिद्ध न समृद्ध न पुरन्दर से
 धाता से न वृद्ध है न वेद और साम से ॥
 इन्दिरा सी दार न उदार पारिजात से न
 वात से न वली अभिराम है न काम से ।
 गंगा सी नदी न है नदीस से न सरवर
 सेना से न दीन है न दीनबन्धु राम से ॥ १ ॥
 तोसो एक तुही और दूसरो न राजा राम
 तेरे ई रचे है लोक सुर नर नागरे ।
 सोई वीतराग तिन कीने जर जाग सेना-
 पति ताकी भाग जाको तोसों अनुराग रे ॥
 आप तन देखिये न देखौ करतूति मेरी
 अधम उधारिवे की तेरे सिर पाग रे ।
 मोसो अपराधी है न तोसो है सहनहार
 मोसे अबगुनी है न तोसे गुन आगरे ॥ २ ॥
 जैसे जल मीन अति दीन हौ अधीन तेरे
 राम परबीन क्यों रुखाई लीजियतु है ।
 तुही जित तित कहौ जाहि ये अनत वैकि
 तक हे ते न नेक इव उठि दीजियतु है ॥

धरा के अधार जग रछा के करनहार
 जो न तुम ऐसे केसे धरती जियतु है ।
 वेद कहै सत्यसंध सेनापति दीन बन्धु
 देव दयासिंधु दया क्यों न कीजियतु है ॥ ३ ॥

दानि तू निदान ज्ञान प्रान के निधान
 जानत आदि अन्त और अबहू ।
 सेनापति सेवक ते साहेब जगतपति
 एकै दीप सात हू अखंड खंड नव हू ॥
 और सब साथिन को साथ है सराइ कैसो
 तेरो पूरो साथ न वियोग छिन लव हू ॥

❀

❀

❀

❀

❀

❀ ॥ ४ ॥

राम सत्यसंध दयासिन्धु दीनबन्धु यह
 रीति है तिहारी तीनि लोक माँझ गाई है ।
 चारि बरदानि महा जान पत होत तुही
 सेनापति संतन के साकरे सहाई है ॥
 सेवक जजाल जाल मैं बँध्यो कृपाल लाल
 पालिवे के ठार मे कहा कठोरताई है ।
 दै कै निरभय बाह राखो निज छत्त छाह
 जानकी के नाह हिय माह दुचित्ताई है ॥ ५ ॥

साथी भय हाथी के बचायो प्रह्लाद थाइ
 द्रोपदी के लाज काज वेदन मे भाखे हौं ।
 सब समरथ करतार सबही के याते
 सब घर व्यापी सेनापति अभिलाखे हौं ।
 दीनबन्धु दीन के न वचन करत कान
 माँन ह्वै रहे हौं कछू भाँति मन माखे हौं ।
 याते राजा राम जगदीस जिय जानी जात
 मेरे कर करम कृपाल कीलि राखे हौं ॥ ६ ॥

महामोह कंदनि मै जकतु जकंदनि मै
 दिन दुखदंदनि मै जात है बिहाइ कै ।

सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
 सेनापति याही ते कहत अकुलाइ कै ॥
 आवै मन ऐसी घरवार परिवार तजौ
 डारौ लोक लाज के समाज बिसराइ कै ॥
 हरिजन पुंजनि मे वृन्दावन कुंजनि में
 रहौ बैठि कहूँ तरवर तर जाइ कै ॥ ७ ॥

सब गोपी अरु कूबरी सेनापति सब भोग ।
 ते आलिंगति गिरधरै परी एक रति योग ॥ ८ ॥
 राधे मिलि हरि तुम भये से सेनापति सम रीति ।
 वरसाने सुख सो रहौ नीलावर सों प्रीति ॥ ९ ॥
 चल चित बाजी हारिहै जतन करै जो लाखु ।
 सेनापति तब जीतिहै मन मुह रामैं राखु ॥ १० ॥
 जोति सेत ते पाइये संतति नीकी होइ ।
 सेनापति जो तप करै संपत पावै सोइ ॥ ११ ॥
 सेनापति जो कामिनी अंधी कछु लखै न ।
 कविन बखाने कमल से ताही तिय के नैन ॥ १२ ॥
 सेनापति बरन्यो तुरंग उरग दमके पाइ ।
 तोनि पाइ की भाँति ज्यों चलत चारिहू पाइ ॥ १३ ॥
 पाइ एक सौ साठि हैं तिन में एक चलै न ।
 ताके सम बाजी चलै सेनापति हारै न ॥ १४ ॥
 आदि अन्त जाके है आदि ।
 अन्त न जाके सोचां वादि ॥ १५ ॥
 देह बिना हौ हू वरु जात ।
 निसि दिन सोच कहौ सो बात ॥ १६ ॥
 जित पाटी सिर बोर है कीनी खरी अनूप ।
 सेनापति बारह खरी तिय पलका सम रूप ॥ १७ ॥

टिप्पणी

पहली तरंग

१ निरंतर = अविच्छिन्न, स्थाई । बहिरंतर = बाहर-भीतर । अनवरत निरंतर, हमेशा । धन = समूह । संतत = सर्वदा ।

२ पचि = बहुत अधिक परिश्रम करके । खचित = चित्रित । चिंतामनि = “एक कल्पित स्तन जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय, वह पूर्ण कर देता है”^१ । ठकुरानी = मालकिन । अघखंडन = पापों को काटने वाली ।

३ परिहरि रस रोसौ है = राग द्वेष परित्याग कर, वीतराग होकर । ताही कविताई कौ.....नओसौ है = जिसे कवित्व-शक्ति को कवियों ने कठिन तपश्चर्या द्वारा प्राप्त किया है, उसी कवित्व-शक्ति की कीर्ति को मैं प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ यद्यपि मुझे नया नया वर्ण-ज्ञान हुआ है । तात्पर्य यह है कि मुझे अभी वर्ण-ज्ञान भी ठीक-ठीक नहीं हुआ है किंतु मेरा हौसला यह है कि मैं बड़े कवियों की कीर्ति को प्राप्त करूँ; मुझे भी उनका सा यश मिले । पायौ बोध-सार.....इ० = अहल्या को सरस्वती के ज्ञान का मूल भाग इतनी सुगमता से मिल गया जैसे कोई व्यक्ति अपनी रक्खी हुई वस्तु उठा लाता है । खरो सौ = निश्चित सा ।

४ अर्थ :— (तुम) राजाओं (के) भूषण (हो), दूसरे (के) दोषों (को) छिपाते हो (और) शरीर पाकर (तुमने) किसी क्षण भी कटु वचन नहीं कहा । महाशानियों के (तुम) राजा (हो), समस्त कलाओं से परिपूर्ण हो, सेनापति (कहते हैं कि तुम) गुणों के भांडार हो (और) दूसरों को भी गुण देने वाले हो (अर्थात् दूसरों को गुणी बनाते हो) । तुम्हीं ने कुछ बताया है (इससे) (मैंने) कुछ कविता बनाई है; उसमें (अर्थात् हमारी कविता में) योग्यता

१ यह तथा ‘टिप्पणी’ के अन्य अर्थ-सम्बन्धी उद्धरण ‘हिंदी शब्दसागर’ के हैं—संपादक ।

संदिग्ध रूप में ही होगी (मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि मेरी कविता उत्कृष्ट होगी)। (अतएव) हे कवियों के नेता, बुद्धि के अग्रगण्य (सर्वश्रेष्ठ) गोसाईं ! (मैं) शिर झुका कर कहता हूँ (कि आप हमारी कविता की त्रुटियों को) सुधार लीजिए।

५ गंगाधार = शिव।

३ शब्दार्थ—कोई है अभंग.....प्रवाह की:—कोई पद (अर्थ की दृष्टि से) स्वतः पूर्ण है (तथा) किसी के खंड करने पड़ते हैं, (पर पंक्ति के) संपूर्ण पदों पर विचार-पूर्वक देखने से (कविता में) अमृत का सा (मधुर) प्रवाह है।

विशेष :—‘अभंग’ तथा ‘सभंग’ से कवि का संकेत श्लेषालंकार के भेदों की ओर है। जहाँ पूरे शब्द का अर्थ और होता है, किंतु उसके भंग करने पर दूसरा होता है, वहाँ सभंग पद श्लेष होता है। जहाँ समूचे शब्द से ही दो अर्थ निकल आते हैं वहाँ अभंग-पद श्लेष होता है।

७ शब्दार्थ:—कीने अरवीन परवीन कोई मुनि है = ‘अरवीन’ शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार ‘कीने अरवी न.....इ०’ पाठ रहा होगा और इस पंक्ति का अर्थ यों किया जा सकता है—यद्यपि मेरी कविता गुण-रहित तथा दोष-युक्त है फिर भी यदि मैं उसे अरवी न कर दूँगा अर्थात् उसे जटिल न बना दूँगा तो कोई प्रवीण व्यक्ति उसे अवश्य सुनेगा। कुछ लोगों के अनुसार कवि ने ‘परवीन’ के जोड़ पर ‘अरवीन’ यों ही लिख दिया है; इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। बोलचाल में ऐसे निरर्थक शब्द पाये जाते हैं (जैसे—रोटी-ओटी)। उक्त दोनों मतों में प्रथम अधिक युक्तियुक्त जँचता है। रस रूप यामें धुनि है = इस कविता में रस ध्वनि है। रामै अरचत चुनि-चुनि है = ऐसा कोई महात्मा नहीं है जो भूषण-रहित और सदोष कविता बना कर ख्याति पा सके। इसीसे सेनापति दोनों काम करते हैं—राम की पूजा करते हैं और अपने काव्य में उनकी चर्चा करते हैं (राम-कथा-संबंधी काव्य बनाते हैं) तथा पदों को चुन-चुन कर कविता बनाते हैं। अपनी ख्याति के लिए अपने काव्य को सावधानी से बनाने के साथ-साथ राम की पूजा और चर्चा भी करते हैं क्योंकि कोई कार्य, चाहे जितनी सावधानी के साथ किया जाय, बिना भगवत्कृपा के उसमें सफलता नहीं मिल सकती।

८ शब्दार्थ:—दोषै = १ दोष को २ रात्रि को। पिंगल = १ छंदः

शास्त्र २ पीत वर्ण । बुध कवि = १ बुद्धिमान् कवि २ बुध तथा शुक्र नक्षत्र । उपकंठ = १ कंठ में २ समीप । कनरस = कर्णरस, गाना-वजाना अथवा अन्य किसी बात के सुनने का आनन्द । विशद = १ सुन्दर २ स्पष्ट, साफ़ । सविता = सूर्य ।

अर्थ :—मानों उस (कविता) की छवि उदय होते हुए सूर्य की छवि है; सेनापति कवि की कविता (इस प्रकार) शोभित हो रही है ।

कविता-पक्ष में—दोष को नहीं रखती, छंदःशास्त्र के लक्षणों को पुष्ट करती है (छंदोभंग दोष उसमें नहीं है); जो (कविता) बुद्धिमान् कवियों के कंठ (में) ही रहती है (विद्वान् कवि जिसे मुखस्थ कर लेते हैं) । पद देखने (पढ़ने) पर मन को हर्ष उत्पन्न करती है (चित्त प्रसन्न करती है), कर्णरस (से) जो (कविता) छंद (को) भूषित करती है उसे कौन छोड़े ? (अर्थात् सुन्दर कर्णरस से विभूषित छंद सभी को प्रिय हैं) । अक्षर सुन्दर हैं (कविता) ईश्वर ('उत्तै') के रस ('आप') के समान (रस) (उत्पन्न) करती है (ईश्वर के समान मधुर रस उत्पन्न करती है) जिससे संसार का अज्ञान दूर हो जाता है (काव्य का अध्ययन करने से लोग बुद्धिमान् हो जाते हैं) ।

सूर्य-पक्ष में—(उदय होते हुये सूर्य की छवि) रात्रि को नहीं रखती (रात्रि को विनष्ट कर देती है), पीत वर्ण के लक्षण को पुष्ट करती है (पीत वर्ण की रोशनी होती है); जो बुध तथा शुक्र के समीप भी रहती है (लगभग उषाकाल के समय ही बुध तथा शुक्र नक्षत्रों का उदय होता है) । देखने पर कमलों को ('पदमन कौ') हर्ष उत्पन्न करती है (सूर्योदय के समय कमल विकसित होते हैं), (उदय होते हुए सूर्य की छवि के) जिस रस को कोक नहीं तजता (उसी से) (सूर्य का) मंडल (छंद) शोभित होता है (जिस छवि को कोक बहुत प्यार करता है उसी से सूर्य मंडल शोभायमान है) । आकाश स्वच्छ है, ऊषा को अपने समान कर लेती है (उषा थोड़े समय बाद सूर्योदय के रूप में परिवर्तित हो जाती है); जिस से संसार का अंधकार ('जड़ता') भी दूर हो जाता है ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

विशेष :—'जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है' के स्थान पर 'जगत की जातैं जड़ताऊ बिनसत है' पाठ होने से इस पंक्ति का प्रवाह अधिक अच्छा हो जाता, किन्तु पोथियों में पहला पाठ होने के कारण वही रखा गया है ।

६ शब्दार्थ :—तुक = १ अंत्यानुप्रास २ घुंड़ी जो तीर के अग्र भाग पर लगी होती है । ज्यारी = साहस । पद्म = १ काव्य में वर्णित वस्तु २ तीर में लगा हुआ पर । गुण = १ काव्य के गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद) २ डोरी धनुष की प्रत्यंचा ।

अर्थ :—सेनापति कवि के कवित्त अत्यंत शोभा पाते हैं, मेरी समझ (से) (ये मानों) (किसी) पक्के धनुर्दारी के बाण हैं ।

कवित्त-पद्म में :—अंत्यानुप्रास सहित शुभ फल को धारण करते हैं; सीधे दूर तक जाते हैं (मर्म की बात कहते हैं अर्थात् दूर की कौड़ी लाते हैं), जो धीर (व्यक्तियों) के हृदय के साहस हैं (जिन्हें कंठस्थ करने से विद्वानों को बड़ा धैर्य रहता है) । (कवित्तों में) विभिन्न पद्म लगते हैं (श्लिष्ट कवित्तों के दोनों पद्मों का अर्थ निकलता चला जाता है), गुणों सहित शोभित हैं, कानों से मिलते ही वास्तविक कीर्ति प्रकाशित करने वाले हैं (अर्थात् सुनते ही उनका वास्तविक महत्व स्पष्ट हो जाता है) । जिसके हृदय में भली प्रकार चुभ जाते हैं (जो उनके अर्थ को समझ जाता है) वही (हर्ष से) शिर धुनता है; (वे) शीघ्र ही असर करते हैं (उनमें प्रसाद गुण विशेष रूप से है), स्त्री-पुरुष के (सभी के) मन को मोहित करते हैं ।

बाण-पद्म में :—तुकों के सहित उत्तम गाँसी ('फल') को धारण करते हैं; जो सीधे दूर तक जाते हैं (और) धीर व्यक्ति के हृदय के साहस हैं (धीर व्यक्ति ऐसे ही बाणों के रहने से हृदय की दृढ़ता रख पाते हैं) । (जिनमें) नाना प्रकार के पद्म लगते हैं (और चलाने के समय) प्रत्यंचा (के) साथ शोभित होते हैं; (जिनका) आदि भाग कानों के मूल (से) मिलते ही (अर्थात् कानों तक खींचकर चलाए जाने पर) कीर्ति (को) उज्ज्वल करने वाला है (बाण विपत्ती को नष्ट कर अपनी उज्ज्वल कीर्ति प्रकाशित करते हैं) । जिसके हृदय में भली प्रकार चुभ जाते हैं, वही (पीड़ा से) शिर पीटने लगता है; तुरन्त ही चुभ जाते हैं, स्त्री-पुरुष के (अर्थात् जिस किसी के) लगते हैं मन (को) मोहित कर देते हैं (वेहोश कर देते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

१० शब्दार्थ :—बानी = १ चमक २ सरस्वती । सुवचन = १ सुवर्ण २ अच्छा वर्ण । अरथ = १ धन, संपत्ति २ शब्द का अभिप्राय । अलंकार = १ आभूषण २ काव्यालंकार । चरन = १ कौड़ी २ छंद का चतुर्थांश । थाती =

धरोहर ।

अवतरण :—कवि, कदाचित्, किसी राजा से अपने काव्य को सुरक्षित रखने की प्रार्थना कर रहा है ।

अर्थ :—मैं (ने) धन की धरोहर के समान राज्य को कवित्तों की (धरोहर) सौंपी है ।

थाती-पद्म में :—जहाँ कान्ति युक्त सुवर्ण की मोहरें हैं, (जो) बहुत प्रकार की संपत्ति के समुदाय को रखती है । इस (थाती में) बहुत आभूषण हैं, (इनकी) संख्या कर लीजिए (अर्थात् इन्हें गिन लीजिए), ऐसी सुन्दर सामग्री को ऊपर (अर्थात् बाहर) मत रखिए (इसे किसी तहखाने आदि सुरक्षित स्थान में रखिए) । हे महाजन! (आज कल) चार कौड़ियों की (भी) चोरी हो जाती है; सेनापति (कहते हैं) इसी से (धरोहर रखने वाला) ब्याज (सूद) को छोड़ कर कहता है (कि) (आप इसकी) रक्षा कर लीजिए, जिसमें इसे कोई न चुराए (अर्थात् मैं सूद नहीं चाहता, केवल अपनी थाती को सुरक्षित रखना चाहता हूँ) ।

कवित्त-पद्म में :—जहाँ सरस्वती के साथ, सुन्दर वर्ण मुख में रहते हैं, (अर्थात् कविता में सुन्दर वर्ण हैं और सरस्वती का वास है) (कविता) अनेक प्रकार के अर्थ-समुदाय को धारण करती है । इस (काव्य) में अनेक प्रकार के अलंकार हैं; (उनकी) संख्या कर लीजिये (गिन लीजिए); ऐसे रसयुक्त साज को (सर्वदा) मति के ऊपर रखिए (अर्थात् इसे कभी न भूलिए) । हे श्रेष्ठ व्यक्ति ! (आज-कल) चार चरणों (तक) की चोरी हो जाती है (लोग दूसरे का पूरा कवित्त चुरा लेते हैं); इसी से सेनापति विलंब ('ब्याज') छोड़ कर कहते हैं (कि आप) (इसे) बचा लीजिये जिसमें (इसे) कोई चुरा न पाये ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

११ शब्दार्थ :—सीतै=१ शीतलता को २ सीता को । उज्जारी=१ चाँदनी २ स्वच्छता । मुधाई=१ अमृत सी २ सरलता । खर=१ तीक्ष्ण २ एक राक्षस जो रावण का भाई था । तेज=१ ताप २ प्रताप । कला=१ चंद्रमा का सोलहवाँ भाग २ कौतुक, लीला । करन=१ किरण २ हाथ । तारे=१ नक्षत्र २ उद्धार किए ।

अर्थ :—सेनापति (ने) राजा रामचंद्र तथा पूर्णिमा के उदय हुए चंद्र, दोनों की एकता वर्णित की है ।

चंद्र-पद्म में :—जिनकी कीर्ति (रूपी) चाँदनी देश-देश (में) (तथा)

विश्व (भर में) व्याप्त है, (जो) शीतलता को साथ लिए हुए (है) (अर्थात् जो शीतलता है), जिसमें केवल अमृत ही है (अन्य कोई वस्तु है ही नहीं) । देवता, मनुष्य (तथा) मुनि जिसके दर्शन को तरसते हैं; (जो) तीक्ष्ण ताप नहीं रखता, जिसमें कला का सौंदर्य है। जो (अपनी) किरणों के बल से रात्रि के कलंक (अन्धकार) को पराजित कर लेता है, (जिसके) नक्षत्र सेवक हैं, जिनकी गणना नहीं (हो) पाई है ।

राम-पक्ष में :—जिनकी कीर्ति (की) उज्ज्वलता देश-देश (में) (तथा) विश्व (भर में) व्याप्त है, (जो) सीता को साथ लिए हुए (हैं), जिनमें केवल सरलता है (अर्थात् जो नितांत सरल हैं) । देवता, मनुष्य (तथा) मुनि जिनके दर्शन को तरसते हैं; जो खर के तेज को नहीं रखते (अर्थात् उसके प्रताप को नष्ट कर देते हैं); (जिनमें) लीला का सौंदर्य है (अर्थात् जो अनेक अपूर्व लीलाएँ करते हैं) । (जो) निडर ('निसाक'—निःशंक) (होकर) बाहु-बल से लंका को जीत लेते हैं; (जिन्होंने) (अनेक) सेवकों को तार दिया है, जिनकी गणना नहीं हो सकी है ।

अलंकार :—श्लेष ।

विशेष :—‘कला’—चंद्रमा में सोलह कलाएँ मानी जाती हैं—अमृत, मानदा, पूषा, तुष्टि, रति, धृति, शशनी, चंद्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा और पूर्णामृता । “पुराणों में लिखा है कि चंद्रमा में अमृत रहता है जिसे देवता लोग पीते हैं । चंद्रमा शुक्ल पक्ष में कला-कला करके बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवीं कला पूर्ण हो जाती है । कृष्णपक्ष में उसके संचित अमृत को कला-कला करके देवतागण इस भाँति पी जाते हैं—” ।

१२ शब्दार्थ :—सारंग=१ चातक २ वंशी । घन रस=१ प्रचुर जल २ प्रचुर आनंद । मोर=१ मयूर २ मेरा । जीवन आधार=१ जल का आश्रय २ प्राणाधार । गरज करनहार=१ गरजने वाला २ आवश्यकता की पूर्ति करने वाला । संपै=१ विद्युत २ संपत्ति, ऐश्वर्य ।

अर्थ :—(हे) सखी ! काले मेघ (क्या) आए हैं मानों कृष्ण (आए) हैं ।

मेघ-पक्ष में :—(मेघ) प्रचुर जल बरसाते हैं (जिससे) चातक (अपनी) बोली सुनाता है (स्वाति-विंदु के लिए रट रहा है), मयूर (के) मन (को)

प्रसन्न करता है तथा अत्यंत सुन्दर है। जल (का) आश्रय (है), वृहत् गर्जन करने वाला (है), गरमी हरने वाला (है), मन (को) कामोदीत करता है। सेनापति (कहते हैं कि) जिसकी सुंदर (और) शीतल छाया (में) संसार तन (तथा) मन में बहुत विश्राम पाता है। वृष्टि करने वाले (‘बरसाऊ’) (मेघ) तेरे सामने विद्युत (को) साथ लिए हुए (आए हैं)।

कृष्ण-पक्ष में :—(कृष्ण) वंशी-ध्वनि सुनाते हैं। प्रचुर आनंद (की) वृष्टि करते हैं, मेरे मन(को) प्रसन्न करते हैं (और) अत्यंत सुन्दर हैं। प्राणाधार बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, (हृदय के) संताप (को) हरने वाले हैं (और) मन-कामना (को) देते हैं (पूर्ण करते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) जिनकी सुन्दर (और) शीतल छाया (में) संसार (के लोग) तन (तथा) मन (में) विश्राम पाते हैं। ऐश्वर्य (को) साथ लिए हुए (विभूति से युक्त), (तथा) (उस ऐश्वर्य की) वर्षा करने वाले (कृष्ण) तेरे सामने (आए हैं)।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष।

विशेष :—‘कवित्त-रत्नाकर’ की समस्त पंक्तियों में इस कवित्त की प्रथम पंक्ति एक सी ही मिलती है। किंतु इस पाठ के रहने से गति-भंग दोष आ जाता है। पंक्ति के आरंभ में ही दो विपम पदों (‘सारङ्ग’ तथा ‘मुनावै’) के बीच में सम पद रखवा हुआ है जिसके कारण लय बिगड़ गई है (“दोय विपमन बीच सम पद राखिए ना, राखे लय भङ्ग होत अति ही बिगारि कै”)। यदि उक्त पंक्ति का पाठ थोड़ा होता तो दोष का परिहार हो जाता—

“सारङ्ग मुनावै धुनि, रस बरसावै धन,
मन हरपावै मोर अति अभिराम है”।

१३ शब्दार्थ :—लाह=१ लाव २ कान्ति । नग=१ पेड़, २ रत्न, मणि । सिंगार हार=१ हरसिंगार नामक वृक्ष २ शृंगार की माला । छाया=१ साया २ दीप्ति, कान्ति । सोन जरद=१ सोन जुही, पीली जूही २ पीली नहीं है (‘सो न जरद’) । जुही की=१ स्वर्णयूथिका की २ हृदय की (‘जुही की’) । रौस=१ क्यारियों के बीच का मार्ग २ गति, चाल । रम्भा=केला । निवारी=जूही की जाति का एक फैलने वाला पौधा । सरस=१ रस-युक्त २ भावपूर्ण । बनमाली=१ बादल २ कृष्ण । रस=१ जल २ प्रेम । फूलभरी=१ पुष्पों से युक्त २ रजोधर्मा । मृदुलता=१ कोमल लता २ कोमलता ।

अर्थ :—नव-यौवना स्त्री कामदेव की वाटिका के समान जान पड़ती है।

वाटिका-पद्म में :—(वाटिका) लाख (के वृक्षों) सहित शोभित होती है, हरसिंगार वृक्ष (वहाँ पर) शोभित है; सोनजुही (तथा) जूही (के वृक्षों की) छाया अत्यन्त प्रिय है (अर्थात् भली मालूम होती है)। जिसकी रौस मनोहर है, आमों की बगिया (अभी) बाल्यावस्था में है (वृक्ष छोटे-छोटे हैं), (जिसका) रूप-माधुर्य अनुपम है, (तथा जिसमें) रंभा तथा निवारी (के वृक्ष) हैं। (जो) रसीले कुल की है (अर्थात् जिसमें उत्तम श्रेणी के पौधे लगाए गए हैं), सेनापति (कहते हैं कि) जिसे बादल प्रचुर जल (से) सींचते हैं, (और जिसे) मैंने पुष्पों से भरा पूरा देखा है। वन की जो समस्त शोभा है, (वह) कोमलता का भांडार है अथवा (वाटिका की) समस्त शोभा दर्शनीय है (और वह अर्थात् वाटिका) कोमल लताओं का भांडार है।

स्त्री-पद्म में :—(नव-यौवना) कान्ति-युक्त शोभित है, शृंगार (के) हार (में) रत्न शोभा पा रहे हैं; (जिसकी) दीप्ति में ज़र्दा नहीं है, (चेहरे पर पीलापन नहीं है), (और वह) हृदय की अत्यंत प्यारी (भली) है। जिसकी चाल मनमोहक है, (जो) बाल मनोहर बनी है, (जिसका) रूप-माधुर्य अनुपम है, उस पर रंभा (नामक अप्सरा) निछावर कर दी गई है (अर्थात् उसकी सुन्दरता के कारण रंभा भी तुच्छ जान पड़ती है)। (जो) भाव-पूर्ण (मुद्रा से) जा रही है, सेनापति (कहते हैं कि) जिसे (स्वयं) कृष्ण प्रचुर प्रेम द्वारा सींचते हैं (जिससे कृष्ण बहुत प्रेम करते हैं), (और जिसे) मैंने रजोधर्म युत देखा है। (उसकी) समस्त शोभा युवावस्था की है (और वह) कोमलता का भांडार है।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

१४ शब्दार्थ :—सुभ=१ कल्याणकारी २ उत्तम । मुहाग=१ सौभाग्य २ मुहागा । भाग=१ ललाट २ हिस्सा, अंश । रसाल=मनोहर । नाहै=१ पति को २ मालिक को । जर=धन । रती=१ काम-क्रीड़ा २ रत्नी । आगरी=१ चतुर २ निधि । बानी=१ बोली २ आभा या दमक । तोरा=टोटा, कमी । रूपौ=१ सौंदर्य २ चाँदी । नीधन=निर्धन । बाट=१ मार्ग २ बाँट ।

अर्थ :—यह श्रेष्ठ स्त्री सुवर्ण की मोहर के समान है।

स्त्री-पद्म में :—जिसका चेहरा मंगल-प्रद है (और जिसके) ललाट पर सौभाग्य (का चिह्न) रक्खा है; जब पति को दिखलाई पड़ती है तो पूर्णतया मनोहर लगती। धन के बल से चलती है (धन खर्च करने पर ही प्राप्त होती

है), रति में चतुर है, अनुपम वाणी है (और) जहाँ (धन का) टोटा है वहाँ बात नहीं करती। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें रूप भी है (और) (अनेक) गुण भी (हैं), जिसको देख कर निर्धन का हृदय तरसता है। (जो) मार्ग (के) काँटों पर भी पैर रख कर धनी (मनुष्यों) के यहाँ जाती है।

मोहर-पक्ष में :—जिसका उत्तम चेहरा मुहागा का (कुछ) अंश (देकर) सँवारा गया है, जब अपने स्वामी को दिखलाई पड़ती है तो पूर्णतया मनोहर लगती है। धन के बल से चलती है (धनी व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर सकते हैं), रत्तियों की (जो) निधि (है), जहाँ (धन का) टोटा है (वहाँ) बात नहीं करती (निर्धन व्यक्ति उसे नहीं खरीद सकते)। सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें सर्वदा कई गुना चाँदी भी है (एक तोले की मोहर से कई तोले चाँदी खरीदी जा सकती है), जिसे देख कर निर्धन का हृदय तरसता है। बाँट तथा काँटे ही में पैर रख कर (तौली जाकर) धनी (मनुष्यों) के यहाँ जाती है।

अलंकार :—उपमा, श्लेष।

१५ शब्दार्थ :—कौल = १ वादा, कथन २ अच्छी ज्ञात की। रंचक = छोटी। लोल = हिलती-डोलती, कंपायमान। नथ = १ नथनी २ तलवार की मूठ पर लगा हुआ छल्ला। अतोल = अनुपम, बेजोड़।

अर्थ :—स्त्री पक्ष में—(जो) वादे की सच्ची है (बात की धनी है), जिसका सौंदर्य दिन-दिन बढ़ता है; छोटी सी कंपायमान, सुन्दर नथनी भल-कती (चमकती) है। (स्त्री) मित्रता करके रहती है, साथ (में) बिजली के समान (चंचल भाव से) रमण करती है (‘संग रमै दामिनी सी’); निदान, जिसके त्रिछुड़ने पर कौन धैर्य धर सकता है? (अर्थात् इसके वियोग में कोई धैर्य नहीं धारण कर सकता)। यह नव-यौवना स्त्री, सचमुच, कामदेव की तलवार के समान (है), (किंतु) मन (में) एक अनुपम आश्चर्य होता है। सेनापति (कहते हैं कि जब कोई इसे अपने) बाहुपाश में रखता है, तो बार-बार जैसे जैसे (यह) मुड़ जाती है (नटती है अथवा निषेध-सूचक क्रियाएँ करती है) वैसे-वैसे (यह) अमोल कहलाती है (आश्चर्य इस बात में है कि यद्यपि यह सहज में आलिगन नहीं करने देती—इधर उधर मुड़कर भली प्रकार आलिगन करने में बाधा पहुँचाती है—फिर भी रसिक-जन इन चेष्टाओं पर मुग्ध होकर इसे बहुत ही उत्तम कहते हैं)।

तलवार-पक्ष में :—(जो) अच्छी ज्ञात की है (अर्थात् बहुत बढ़िया लोहे

की है), जिसकी कांति दिन-दिन बढ़ती जाती है; छोटा सा कंपायमान सुन्दर छल्ला चमकता है। (तलवार) मित्रता करके रहती है (मौके पर काम आती है), संग्राम (में) बिजली के समान (चलती है); निदान, जिसके बिछुड़ने पर कौन धैर्य धारण कर सकता है? (अर्थात् इसके न रहने पर वीरों का धैर्य छूट जाता है। (किंतु) मन (में) एक अनुपम आश्चर्य होता है; (युद्धस्थल में) सेना-नायक जब (इसे) हाथ (में) धारण करता है, तो (चलाते समय अथवा वार करते समय) बार-बार, जितनी ही (अधिक) मुड़ती है (लपती है) उतनी ही अमोल कही जाती है (प्रायः लचीली वस्तुओं की प्रशंसा नहीं होती, किंतु तलवार जितनी लपती है उतनी ही अच्छी समझी जाती है, यही आश्चर्य की बात है)।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा।

१६ शब्दार्थ :—नारि = १ स्त्री २ गरदन। चाहैं = १ चाहती हैं २ देखते हैं। बनी = १ वाटिका २ नव विवाहिता। तरुन = १ युवा (पुरुष) २ वृक्षों। हातौ (सं० हात) = पृथक्, अलग। लता = १ सुन्दरी स्त्री २ कोमल कांड या शाखा। मिहीं = महीं।

अर्थ :—प्यारी महीन मेहँदी (अर्थात् पिसी हुई मेहँदी) की बराबरी को पहुँचती है (अर्थात् पिसी मेहँदी के समान है)।

मेहँदी-पत्त में :—(सेनापति) कहते हैं कि जिसे बार-बार सब स्त्रियाँ चाहती हैं, नए वृक्षों के बीच, वाटिका ('बनी') (में) रहती है। (मेहँदी) सब्जी का (जो) नाता है, उसे अलग डालती है (अर्थात् तोड़ी जाने पर वाटिका की अन्य हरी-भरी चीजों से अपना संबंध तोड़ देती है) (और) हाथ (को) पाकर (उसे) लाल करती है; जो स्नेह से (बड़े यत्न से) पनपती ('सरसति') है। शरीर (के) साथ (के) लिये पिस जाती है; अनुराग ('रस') के स्वाभाविक रंग में (अर्थात् लाल रंग में) मिलकर रचती है (और) शोभित होती है। जिस (मेहँदी) में कोमल शाखा की सुंदरता भली बन पड़ी है (अर्थात् जिसकी कोमल शाखाएँ बड़ी सुन्दर हैं)।

स्त्री-पत्त में :—जिसे गरदन मोड़-मोड़ कर सब देखते हैं, नव विवाहिता वधू नवयुवक के हृदय (में) बसती है। जी के समस्त संबंधों (को) पृथक् कर देती है (अर्थात् अन्य समस्त संबंधियों से अपना नाता तोड़ देती है), लाल (प्रिय) (को) पाकर हाथ में करती है (अपने वश में करती है), (और) जो स्नेह

(युक्त) शोभित होती है। प्रिय (के) (श्रंग) (के) साथ के लिए विनम्र होकर रहती (है) स्वाभाविक काम-क्रीड़ा ('रस राग') में लित (होकर) अनुरक्त रहती (है) (और) शोभित होती है। जिसमें सुंदरी स्त्री (की सी) मुन्दरना वृक्ष बन पड़ी (है) (अर्थात् जो मुन्दरी स्त्रियों के समान है) ।

अलंकार :—श्लेष ।

१७ शब्दार्थः—घरी = १ घड़ी २ तह। तन मुख = १ स्वस्थ शरीर २ एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा ('तनमुख') । मिहीं = १ कोमल, मृदुल २ महीन, पतला। वरदार = १ श्रेष्ठ स्त्री ('वरदार') २ ऐंटन वाली, बटी हुई (बलदार) ।

अर्थः—विधाता (ने) कामिनी को कामदेव की पगड़ी के समान बनाया है ।

कामिनी-पक्ष में :—उत्तम घड़ी (में) प्राप्त होती है, शरीर सुखी (है) (अर्थात् स्वस्थ शरीर की है), सर्व-गुण संपन्न है; नवीन, अनुम, (और) मृदुल रूप का सौंदर्य है। अच्छी (स्त्रियों से) चुन कर आई (है) (अर्थात् अच्छी स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ है) कई युक्तियों से मिली है, प्रिय (स्त्री) ज्यों-ज्यों मन (को) अच्छी लगी, त्यों-त्यों सिर चढ़ा दी गई है (बहुत बढ़ा दी गई है) । श्रेष्ठ स्त्री पूर्ण (रूप से) गज-गामिनी (है) (और) अत्यंत मनोहर है; सेनापति (कहते हैं) कि बुद्धि (को) उपमा सूक्त गई (अर्थात् कामिनी पगड़ी के समान है यह उपमा मुझे सूक्त गई है) । (कामिनी) (अपने) प्रेम से (लोगों को) अच्छी प्रकार वश में कर लेती है (और) छुवि थिरकाए रहती है (सौंदर्य-युक्त रहती है) ।

पाग-पक्ष में :—सुन्दर तह मिलती (है) (पगड़ी भली प्रकार घड़ी की हुई है), तनमुख (कपड़े की है), सर्व गुणों से संपन्न है; नवीन अनुपम महीन रूप का सौंदर्य है (अर्थात् सुन्दर नए महीन कपड़े की बनी हुई पगड़ी है) । सुन्दर (पगड़ी) चुन कर आई है, कई युक्तियों से हस्तगत हुई है; (प्रिय पगड़ी) जैसे-जैसे मन को अच्छी लगी वैसे-वैसे शिर पर पहनी गई है (जितनी ही अच्छी लगी उतनी ही जी भर कर व्यवहार में लाई गई है) । पूरे गजों की (है) (अर्थात् १८ गज की है, लंबाई में किसी प्रकार छोटी नहीं है), बटी हुई अत्यन्त सुन्दर है। (ऐसी पगड़ी को) प्रीति से (रुचि से) अच्छी प्रकार (शिर पर) बाँधना चाहिए (और) छुवि थिरका कर रखनी चाहिए (पगड़ी को धारण कर अपने मुख को शोभान्वित करना चाहिए) ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

१८ शब्दार्थ :—सुधराई = १ प्रवीणता, निपुणता २ राग विशेष ।
ललित = १ सुन्दर २ राग विशेष । गौरी = २ गौर वर्ण की २ राग विशेष ।
सूहा = १ लाल रंग २ राग विशेष । गूजरी = पैरों में पहनने का एक आभूषण ।

अर्थ :—गूजरी की थोड़ी (सी) मनोहर भनकार में हम (ने) एक
बाला देखी (जो कि) राग-माला के समान शोभायमान है (गूजरी की भनकार
करती हुई बाला राग-माला-सी जान पड़ती है) ।

बाला-पक्ष में :—निपुणता से युक्त (है), रति-क्रीड़ा के उपयुक्त सुन्दर
अंग शोभायमान (हैं), (अपने) घर ही में रहती है । गौर वर्ण वाली, सुन्दर
(अभिराम) बनाई हुई रस-युक्त शोभित है, लाल रंग (के) स्पर्श (से) (अर्थात्
सिंदूर आदि के मस्तक पर धारण करने से) कल्याण की वृद्धि करती है ।
सेनापति (कहते हैं कि) जिसके सुन्दर स्वरूप (में) मन उलभ जाता है (जिसके
दर्शन से लोग मोहित हो जाते हैं); (जो अपनी) वीणा में मृदु-ध्वनि (रूपी)
अमृत बरसाती है ।

राग माला-पक्ष में :—साथ (में) सुधड़ाई लिए हुए है (तथा) (भगवान्)
के ध्यान के योग्य ललित (के) अंग (में) शोभायमान है (ललित राग को लिए
हुए हैं जो भगवान् का ध्यान करने में विशेष सहायक सिद्ध होता है); (राग-
माला) (अपने) घरों (में) ही रहती है (अपने निश्चित पदों अथवा सुरों से
बाहर नहीं जाती) । गौरी नव रसों से पूर्ण है । श्रेष्ठ रामकली शोभित होती
है (जो) सूहे के स्पर्श से कल्याण (सी) शोभित होती है (सूहे के स्वरों के
मिश्रण से कल्याण के समान जान पड़ती है) । सेनापति (कहते हैं कि) जिस
(राग-माला) के सुन्दर रूप में मन उलभ जाता है; (जो) वीणा में (बजाए
जाने पर) मृदु-ध्वनि (रूपी) सुधा (की) वृष्टि करती है ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

१९ शब्दार्थ :—चीर = वस्त्र । दसा = १ स्थिति २ अवस्था । मेन =
१ मोम २ कामदेव । निधान = १ आधार, आश्रय । तम = १ अंधकार २
त्रिगुणों (सत, रज, तम) में से एक । रोसन = १ प्रदीप्त २ प्रसिद्ध । पतंग = १
फर्तिगा । २ प्रेमी । तरुन = युवा, जवान । समादान = “वह आधार जिसमें
मोम की बत्ती लगा कर जलाते हैं” ।

अर्थ :—हे प्रिये ! तुम तो निदान गृह की समादान हो ।

शमादान-पद्म में :—(शमादान) अनेक प्रकार से, वस्त्रों द्वारा लपेटा (हुई), सर्वदा शोभा देती है; जिसके बीच का भाग तो मोम का आधार है (जिसके बीच में मोमवत्ती लगाई जाती है) । (जो) अन्धकार को नहीं रखती: सेनापति (कहते हैं कि जो) अत्यंत प्रदीप्त है, जिसके बिना (कुछ) नहीं दिखलाई पड़ता (है), अंधकार के कारण संसार व्याकुल हो जाता है । फतिंगे (आकर) (उस पर) गिरते हैं, (वह) उन युवकों के मन (को) मोहित करती है; (उसकी) ज्योति खराब नहीं ('रद न') होती, (फतिंगों की) प्रीति अंत (तक) (रहती) है । चिकनाहट का पूर्ण भांडार (है), (जिसके) शरीर की उज्ज्वलता प्रकाशमान हो रही है ।

स्त्री-पद्म में :—(जो) सर्वदा अनेक प्रकार के वस्त्रों से लपेटा (अर्थात् अनेक प्रकार के वस्त्र पहने हुए) शोभा देती है । जिसकी मध्यावस्था कामदेव का आश्रय है । (जो) तम को नहीं रखती (अर्थात् जो क्रोधी नहीं है), सेनापति (कहते हैं कि जो) अत्यंत प्रसिद्ध है; जिसके बिना (जिसके वियोग में) कुछ नहीं सूझता, संसार व्याकुल हो जाता है । प्रेमी (आकर) पड़ते हैं (उसके वश में हो जाते हैं), (वह) उन युवकों के मन (को) मोहित करती है; (उसके) दाँतों की व्युति होती है (और वह) अंत तक मुन्दर प्रीति (करती है) । स्नेह की वह पूरी निधि है (और उसके) शरीर की आभा दीपित (प्रकाशित) है ।

अलंकार :—अभेद रूपक, श्लेष ।

२० शब्दार्थ :—पुजवति = पूर्ण करती है । हौस = कामना, हौसला । उर्वशी = १ हृदय पर पहनने का एक आभूषण २ उर्वशी नामक अप्सरा ।

अर्थ :—(हे) लाल ! नव यौवना बाला लाई (हूँ); (वह) मानों फूल की माला है ।

बाला-पद्म में :—जिसे सब चाहते हैं, (जो) रति के भ्रम (में) रहती है ('भ्रम रहै') (अर्थात् उसे देखकर लोगों को रति का भ्रम हो जाता है; वे उसे रति समझने लगते हैं), (जो) भव्य है (और) उर्वशी का हौसला पूर्ण करती है (उर्वशी के टक्कर की है) । भली प्रकार बनी (हुई), रस-पूर्ण नव-यौवना है; सेनापति (कहते हैं कि) प्यारे कृष्ण की प्रेमिका है । सुगन्ध धारण करती है, अब संपूर्ण गुणों का भांडार (है), कलिकाल (में) ऐसी सब अंगों (से) कौन विकसित हुई है ? (अर्थात् कलिकाल में ऐसी सर्वाङ्गीण सुन्दरी कोई नहीं है) । जिस प्रकार (यह) प्रभाहीन न हो, (इसे) कंठ (से) लगाकर हृदय

(से) लगा लीजिये ।

माला-पद्म में:—समस्त भौरे जिसे प्रीति कर चाहते हैं, जो प्रसिद्ध उर्वशी के हौसले (को) पूर्ण करती है (उर्वशी से भी बढ़कर है) । भली प्रकार बनाई गई है, रसयुक्त (है), (जो) (अभी) नई बनी है ('नव जो बनी है'); सेनापति (कहते हैं कि जो) प्यारे कृष्ण को प्रिय है । सुगंध (को) धारण करती है, संपूर्ण डोरी (जिस) का निवास-स्थान है । ऐसी सर्वाङ्गीण प्रस्फुटित कलिका कौन प्राप्त करता है ? ('कौन कलिका लहै') । जिस प्रकार (यह) खूब न जाय, (इसे) कंठ (से) लाकर हृदय (पर) धारण कर लीजिये ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा, श्लेष ।

२१ शब्दार्थ :—भारे = १ भारी, बड़े २ भरे हुए । मित्र = १ नायक २ सूर्य । तपति = गरमी, जलन । तामरस = कमल ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (हे) प्रिये ! तू (ने) ही संसार की शोभा धारण की है (संसार की समस्त शोभा तुझ में ही देखी जाती है), तू पद्मिनी है (और) तेरा मुख कमल है ।

स्त्री-पद्म में :—तेरे केश बड़े हैं, नायक (ने) (उन्हें अपने) हाथों से सँवारा है; तुझ ही में अत्यंत सुन्दर प्रीति मिलती है । गरमी शांत करने को (तथा) हृदय शीतल करने को, तेरे शरीर का स्पर्श केले (के स्पर्श) से (भी) बढ़कर है । आज इस (स्त्री का) नाम प्रत्येक घर (तथा) (समस्त) नगर (में) लिया जाता है (इसकी रूप-चर्चा सर्वत्र हो रही है); जिसके हँसते ही चंद्रमा की छवि ('दरस') मलिन (हो जाती) है ।

कमल-पद्म में :—(कमल) केसर अथवा पराग (से) भरे हैं ('केसर हैं भारे'), सूर्य (ने) (अपनी) किरणों से तेरे (दलों को) सुधारा है (अर्थात् तुझे विकसित किया है) तुझ ही में अत्यंत मीठा मधु (रस) मिलता है । गरमी शांत करने को (तथा) हृदय शीतल करने को तेरे शरीर का स्पर्श (तेरा स्पर्श) केले (के स्पर्श) से (भी) बढ़कर है; आज प्रत्येक घर (में) (तू) 'पुरइन' (कमल) (के) नाम से प्रसिद्ध है । जिसके प्रस्फुटित होने से ही चंद्रमा की छवि मलिन (हो जाती) है (अर्थात् कमल के खिलते ही चन्द्रमा अस्त हो जाता है) ।

अलंकार :—रूपक, श्लेष ।

२२ अर्थ :—मैं (ने) भावती को (प्रियतमा को) इंद्रपुरी के समान शोभित देखा है ।

भावती-पद्म में :—जहाँ सरस (‘सुरस’) शोभा (‘भा’) का निवास है (जो) पृथ्वी का सार (है), जिसमें ऐरावत की गति भी पाई जाती है (अर्थात् जो गजगामिनी है) । देखने पर हृदय (में) बस गई (‘उर बसी’), इस प्रकार की दूसरी कैसे है ? (अर्थात् दूसरी स्त्रियाँ इस प्रकार की नहीं हैं) छवि में (‘युति में’) किसी की (सी) नहीं (‘काहू की न’) (है), (और) जो हृदय को हर लेती है । सेनापति (कहते हैं कि) सचमुच जिसकी शोभा कहते नहीं बनती; उसके बिना (अर्थात् प्रियतम के बिना) पल (भर) (भी) चैन (से) किसी प्रकार नहीं रहती (‘कल पल ता बिना न कैसे हू रहति है’) । कृष्ण जिसके जागरण कराने वाले होते हैं (कृष्ण के कारण जो रात को जगती है) ।

इन्द्रपुरी-पद्म में :—जहाँ देवताओं (की) सभा, सुंदर इन्द्र (‘सु वासव’ (और) सुधा का सार है; जिसमें ऐरावत की चाल भी मिलती है (जहाँ ऐरावत देखने को मिलता है) । देखने में उर्वशी के समान और (अर्थात् दूसरी स्त्री) कैसे है ? (तात्पर्य यह कि उर्वशी के टक्कर की दूसरी नहीं है; (मैंने) मेनका की भी छवि (‘युति’) देखी, जो हृदय को हर लेती है । सेनापति (कहते हैं) कि (जिस इन्द्राणी की शोभा कहते नहीं बनती (वह) (वहाँ है), (इन्द्रपुरी) कल्पतरु (से) रहित किसी प्रकार नहीं रहती (अर्थात् कल्पतरु वहाँ सर्वदा पाया जाता है) । जिसके विहारी (अर्थात् जिसमें रहने वाले) जागरण करने वाले होते हैं (जिस इन्द्रपुरी के निवासी देवता हैं जो कभी नहीं सोते) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

विशेष :—अंतिम पंक्ति में गति-भंग दोष है ।

२३ शब्दार्थ :—पासा = १ प्रेम-पाश २ हाथी दाँत अथवा हड्डी के बने हुए तीन चौपहल टुकड़े जिन्हें फेंक कर, चौसर खेलने में, गोटों की चाल निश्चित की जाती है । नरद = १ ध्वनि, नाद १ चौसर खेलने की गोटा । बिसाति = १ आधार २ चौपड़ खेलने का कपड़ा जिस पर खाने बने हुए होते हैं । मीठी = प्रिय । चौपर = चौपड़, एक प्रकार का खेल जो चार रंग की चार-चार गोटों द्वारा खेला जाता है ।

अर्थ :—प्रिय स्त्री निश्चित रूप से मानो सजाई हुई चौपड़ है ।

स्त्री-पद्म में :—सेनापति (कहते हैं कि) उसके प्रेम-पाश की सुन्दरता का वर्णन नहीं करते बनता (जिन युक्तियों से वह लोगों को अपने प्रेम में फँसा लेती है उनका वर्णन करना कठिन है), वह (मधुर) ध्वनि करती है (‘सो नरद

करि रहै’—अर्थात् मधुर वाणी से बोलती है), (उसने) सुन्दर दाँत धारण किए हैं (उसके दाँत अत्यंत सुन्दर हैं)। वह शोभा का आधार (है) (शोभा से परिपूर्ण है), अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण करती है, (उसका) मुख प्रवीण है (मुखसे उसकी प्रवीणता झलकती है), गिन-गिन (कर) क्रदम रखती है (गज-गामिनी है)। विधाता (ने) संसार (में) (उसे) कामदेव से बचने का उपाय (‘को उपाउ’) बनाया है (उसी की शरण में जाने से कामदेव से रक्षा होती है), जिस (स्त्री) के वश (में) संत (भी) पड़ जाते हैं (जिसे देख संत भी मोहित हो जाते हैं), (तथा) (वे) कहते हैं (कि हम) (इस पर) निछावर हैं (अपने को निछावर कर देते हैं) अथवा जिसके वश (में) पड़ने से संत (जन) कहते हैं (कि) वाला (का) त्याग कर दो (‘संत कह तजु बारी हैं’)। स्त्री विजय की निधि है (सत्र पर विजय प्राप्त करती है), (तथा) हार को धारण करती है।

चौपड़-पद्म में :—सेनापति (कहते हैं कि) पासे की सुन्दरता वर्णन करते नहीं बनती, गोटेँ हाथी दाँत द्वारा सुधारी गई हैं (सुधार कर बनाई गई हैं)। विसात शोभा वाली (है), अनेक प्रकार के वस्त्रों (को) धारण करती है (विसात के खाने नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों द्वारा बनाए गए हैं), (उसका) मुख चौकोर है (विसात कपड़े के चार चौकोर टुकड़ों द्वारा बनाई गई है), (जिसमें) गोटेँ गिन-गिन कर चली गई हैं। (गोटेँ को) पिटने से बचाकर कोई (व्यक्ति) यत्न करने पर (बाजी) को पाता है (जीत जाता है); संसार (में) जिसके वश (में) पड़ने से सज्जन (लोग) जुवाड़ी कहते हैं (चौपड़ खेलने वालों को लोग ‘जुवाड़ी’ की संज्ञा देते हैं)। (चौपड़) जीत की निधि है (खूब जिता देती है), (तथा) धन (की) हार को (भी) धारण करती है (कभी-कभी हरा भी देती है)।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

२४ शब्दार्थ :—धन = १ युवती, २ संपत्ति। तारे = १ आँख की पुतली २ ताटक।

अवतरण :—एक पद्म में नायिका अपने प्रियतम को अन्य स्त्रियों में अनुरक्त होने के कारण तथा उससे उदासीन रहने के कारण उलाहना दे रही है। दूसरे पद्म में कोई मुनार अपने स्वामी के पास ताटक बना कर लाया है और उसे इस बात का उलाहना देता है कि वह अन्य लोगों के प्रति अधिक कृपा-दृष्टि रखता है तथा उसकी अवहलना करता है।

नायिका-पद्म में :—(हे) प्रियतम ! तुम्हारी अनेक अमूल्य प्रियतमाएँ

हैं, इसी से मेरे कंचन-वर्ण (वाले) शरीर (को) अपमानित करते हो। (हम) (तुम्हारे) पैरों पड़ती हैं (किंतु तुम्हें हमारा कुछ भी ध्यान नहीं); प्रार्थना करने से भी जो स्त्रियाँ अधर नहीं देती हैं उन्हीं की ओर तुम आकृष्ट होते हो। मार्ग में टकटकी लगाकर (हे) प्रियतम ! (तुम्हें) अनेक प्रकार (से) तौला (तुम्हारी) प्रतीक्षा कर तुम्हारे वचनों की सत्यता परखी अर्थात् नियत समय पर न आने से तुम्हारे वादों तथा तुम्हारे प्रेम को समझ लिया); (तुम्हें) प्राण सहित (सब कुछ) अर्पण कर दिया, तिस पर भी तुम हठ करते हो (हमारे यहाँ नहीं आते)। नीच व्यक्तियों (को) पीछे छोड़ कर (उनका साथ छोड़ कर) हमने तुम्हें दूना मन दिया है (दुगने चाव से तुम्हें प्रेम किया है) किन्तु (हे) नाथ ! तुम यहाँ पैर तक नहीं रखते (एक बार भी नहीं आते हो)।

सुनार-पद्म में :—हे स्वामी ! तुम्हारे अगणित (तथा) अमूल्य संपत्ति है, इसी से तुम मेरे थोड़े से सोने (को) निरादृत करते हो। (हम) पैरों पड़ते हैं, प्रार्थना भी करते हैं (किंतु तुम हमारी एक बात भी नहीं सुनते हो), तुम को जो आधी रत्ती भी नहीं देते (हैं) उन्हीं की ओर तुम आकृष्ट होते हो (उन्हीं से प्रसन्न रहते हो)। मैंने ताटकों (को) बाँटों में मिला कर अनेक प्रकार से तौला (जिससे आप को संतोष हो जाय), (तथा) कुछ ज़िंदा तौला है, फिर भी तुम हठ करते हो (कि अभी कम तौला)। हम (ने) तुम्हें दूने मन से (यह आभूषण) दिया है (अर्थात् बड़े उत्साह पूर्वक तौल से कुछ अधिक दिया है); (फिर भी) नीच व्यक्तियों (को) पीछे रख कर (उन्हें सहारा देकर) हे नाथ ! तुम (अब भी) पावना निकालते हो (अब भी कहते हो कि हमें कुछ मिलना है)।

अलंकार :—श्लेष, मुद्रा (मन, अधमन तथा पाव आदि तौलों के नाम आ गये हैं)।

२५ सूत सेज रत.....करति है=१ (संयोगिनी-पद्म में) पुष्पशैल्या में अनुरक्त होकर रति-झीड़ा करती है। २ (वियोगिनी-पद्म में) रति-शैल्या सूती है, जो कामनाओं की केलि किया करती है। आगामी संयोग के सुखों की कल्पना में ही तल्लीन रहती है। जाके घरी है वरस=१ संयोगिनी पद्म में संयोग-सुख के कारण एक वर्ष भी घड़ी भर के बराबर है। २ (वियोगिनी-पद्म में) जिसके लिए घड़ी भर संयम भी एक वर्ष के समान है।

२६ शब्दार्थ—धन=१ स्त्री, २ संपत्ति। अनुकूल=१ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त रहता हो, २ वह व्यक्ति जो किसी बात

का पक्षपाती हो । बनिजु = १ स्त्री ('बनि जु') 'व्यापार की वस्तु । लल्लि पाइहै = १ देख पाओगे २ लक्ष्मी अथवा संपत्ति पाओगे । पतियार = विश्वास करने योग्य अथवा विश्वसनीय २ पतवार । वन = १ बनकर २ जल । बल्ली = १ लता २ मल्लाहों का बाँस । आसना = प्रेमिका ।

अर्थ :—स्त्री-पक्ष में—स्त्री मोती, मणि (तथा) माणिक्य द्वारा पूर्ण है (मोती, मणि आदि उसके आभूषणों में लगे हुए हैं), विशुद्ध (आभूषणों के) बोझ (से) भरी हुई अनुकूल (नायक) (के) मन (को) अच्छी लगेगी । स्त्री जिसके घर (में) रहेगी उसी का उत्तम भाग्य (समझना चाहिए), (सेनापति कहते हैं कि) जब (तुम) (उसे) देख पाओगे (तब) प्रसन्न होगे । तुम विश्वसनीय (हो) (तुम विश्वास-पात्र हो, उसे धोखा नहीं दोगे (अतएव) तुम्हीं उसके हाथ पकड़ो (उससे विवाह कर लो), सुन्दर लता बन, तुम्हारे हृदय ('तौ ही') (से) भली प्रकार लग कर ठहरेगी (लता के सदृश तुमसे चिपटी रहेगी), (वह) रस सिंधु (के) मध्य (में है) (अर्थात् अत्यंत रस-पूर्ण है) मानो सिंहल द्वीप से आई (है); (यही नहीं) तुम्हारी प्रेमिका भी (है), (इसके) गुण ग्रहण करो (इसकी विशेषताओं को देखो), (यह) (तुम्हारे) समीप आयेगी (तुम्हारी होकर रहेगी) ।

नौका-पक्ष में :—मोती, मणि, माणिक्य (आदि) संपत्ति द्वारा पूर्ण (है), बहुत बोझ (से) लदी है, अनुकूल (व्यक्ति) (के) मन (को) अच्छी लगेगी (जो धन की इच्छा करता है उसे रुचेगी) । जिसके घर (में) व्यापार की (वह) सामग्री रहेगी उसी का उत्तम भाग्य (समझना चाहिए), सेनापति (कहते कि) जब (उस) संपत्ति (को) पाओगे (तब) प्रसन्न होगे । उसके (उस नौका के) तुम पतवार (तथा) तुम्हीं कर्णधार (माँझी) (हो), तुम्हीं जल (में) सुन्दर (अथवा मजबूत) बल्ली लगाकर (उसे) ठहराओगे । तुम्हारी आशा (से) सिंधु (के) जल (के) बीच (है); वह मानों सिंहल (द्वीप) से आई है; नौका (की) रस्ती पकड़ो, (वह) किनारे आयेगी (तुम्हारे ही लिए वह नौका सिंहल द्वीप से आई है, उसकी डोरी पकड़ कर खींच लो तो किनारे आ जायगी) ।

अलंकार :—श्लेष ।

विशेष :—सिंहल द्वीप—भारतवर्ष के दक्षिण की ओर का एक द्वीप जो प्राचीन काल में व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध था । कहा जाता है कि यहाँ की स्त्रियाँ अत्यंत रूपवती होती थीं । कुछ लोग इसे रामायण वाली लंका

कहते हैं ।

२७ शब्दार्थ :—तूल=१ तुल्य २ रूई, कपास । चौर=चँवर, लकड़ी अथवा सोने चाँदी की डंडी में लगा हुआ सुरागाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो राजाओं अथवा देवताओं के सिर पर डुलाया जाता है ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि स्त्री) हरे (तथा) लाल वस्त्र (पहने हुए) देखी जाती है, वारी स्त्री ('वारी नारी') निदान बुढ़िया (की भाँति) (अर्थात् बुढ़िया के लक्षणों से युक्त) घर (में) बसती है ।

युवा-पक्ष में :—देखने में नवीन है, पर्वत (के आकार के) कुच सीने (पर) (शोभित) हो रहे हैं, (मैंने उसे अच्छी प्रकार) देखा, (तू भी) भली प्रकार (से) देख, (उसके) मुख में दाँत हैं । वर्षों में सोलह (की है), नवीन (है), एक (ही) निपुण है (अर्थात् बड़ी चतुर है); यौवन के मद (से) पूर्ण, मंद (गति) (से) ही चलती है । (उसके) केश मानों चँवर (के) समान (हैं), (जो) उसके बीच (उसके शिर पर) झलक रहे हैं, वस्त्र के (अन्दर के) (अर्थात् घूँघट के) कपोल, (तथा) मुख शोभा धारण करने वाले हैं ।

वृद्धा-पक्ष में :—देखने में झुकी है (कमर झुक गई है), कुच सीने (पर) गिर गए हैं (लटक गए हैं); (मैंने उसे अच्छी प्रकार) देखा, (तू भी) भली प्रकार देख ले, (उसके) मुख में (एक भी) दाँत नहीं हैं ('रद न है') । वर्षों में नवासी (से भी) एक (वर्ष) अधिक है (अर्थात् ८६ + १ = ८७ वर्ष की है); धीरे धीरे चलती (है), (उसमें) यौवन (का) मद नहीं है । केश मानों रूई के चँवर (के समान) (हैं) (जो) उसके बीच (अर्थात् शिर पर) झलक रहे हैं; कपोल पिचके हुए (हैं) (तथा) मुख शोभा धारण करने वाला नहीं है ('शोभा धर न बदन है') ।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा ।

२८ शब्दार्थ :—इन्द्रनील=नीलम । पदमराग=कमल के रंग वाले । तारे=२ नेत्र २ ताले । तारी=१ निद्रा । २ ताली । तासौं लगे तारे..... ३०=१ (यदि) उस (स्त्री) (से) नेत्र लग गए (तो) फिर किसी प्रकार नींद नहीं पड़ती; (जिन लोगों के) मन (उसके सौंदर्य) (में) लीन हो गए हैं वे अब ('ते + अब') किस प्रकार निकल सकते हैं ? (अर्थात् उसके प्रेम में फँस जाने से मन अपने वश में नहीं रहता है) २ उस (कोठरी में) ताले लगे हुए (हैं), फिर किसी प्रकार ताली नहीं लगती; (जो) रत्न ('मन') (उसमें) फँस गए (हैं)

भाग । उच्च कुच कुंभ मनु=ऊँचे कुच मानो दोनों कुंभ हैं । चाचरि=होली के अंवसर पर होने वाले खेल-तमाशे तथा शोर-गुल । चोप करि=उत्साह-पूर्वक । चपै=दवाने से । चरखी=एक प्रकार की आतशवाजी जो छूटने के समय खूब धूमती है । मस्त हाथियों को डराने के लिए यह प्रायः उनके सामने छुटाई जाती है । सेनापति धायौ.....चरखी छुटाई है=होली के अंवसर पर नायिका को अपनी ओर दौड़ता हुआ देख, उसे कामदेव का मस्त हाथी समझ कर, प्रियतम ने उत्साह-पूर्वक उसकी ओर पिचकारी चलाई । पिचकारी के चलने से ऐसा जान पड़ा मानो हाथी के सामने चरखी छुटाई गई हो ।

६१ आज=कांति । रख्यौ है.....भलकि कै=प्रिय का फेका हुआ गुलाल नायिका के वक्षस्थल पर ऐसे शोभित हो रहा है मानो वह नायिका का अनुराग है जो भलक रहा है (अनुराग का वर्ण लाल माना जाता है) ।

६२ मकर=माघ मास । पियरे जोउत पात=पत्ते पीले दिखलाई पड़ते हैं । माहौठि=महावट, जाड़े की ऋद्धि । सेनापति गुन यहै..... इ०=माघ मास की सर्दी सभी को दुखदाई है । उसमें गुण केवल यही है कि मानिनियों का मान भंग हो जाता है । प्रेमी तथा प्रेमिका का पारस्परिक संमिलन हो जाता है ।

चौथी तरंग

१ देखिए पहली तरंग कवित्त सं० १

२ कंज के समान सिद्ध-मानस-मधुप-निधि=कमल के समान सिद्ध पुरुषों के मनरूपी भौरे की निधि । निधान=आश्रय । सुरसरि-मकरंद के=गंगा रूपी मधु के । भाजन=पात्र । रिपिनारी ताप-हारी=अहल्या का संताप दूर करने वाले, उसे शाप-मुक्त करने वाले । भरन=पालन करने वाले । सन-कादि=ब्रह्मा के पुत्र । सरन=आश्रय ।

३ भव-खंडन=जन्म-मरण के दुःख को नष्ट कर देने वाले अर्थात् मुक्ति देने वाले ।

४ पंचवान=कामदेव । और ठौर भूँटौ वरनन एतौ सेनापति=लोग बहुधा कहा करते हैं कि राम करोड़ों स्त्रियों से अधिक युतिमान हैं, काम-धेनु से भी अधिक दानी हैं.....इत्यादि; किंतु इन बातों में कोई तथ्य नहीं

वर्षा ऋतु किस प्रकार व्यतीत (हो) सकती है । (कमान को) हाथ (में) लेने से पाँच आदमियों से लज्जा आती है (ऐसी वेढंगी कमान हाथ में लेकर पाँच भले आदमियों के सामने निकलने में लज्जा लगती है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष ।

विशेष :—कमान-पद्म में 'सेनापति लाल स्याम रंग.....इ०' का अर्थ स्पष्ट नहीं है । अन्य किसी समुचित अर्थ के अभाव में उपलिखित अर्थ दे दिया गया है यद्यपि वह बहुत संतोष-जनक नहीं है ।

३० शब्दार्थ :—सीरक = शीतल । रजाई = १ लिहाफ़ २ आशा । दुसाल = १ दुशाला २ दूना सालने वाले अर्थात् बहुत अधिक वेदना उत्पन्न करने वाले ।

अर्थ :—प्रिय स्त्री समस्त शीत दूर करने वाले वस्त्रों का समूह है; (फिर) हृदय के अन्दर स्थान देने से (अर्थात् हृदय में धारण करने से) शीत क्यों नहीं हरती ?

स्त्री वस्त्रों के समूह के रूप में :—समस्त रात्रि साथ सोने पर हृदय शीतल हो जाता है; थोड़ा सा आलिंगन करने से रजाई (का सा सुख) मिलता है । वही उरोज (अर्थात् उस स्त्री के उरोज) हृदय से लग कर दुशाला हो जाते हैं (उरोजों का स्पर्श दुशाले के समान सुख-दायक है), (स्त्री का) शरीर नवीन सुवर्ण से (भी) अधिक स्वच्छ (है) । जिस (स्त्री) के शरीर (को) थोड़ा सा छूने से तनमुख (कपड़े) (की) राशि (के) छूने का सा अनुभव होता है; सेनापति (कहते हैं कि) (जिसे) समीप लेने से (जिसके समीप रहने से) कामदेव स्थिर (रहता) है ('थिर मार है') (स्त्री के समीप रहने से काम-पीड़ा नहीं सताती है) ।

स्त्री-पद्म में :—(जिसके) साथ समस्त रात्रि सोने पर हृदय शीतल हो जाता है; (जिसे) आलिंगन (आदि) करने से (रति-क्रीड़ा की) आशा मिलती है । वही उरोज (अर्थात् उस स्त्री के उरोज) हृदय से लग कर बहुत अधिक पीड़ा उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं (उरोजों का स्पर्श काम पीड़ा को बहुत अधिक बढ़ा देता है); (उसका) शरीर नवीन सुवर्ण से (भी) अधिक स्वच्छ (है) । जिसके शरीर के थोड़ा सा छू जाने से शरीर (को) सुख (की) राशि (अर्थात् अत्यंत सुख) (का) (अनुभव होता है); सेनापति (कहते हैं कि) (जिसे) समीप रखने से स्थिरता ('थिरमा') रहती है (अर्थात् चित्त सावधान

रहता है) ।

अलंकार :—रूपक, श्लेष ।

विशेष :—(१) इस कवित्त में रूपक अलंकार को इस ढंग से श्लेष के साथ मिला दिया गया है कि दोनों पदों को निर्धारित करना कठिन हो जाता है । कदाचित् उपलब्धित दोनों पद ही कवि को अभीष्ट रहे होंगे ।

(२) कवि ने 'थिरता' के स्थान पर 'थिरमा' शब्द गढ़ लिया है क्योंकि दूसरे पद में वह पद-भंग-श्लेष द्वारा 'थिर मार है' का अर्थ निकालना चाहता है ।

३१ शब्दार्थ :—अरुन = १ लाल २ सूर्य । अधर = १ ओठ २ आकाश, अंतरिक्ष । जुव जन = १ युवा पुरुष २ सर्वदा युवा रहने वाले देवता । कवि = १ पंडित २ शुक्राचार्य । मंद गति = शनिश्चर, जिसकी चाल अन्य नक्षत्रों से बहुत धीमी मानी गई है । तम = राहु जो श्याम वर्ण का माना जाता है । अंबर = १ वस्त्र २ आकाश । राशि = १ ढेरी, समूह २ सूर्य-पथ के मंडल के एक भाग को राशि कहते हैं । राशियाँ बारह मानी जाती हैं । नवग्रह = फलित ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह माने गये हैं ।

अर्थ :—मेरी समझ में वाला नवग्रहों की माला है ।

बाला-पद में :—लाल ओठ शोभित हो रहे हैं, समस्त मुख चन्द्रमा (सा) (शोभित हो रहा है) । उस स्त्री का दर्शन मंगल-प्रद (है), (बुद्धि) बुद्धि-मानों (की) बुद्धि से (भी) बढ़ी है । सेनापति (कहते हैं कि) जिससे समस्त युवा पुरुष (उसके) सेवक ('जीवक') हैं (उक्त गुणों के कारण युवा पुरुष उसके दास बनने को तैयार हैं); (वह) पंडिता (है), अत्यंत मंद गति (से) (गज-गामिनी सी) मनोहर (चाल) चलती है । (उसके) केश अंधकार (के वर्ण वाले) हैं (अर्थात् काले हैं), (वह) कामदेव की विजय (के) भांडार (की) पताका ('केतु') है (अर्थात् उसी के द्वारा कामदेव ने सारे संसार पर विजय प्राप्त की है), जिस (स्त्री) की ज्योति के समूह (से) संसार जगमगा रहा है । वस्त्रों (में) शोभित होती है (और) सुख (के) समूहों का भोग कराती है (अर्थात् लोगों को अनेक सुखों का उपभोग कराती है) ।

नवग्रह-पद में :—सूर्य आकाश (में) शोभित है, कलाओं सहित चन्द्रमा

(का) मंडल (भी) (शोभा पा रहा है), मंगल दर्शनीय (हैं), बुद्धि द्वारा बुध भव्य ('विसाल') है (अपनी बुद्धिमत्ता के कारण बुध बहुत मनोहर लगता है) । सेनापति (कहते हैं कि) जिसे सब देवता लोग बृहस्पति कहते हैं ('जीव कहें') (वह) विराजमान है ; शुक्र (भी है) , अत्यंत मंद गति (शनि) मनोहर (गति से) चल रहा है । केश (के रंग वाला) राहु है (राहु श्याम वर्ण का है) केतु कामनाओं की विजय का भांडार है (पाप-ग्रह होने के कारण केतु लोगों की इच्छाओं को पूर्ण नहीं होने देता, उसके पास ऐसे कष्ट कर फल देने की सामग्री है कि लोगों की मनोकामना कभी पूर्ण ही नहीं होने पाती, (वह सब पर विजय प्राप्त करता है), जिन (नवग्रहों) (की) ज्योति के समूह (द्वारा) संसार जगमगाता है (ऐसी नवग्रहों की माला) आकाश (में) शोभित होनी है (और) राशियों के सुखों (तथा दुःखों) का उपभोग करानी है ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा, श्लेष ।

३२ अवतरण:—एक पत्र में कोई स्त्री अपनी सहचरी के कपोल के काले तिल का वर्णन कर रही है, दूसरे पत्र में कोई व्यक्ति काली तिल्ली का वर्णन कर रहा है ।

अर्थ:—कपोल के तिल के पत्र में :—कमल (रूपी) मुख के साथ ही जिसका जन्म (हुआ है), अंजन (का) सुन्दर रंग जिसकी समता (को) नहीं पहुँचता है । सेनापति (कहते हैं कि यह तिल) जब, जिसे, थोड़ा सा (भी) दिखलाई पड़ता है (तो उसे मुग्ध कर देता है), (इसे देख कर) अत्यंत विरक्त मुनियों का हृदय भी प्रेम-युक्त हो जाता है । (तेरे कपोल का तिल तेरे) रूप को बढ़ाता है, समस्त रसिक जनों को अच्छा लगता है, (लोगों के हृदय में) मधुर प्रेम उत्पन्न करता है (लोग उससे प्रेम करने लगते हैं), किंतु (वह) स्वयं नष्ट नहीं होता है (तिल का सौंदर्य एक सा ही बना रहता है)। (हे) सखी ! कृष्ण ('बनमाली') (ने) (अपना) मन (तुम्हारे) फूल (के से मुख) में बसाया है (अर्थात् तुम्हारे कमल-मुख में उसका चित्त रम गया है), तेरे कपोल (पर) (जो) बहुमूल्य तिल है वह शोभा पा रहा है ।

तिल्ली-पत्र में :—मुख (रूपी) कमल के साथ ही जिसका जन्म हुआ है (कमलों के खिलने के साथ ही तिल के पौधे ने भी जन्म लिया है), अंजन का सुन्दर रंग (भी) जिसकी समता (को) नहीं पहुँचता (अर्थात् तिल अंजन से भी अधिक काले वर्ण का है) । (तिल का पुष्प) अत्यंत विरक्त मुनियों (के)

हृदय को भी सरस कर देता है; सेनापति (कहते हैं कि यह) जब, जिसे, थोड़ा सा दिखलाई पड़ता है (तो उसे मुग्ध कर देता है) । (पेरे जाने पर अथवा तेल बनाए जाने पर तिल) रूप को बढ़ाता है, समस्त रसिक जनों को अच्छा लगता है (और) मीठा तेल उत्पन्न करता है किंतु स्वयं विनष्ट नहीं होता है (खली के रूप में वह फिर दूसरे काम में आता है) । (हे) सखी ! बन (के) माली (ने) (इस तिल को) मनो फूलों में बसाया है ।

अलंकार :—श्लेष, रूपक, प्रतीप (‘वदन सरोरुह’—प्रसिद्ध उपमान कमल को उपमेय कहा गया है तथा उपमेय मुख को उपमान का स्थान दिया गया है) ।

विशेष :—‘तिल’—तिल्ली आषाढ मास में बोई जाती है (जब कमल खिलते हैं) और क्वार में काटी जाती है । इसकी एक दूसरी फसल भी होती है जो चैत में काटी जाती है । इसका तेल मीठा होता है । इसे फूलों में बसा कर अनेक प्रकार के सुगंधित तेल बनाए जाते हैं । किसी बड़े हौज में एक तह तिल्ली की बिछा दी जाती है तथा उसके ऊपर एक तह फूलों की; इसी प्रकार हौज भर दिया जाता है । फूलों के सड़ कर सूख जाने पर वे फेंक दिए जाते हैं और तिल्ली को पेर कर तेल निकाल लिया जाता है ।

३३ शब्दार्थ :—बीच = १ तरंग, लहर २ मध्य भाग । रंग = १ युवावस्था २ आनंद-उत्सव । काम = १ कामदेव २ कारीगरी, रचना, बनावट । भुव = १ भौह २ पृथ्वी । अंबर = १ वस्त्र २ आकाश । चटमट = चपल । शुद्ध = १ शुद्ध २ सीधा । चितै = १ देख कर २ चित्त को । ललन = प्रिय नायक ।

अर्थ :—प्रिये ! नायक (के) सामने तेरे नेत्र नट (के) समान नाचते हैं ।

नेत्र-पद्म में :—कानों को छूते हैं (अर्थात् बहुत बड़े हैं) ; कुंडल के (समीप) तरंगवत् जाते हैं ; युवावस्था में कामदेव के योद्धा के समान क्रीड़ा करते हैं । चंचल भ्रू सहित वस्त्र (के) अन्दर (अर्थात् घूँघट में) खेलते हैं ; देखते ही (प्रेम-पाश में) बाँध लेते हैं (नेत्रों की चितवन चपल रहती है) । शुद्ध, शुण्वान् ऊँचे वंश (वाले व्यक्ति को) देख कर शीघ्र ही (जा) लगते हैं (उससे प्रीति जोड़ते हैं), रति (के समय) हावभाव (‘कला’) करते हैं (और) देखकर (मन को) अत्यंत मुग्ध (कर देते हैं) । सेनापति (कहते हैं कि) (नेत्रों ने) नायक (‘प्रभु’) को (अपने) संकेतों के वश (में) कर लिया (है) ।

नट-पक्ष में :—हाथ (से) नहीं छूते (बिना हाथ से छूए ही), कुंडल के मध्य भाग (से) होकर (निकल) जाते हैं, आनंद-उत्सव के समय खेल-तमाशा करते हैं; (अपनी) कारीगरी (में) योद्धाओं के समान (हैं) (अपनी कला में योद्धाओं के समान कठिन से कठिन काम कर दिखलाते हैं) । पृथ्वी (तथा) आकाश में चंचलता से खेलते हैं, देखते ही नजर बाँध देते हैं (जादू आदि के प्रभाव से कुछ का कुछ कर दिखाते हैं) (और) (बहुत) फुर्तीले रहते हैं । रस्सी सहित (अर्थात् डोरियों से बँधा हुआ) ऊँचा (तथा) सीधा बाँस देख, दौड़ कर (उस पर) चढ़ जाते हैं (और) कलावाजी करके चित्त को बिलकुल मोहित करते हैं । सेनापति (कहते हैं कि) (इन्होंने) श्रेष्ठ स्वामी (को) भली प्रकार (‘नीके’) वश में किया (है) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

विशेष :—‘कुंडल’—(१) कान का एक आभूषण विशेष (२) रस्सी का वह गोल फंदा जिसे नट लोग शून्य में बाँसों की सहायता से बाँध कर तैयार करते हैं । वे उस फंदे के भीतर से कलावाजी खाते हुए निकलते हैं और अनेक प्रकार के खेल-तमाशे दिखलाते हैं ।

३४ भूलि कै भवन भरतार जनि रहियँ :—प्रियतम के आने पर नायिका अपने श्लिष्ट-कथन द्वारा उलाहना भी देती है और साथ ही उसे रात्रि में ठहरने को भी कहती है—१ प्रियतम ! (आप) भूल कर (भी) (मेरे) घर (में) मत रहिए । २ प्रियतम ! (‘भरता’) भूल कर (ही) (मेरे) घर (एक) रात रहिए (‘रजनि रहियै’) ।

३५ शब्दार्थ :—केसौ = १ कृष्ण २ केश । पति = १ प्रतिष्ठा २ स्वामी । करन = १ कर्ण २ कान । वीर = १ बहादुर २ “एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कान में पहनती हैं । यह गोल चक्राकार होता है और इसका ऊपरी भाग दलुआँ और उठा हुआ होता है तथा इसके दूसरी ओर खूँटी होती है जो कान के छेद में डाल कर पहनी जाती है । इसमें ढाई तीन अँगुल लंबी कंगनीदार पूँछ सी निकली रहती है जिसमें प्रायः स्त्रियाँ रेशम आदि का झुन्डा लगाती हैं । यह झुन्डा पहनते समय सामने कान की ओर रहता है” । संतनु = १ चंद्रवंशी राजा शांतनु २ संत लोग । तनै = १ पुत्र को २ शरीर को । अनी = सेना ।

अर्थ :—(यह) महाभारत की सेना (है) या बनी-ठनी सुन्दर स्त्री है ।

महाभारत की सेना के पक्ष में :—जहाँ (पर) अर्जुन की मर्यादा (की रक्षा के) लिए अत्यंत बड़े कृष्ण (हैं), अत्यंत चाल (वाली) (अर्थात् अत्यंत तेज) घोड़ों की (पंक्ति) भलीभाँति (से) सुधारी (हुई) है। मणि (के) समान वीर कर्ण दुर्योधन के साथ (हैं), शांतनु (के) पुत्र (भीष्म) (को) देखकर (लोगों ने) सुध-बुध भुला दी है (भीष्म को देख कर लोग घबड़ा से गए हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) नकुल का शील सर्वदा शोभित होता है (भला लगता है), देखिए भीमसेन (के) शरीर (की) शोभा महान् है। जिस (महाभारत की सेना) के (गुण) ‘आदि’ (तथा) ‘सभा’, पर्व (‘आदि सभा परव’) कहते हैं वह तैयार हो रही है (‘सो सपरति’)।

स्त्री-पक्ष में :—जहाँ केश भी अत्यंत बड़े (हैं), पति (के) कार्य (में) अड़ नहीं है (‘अर जु न पति-काज’) (अर्थात् स्त्री पति का काम करने में अड़ती नहीं, किसी प्रकार का हठ नहीं करती, तुरन्त कर डालती है); (उसकी चाल बहुत अच्छी है) (‘गति अति भली’), (जो) विधाता (रूपी) बाजीगर की बनाई हुई है। कानों (के) वीर मणि-युक्त (हैं) (‘करन वीर मनी सौ’)। (तथा) जो स्त्री की बाली (‘दुर’) के साथ (हैं) (‘जो धन के दुर संग’), संतों (ने) शरीर को देखकर (ब्रह्म का) ध्यान भी (‘सुरत्यों’) भुला दिया है (स्त्री के शरीर को देखकर संतों का ध्यान भंग हो गया है)। सर्वदा अनुकूल (प्रसन्न) शोभित होती है (‘सोहत सदानुकूल’); सेनापति (कहते हैं कि उसके सामने) शील क्या है? (अर्थात् बड़ी शीलवान् है), (उसके) बड़े नेत्रों (‘भीम सैन’) (को) देखिए, शरीर (की) कांति महान् है। जिस (स्त्री) के कहने आदि से सभा पराधीन हो जाती है (अर्थात् जिसकी बातचीत आदि सुन कर लोग अपने वश में नहीं रहते, उस पर मुग्ध हो जाते हैं)।

अलंकार :—संदेह, श्लेष, रूपक, उपमा।

विशेष :—१ ‘दुर’—यह शब्द फारसी का है। यहाँ पर कान की बाली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण :—

‘कान्ह कुँवर को कनछेदनों है हाथ सुहारी भेली गुर की।

कंचन के द्वै दुर मँगाय लिए, कहै कहा छेदन आतुर की।’

(सूर)

२ ‘सपरना’ क्रिया के प्रायः दो अर्थ पाए जाते हैं। पश्चिमी प्रदेशों में यह स्नान करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। पूर्वी प्रदेशों में इसका प्रयोग तैयार

होने के अर्थ में होता है। यहाँ पर यह पूर्वी अर्थ में प्रयुक्त हुई है।

३६ शब्दार्थ :—पति = १ स्वामी २ प्रतिष्ठा, मर्यादा । अरगजा = एक सुगंधित लेप जो कपूर, केशर और चंदन आदि को मिलाकर बनाया जाता है। नासि कै = १ नष्ट करके २ नाक को।

अर्थ :—मान पक्ष में—(मान के कारण नायिका ने) लाल रंग में ही रंगे हुए वस्त्र धारण कर रखे हैं; अवगुण (रूपी) ग्रन्थि पड़ी (हुई) है जिससे (मान) ठहरता है। (अर्थात् नायक में किसी दुर्गुण के होने के कारण ही नायिका मान किए हुए है)। यौवन के प्रेम (के) साथ भली प्रकार मिलाकर रक्खा है (फिर भी मान शान्त नहीं होता—रति की प्रबल इच्छा उत्पन्न करनेवाली युवावस्था के होते हुए भी नायिका ने मान कर रक्खा है)। (मान) कामाग्नि से भी जल कर शान्ति नहीं होती है। सेनापति (कहते हैं कि) जिस (मान के प्रभाव से पति अलग है) (‘पति है अरग’); इससे (अर्थात् नायक-नायिका को पृथक् कर देने वाले गुण के कारण) संभोग (के) सुख को नष्ट कर अच्छा लगता है (मान पहले नायक नायिका को पृथक् कर रति-सुख को नष्ट कर देता है किंतु बाद में उसका फल बहुत ही मधुर होता है—कुछ काल तक वियोगावस्था में रहने के कारण नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम और भी बढ़ जाता है)। (मान) सुख का भांडार (है), संसार की त्रिविध वायु (शीतल, मंद, सुगंध) (के) मिलने से (संपर्क से) मान (ऐसे उड़ जाता है) जैसे कपूर उड़ जाता है।

कपूर-पक्ष में :—लाल रंग (से) रंगे हुए वस्त्र में ही रक्खा गया (है)। अब रस्सी (‘अब गुन’) (की) गाँठ पड़ी हुई है जिससे (वह) ठहरता है (कपूर को लाल कपड़े में रख कर सुतली से गाँठ दे दी गई है जिससे वह उड़ नहीं गया है)। जो (कपूर) वन की घुँघची (‘जो वन की रती’) से भलीभाँति मिलाकर रक्खा गया है; (जो) कामाग्नि से जलकर बुझता नहीं है (अर्थात् विरहिणियों के शरीर पर लेप किए जाने पर भी जलकर भस्म नहीं होता—वैसे ही बना रहता है)। सेनापति (कहते हैं कि) हे कपूर! तू (‘तैं’) अरगजा की प्रतिष्ठा (तथा) गौरव (है) (बिना कपूर के मिलाए अरगजा की बड़ाई नहीं होती है); इससे (तुझसे) (लोगों को) अत्यंत प्रेम (तथा) सुख (है), (क्योंकि तू) नाक को अच्छा लगता है (तेरी गंध सूँघने में अच्छी है)। (तू) सुख का भांडार (है), तीनों लोकों (स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक तथा पाताल) (की) वायु के मिलने

से (कपूर उड़ जाता है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, विशेषोक्ति (कपूर कामाग्नि के संसर्ग से भी जल कर भस्म नहीं होता, (“जहाँ परिपूरन हेतु ते प्रगट होत नहिँ काज”)) ।

विशेष :—कर्पूर-संरक्षण-विधि में लिखा हुआ है कि कपूर को लाल रंग से विशेष प्रेम होता है । लाल रंग के वस्त्र अथवा लाल रंग की धुँघन्नी में रखने से वह उड़ता नहीं है । लाल रंग के वस्त्र में रख कर डोरे अथवा सुतली आदि से गाँठ दे देने पर तो वह और भी सुरक्षित हो जाता है । गाँठ के कारण हवा से उसका संसर्ग बहुत कम हो जाता है ।

३७ शब्दार्थ :—अपसर = १ अपसरा २ वाष्प-कण । लौंग = लौंग की आकार का एक आभूषण, इसे न्त्रियाँ कान अथवा नाक में पहनती हैं । यहाँ पर कवि का अभिप्राय कान की लौंग से जान पड़ता है । लुगई = स्त्री ।

अर्थ :—स्त्री (को) लौंग सा कर, वाणी (के) व्याज (से) वर्णित किया है, जिन्होंने (इस) भेद से (इस भेद को समझ कर) विचार किया है (उन्होंने) उसके (उस वर्णन के) दो प्रकार (से) (अर्थ) लगाए हैं ।

स्त्री-पद्म में :—जो अपसरा की ही अनुपम शोभा धारण (किए) रहती है (तथा) (जो) सुन्दर सौन्दर्य वाली चतुर स्त्री (‘सु नारी’) है । सेनापति (कहते हैं कि) उसके हृदय (में) एक प्रियतम ही रहते हैं (दूसरे के लिए वहाँ स्थान नहीं है) ; संसार (में) कामदेव (‘मैन’) की मूर्ति (है) (अर्थात् कामदेव के उपासक उसी की सेवा करते हैं), (उसने) सुन्दर रत्न धारण किया है (‘रत्न सुधारी है’) । उसे देखने से (लोगों) की प्रीति बढ़ गई है (उसके दर्शन पाने से लोग उस पर और आसक्त हो गए हैं) (तथा) दूसरी बालाओं (के) सौंदर्य (को) (उसने) जला दिया है (श्रीहीन कर दिया है); (वह) सर्वदा शुभ आभूषणों को धारण करती है, (उसके) शरीर (की) कान्ति महान् है ।

लौंग-पद्म में :—जो वाष्प कण की ही अनुपम शोभा (को) धारण (किए रहती है) (लौंग पर जड़े हुए रत्न वाष्प-कण के समान जान पड़ते हैं), सुन्दर सौंदर्य लिए हुए (है), चतुर सुनारी है (अर्थात् उसके बनाने में सुनार ने बड़ी बुद्धिमानी से काम किया है) । सेनापति कहते हैं कि (उसके रत्न) (‘मन’) बाला में ही रहते हैं (लौंग के चारों ओर जड़े हुए रत्न कान में पहनी जाने वाली बाली से त्रिलकुल मिले हुए रहते हैं); (ऐसी) एक मूर्ति संसार में नहीं (है) (लौंग की टक्कर का दूसरा कोई आभूषण नहीं है), (वह) रत्नों (द्वारा)

सुधारी (गई) है । (उसे) देखने से (नायिका पर) अनुराग बढ़ गया (है) तथा केशों का सौंदर्य क्षीण हो गया (है) (अर्थात् लौंग के रत्नों की चमक के सामने केशों का सौंदर्य फीका पड़ गया है); (सौभाग्यवती स्त्री उसे) शुभ अभूषणों में रखती है (समझती है), (उसके अंग की कान्ति महान् है) (बड़ी सुन्दर लौंग है) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

३८ शब्दार्थ :—गौरी = १ पार्वती २ उज्ज्वल । मदन कौं = १ काम देव को २ मंदो को । रमै = १ रमता है २ रमा अथवा लक्ष्मी को । नगन = १ नग्न २ पर्वत । जानि = ज्ञानी । उमाधव = उमा के पति शिव ।

अर्थ :—शिव-पक्ष में—जिसका नंदी (गण) सर्वदा हाथ (में) आसा (लिए हुए) विराजमान है (शिव की सेवा के लिए उनके गण सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं), (जिसके) शरीर का वर्ण कर्पूर से भी अच्छा है । (जो) शयन (का) सुख रखता है (योग-निद्रा में सोया करता है), जिसके मस्तक (जाके सेखर) (में) सुधा (की) द्युति रहती है (जिसके मस्तक पर चन्द्रमा शोभित है), जिसके (हृदय में पार्वती की प्रीति) (है), जो कामदेव को नष्ट करने वाला है, समस्त भूतों के मध्य निवास करता है, (और उन्हीं में) रमण करता है, हृदय (पर) साँपों (को) धारण करता है, नगनों का वेष धारण करता है (दिगंबर वेष में रहता है) । ज्ञानी बिना कहे हुए ही (बिना बताए ही) जान लेते (हैं) (उससे परिचित हैं), सेनापति मान कर (समझ-बूझ कर), मन के भेद को छोड़कर (भेद-बुद्धि परित्याग कर) बहुधा शिव को कहते हैं (शैवों तथा वैष्णवों के भगड़े को छोड़ कर सेनापति शिव का गुण-गान करते हैं) ।

विष्णु-पक्ष में :—(जो) 'सदानंदी' (है) (जो सर्वदा आनंदमय है), जिसका आशा-कर (लोगों की रक्षा करने वाला वरद-हस्त) विराज मान है, (जिसके) शरीर का वर्ण कर्पूर से भी अच्छा है । जो शयन-सुख रखता है (क्षीरसागर में शयन किया करता है), जिसके (ऊपर) सुधा द्युति (वाला) (अर्थात् श्वेत वर्ण का) शेष रहता है (जिसके ऊपर शेष नाग अपना फन किए रहता है), जिसकी शुभ कीर्ति ('कीरति') (है), जो मंदों को नष्ट करनेवाला है । जो समस्त भूतों (चराचर) के अन्दर वास करता है (सब में व्याप्त है), रमा (लक्ष्मी) (को) हृदय (में) धारण करता है, (जिसका) भोगी वेष है (जिसका वेष विलासियों का सा है अर्थात् जो शिव आदि की भाँति दिगंबर

नहीं रहता है, सांसारिकों की भाँति वस्त्र आदि पहने रहता है), (जो) पर्वतों (को) धारण करता है (कृष्णावतार में जिसने गोवर्द्धन को उठाकर ब्रजवासियों को इंद्र के कोप से बचाया था) । ज्ञानी बिना कहे ही जान (लेते) हैं (उन्हें बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती), सेनापति मान कर (समझ-बूझ कर), मन (की) भेद-बुद्धि को छोड़ कर अक्सर ('बहुधाउ') माधव (विष्णु) को कहते हैं (उनका गुण-गान करते हैं) (जो ज्ञानी हैं वे तो शिव तथा विष्णु के ऐक्य को जानते ही हैं किंतु सेनापति समझने-बूझने पर इस तत्व पर पहुँचते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष, यमक ।

३६ शब्दार्थ :—बल्ली = १ लता २ वह डंडा जिससे नाव खेते हैं । राम वीर = १ बलराम के भाई कृष्ण २ वीर रामचंद्र । तिमिर = १ अंधकार २ मत्स्य विशेष । जोग = १ योग २ उपाय । आगर = चतुर, दक्ष ।

अर्थ :—(जो गोपियाँ) कृष्ण के रहने पर कुंजों में रति-क्रीड़ा करने में निपुण थीं, वे ही कृष्ण के बिना वियोग का समुद्र हो गईं ।

गोपियों के पक्ष में :—(विरह के कारण) किसी प्रकार कालक्षेप नहीं करते बनता, लताएँ अच्छी नहीं लगती, सोचते (सोचते) लोगों का मन बहुत जड़ हो गया है (अर्थात् विरहाग्नि से मुक्त होने का कोई उपाय सूझता ही नहीं है) । दीनों के नाथ (कृष्ण) नहीं हैं (अनुपस्थित है), इससे (गोपियों की) किसी (वस्तु) पर अनुरक्ति नहीं बन पड़ती ('यातैं काहू पै रत न बनै'); सेनापति (कहते हैं कि) कृष्ण निःशोक करने वाले हैं ! जहाँ (कोई) बड़ा अहिर (चिंता के कारण) लंबी आहें भर रहा है ('जहाँ भारी अहिर दीरघ उसास लेत है') (गोपियों की विरह-दशा गोपों को चिंतित कर रही है); (गोपियों के सम्मुख) विकट अंधकार है (क्योंकि) (उद्धव ने) गोपियों को योग का मार्ग बताया है) उद्धव ने गोपियों को योग द्वारा कृष्ण-प्राप्ति का मार्ग बताया, इसी से उन्हें कुछ नहीं सूझता है) ।

सागर-पक्ष में :—(समुद्र में) (नाव) नहीं खेते बनती, (क्योंकि वहाँ) किसी प्रकार भी भलीभाँति बल्ली नहीं लगती; सोचते (सोचते) सब लोगों का मन बहुत जड़ हो गया है । (यह) नदियों का नाथ (है) (अर्थात् समुद्र है) इस कारण किसी (से) तैरते (भी) नहीं बनता (है) । सेनापति (कहते हैं कि समुद्र) वीर राम (के) शोक को दूर करने वाला (है) । (जहाँ) दीर्घ

निःश्वास लेता हुआ बड़ा सर्प रहता है; भयानक मत्स्य (है); (ऐसे सागर ने) पंथ (बनाने के) उपाय को बताया । (सेतु बाँधने के समय समुद्र ने राम को नल-नील की सहायता लेने की राय दी थी क्योंकि नल-नील को यह वर था कि वे जिस पत्थर को छू लेंगे वह तैरने लगेगा) ।

अलंकार :—श्लेष ।

४० शब्दार्थ :—पट = १ वस्त्र २ दरवाजा । प्रापति = प्राप्ति, आमदनी । घटी = १ घड़ी २ कमी । भोगी = १ सांसारिक सुखों का उपभोग करने वाला व्यक्ति २ सर्प ।

अर्थ :— सेनापति (कहते हैं कि हमारे) शब्दों की रचना (पर) विचार करो, जिसमें दानी तथा कंजूस एक से कर दिए गए हैं ।

दाता-पक्ष में :—(याचकों के माँगने पर दानी व्यक्ति) ‘नहीं’ नहीं करते (किसी से यह नहीं कहते कि हम तुम्हें नहीं देंगे), थोड़ी (वस्तु) माँगने पर संपूर्ण देने (को) कहते हैं; याचकों को देख कर बारबार वस्त्र देते हैं । जिनको मिल जाते हैं (उन्हें) प्राप्ति का उत्तम अवसर होता है (जिसमें भेंट हो जाती है उसे निहाल कर देते हैं), निश्चय (ही) (ये) सर्वदा सब लोगों (के) मन (के) अच्छे लगे हैं (सर्वदा सब लोगों को प्रिय रहे हैं) । भोग-विलास करने वाले बन कर रहते हैं (और) पृथ्वी में शोभित होते हैं; सुवर्ण नहीं जोड़ते (‘कनक न जोरें’), (उनके यहाँ) दान (के) समूहों (‘परिवार’) (के) पाठ (होते) हैं (उनके यहाँ सदा यही चर्चा होती है कि आज एक व्यक्ति को इतना मिला तथा दूसरे ने अमुक वस्तुएँ पाईं) ।

सूत्र-पक्ष में :—(याचकों के माँगने पर) ‘नहीं नहीं’ करते हैं (याचकों से स्पष्ट कह देते हैं कि हम तुम्हें कुछ नहीं देंगे), थोड़ी (वस्तु) माँगने पर शब्द ही नहीं कहते (‘सब दे न कहें’) (मुख से बोलते ही नहीं), याचकों को देख कर बार बार किवाड़ बन्द कर लेते हैं । जिनको मिल जाते हैं (उन्हें) आमदनी की विशेष कमी हाँ जाती है (सूत्र का मुख देखने पर प्राप्ति बहुत कम हो जाती है); निश्चय (ही) सदा सब लोगों (के) मन (को) अच्छे नहीं लगे हैं । सर्प होकर पृथ्वी के अन्दर विलास करते हैं (रहते हैं), थोड़ा थोड़ा (करके) (वस्तुओं को जोड़ते हैं (तथा) दान (के) पाठ (की) परिवा रहते हैं (‘परिवा रहें’) ।

अलंकार :—श्लेष, यमक ।

विशेष :—१ सूत्रों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि मृत्यु के बाद वे सर्प

होकर अपने गड़े हुए धन की रक्षा करते हैं ।

२ प्रतिपदा को अनध्याय रहता है । सूमां के यहाँ सर्वदा ही दान के पाठ की प्रतिपदा रहती है अर्थात् उनके यहाँ कभी यह सुनने में नहीं आता कि आज उन्होंने किसी को कुछ दिया है ।

४१ शब्दार्थ :—होत = १ पास में धन होने की अवस्था, संपन्नता
२ वित्त, धन । रिस = क्रोध ।

अर्थ :—सेनापति की द्वयर्थक (दो अर्थ देने वाली) वाणी (को) विचार कर देखो (भली प्रकार समझो) (जिसमें) दाता तथा सूस दोनों बराबर कर दिये गए हैं (दोनों को समान कर दिखाया गया है) ।

दाता-पक्ष में :—संपन्न अवस्था में कुछ थोड़ा (सा) (धन) माँगने पर प्राण तक नहीं रखते (अर्थात् ऐसे दानी हैं कि आवश्यकता पड़ने पर प्राण तक देने को उद्यत हो जाते हैं), मन में ('मौ') रूखे (तथा) क्रोध-पूर्ण होकर नहीं ('न') रहते हैं (याचकों के धन माँगने पर न तो क्रुद्ध हो जाते हैं और न किसी प्रकार की उदासीनता ही प्रकट करते हैं) । अपने वस्त्र दे देते हैं । वे कीर्ति जोड़ लेते हैं ('वे कीरति जोरि लेत'), पृथ्वी (के) (हित को) हृदय में धारण कर धन बाँटते जाते हैं (लोगों के हित के लिये अपनी संपत्ति लुटा देते हैं) माँगते ही, याचक से, स्पष्ट कहते हैं (कि) तुम फिक्र मत करो, हम उसे आसान कर देंगे (तुम्हारी कठिनाइयों को हम सरल कर देंगे) ।

सूस-पक्ष में :—कुछ थोड़ा (सा ही) माँगने पर प्राण तक नहीं रखते (प्राण तक देने को तैयार हो जाते हैं, किंतु थोड़ा सा धन नहीं दे सकते हैं); वेमुरौवती (से) मौन होकर नाराज हो जाते हैं (इसएँ पैसे के मामले में मुरौवत नहीं करते, उलटे याचकों से नाराज हो जाते हैं) । अपने वश (में) (किसी को) नहीं देते (जहाँ तक उनका वश चलता है उनके यहाँ से कोई कानी कौड़ी भी नहीं ले सकता), संचय करने की प्रीति लेते हैं (अर्थात् संचय करने से उन्हें बड़ी प्रीति रहती है, सर्वदा धन जोड़ कर रखते हैं); धन (को) पृथ्वी ही में रख कर (गाड़ कर), वित्त (धन) (ही) (में) अनुरक्त चले जाते हैं (आजन्म धन में अनुरक्ति रखते हुए अन्त में मर जाते हैं) । याचकों से माँगते (ही) स्पष्ट कह देते हैं (कि) तुम मति में चिंता करो (अपने मन में फिक्र करो), सो हम ऐसा ('असा') नहीं करेंगे ('न करिहैं') (अर्थात् हम

तुम्हारी माँग नहीं पूरी करेंगे, इससे तुम अपनी फ़िक्र करो) ।

अलंकार :—श्लेष ।

४२ शब्दार्थ :—पट = १ घूँघट, पर्दा, २ दरवाज़ा । धन = १ युवती स्त्री २ रुपया-पैसा । सत्त = १ शक्ति २ सत्य । खोजा = वे नपुंसक व्यक्ति जो मुसलमान राजाओं के हरमों में सेवक के रूप में रखे जाते थे ।

अर्थ :—परमात्मा (ने) खोजा और सूम, दोनों को एक सा बनाया है, (ये) (किसी) काम नहीं आते (और) सेनापति को नहीं अच्छे लगते (हैं) ।

खोजा-पक्ष में :—बहुधा (शरीर के) समस्त अंगों पर थोड़े से रत्न धारण करते हैं । स्त्रियों की भोंति आभूषणादि धारण करते हैं ; जो मुख (के) ऊपर भी भुके हुए (‘नइत’—नमित) बाल रखते हैं (अर्थात् जो अपनी पाटी के बालों को मस्तक के दोनों सिरों पर भुकावदार रखते हैं) । (जो) धीमें स्वर में बोलते हैं (जिनकी आवाज़ जनानी है), सभा को देखते ही घूँघट नहीं खोलते (लोगों को देखते ही पर्दा कर लेते हैं), (जिन्होंने) वेगमों की रक्षा के लिए ही अवतार पाया है (जो सर्वदा हरमों में वेगमों की सेवा किया करते हैं) । जन्म से (ही) जो कभी, भ्रम से (भी), नहीं माँगे जाते (राजाओं के यहाँ से लोग अनेक चीजें मँगनी में ले जाते हैं, पर इन्हें ले जाने का कोई नहीं आग्रह करता); (जो) शक्तिहीन (हैं), जिनके सामने सर्वदा (कोई) काम नहीं रहता (जो निकम्मे हैं) ।

सूम-पक्ष में :—बहुधा सब उपायों (‘अंग’) से छोटे-मोटे रत्नादि जोड़ते हैं (प्रत्येक उपाय से धन संचित करते हैं), जो मुख पर भी विश्वास नहीं रखते (अर्थात् अपने चेहरे के रंग-ढंग से यह स्पष्ट कर देते हैं कि रुपये-पैसे के मामले में वे किसी का विश्वास नहीं करते हैं) । (जो) हलकी बात करते हैं, भय देखते (ही) दरवाज़ा नहीं खोलते; (जिन्होंने) राज्य-धन (की) रक्षा करने को अवतार पाया है (अभिप्राय यह है कि जब वे मर जाते हैं तो उनका धन राज्य-कोष में चला जाता है), जो जन्म से कभी (भी) भ्रम से (भी), नहीं माँगे जाते (‘सूम’ के नाम से प्रसिद्ध है), (जो) झूठे हैं (सर्वदा कहा करते हैं कि मैं दरिद्र हूँ), सर्वदा मुख पर नकार रखते हैं (माँगते ही ‘नहीं’ कर देते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष ।

४३ शब्दार्थ :—अमल = १ नशा २ स्वच्छ अथवा शासन । असील = १ अशील, दुर्विनीत २ सच्चे । देत = १ दैत्य, बड़ा २ देते हैं ।

बाजी = १ जिसका पेशा बाजा बजाना हो, साजिन्दा २ घोड़ा ।

अवतरण :—इस कवित्त में कवि ने दुष्ट तथा गुणवान् राजाओं का वर्णन किया है ।

अर्थ :—दुष्ट राजाओं के पक्ष में :—(जो) खेत के रहने वाले (हैं) (अर्थात् छोटे गाँव के रहने वाले हैं), अत्यंत नशे (के कारण) (जिनके) नेत्र लाल (हैं); (जो) आदि ('ओर') से दुर्विनीत गुणों के ही भांडार हैं (प्रारंभ से ही जिनमें अनेक दुर्विनीत गुण हैं) । संसार (में) (यह बात) प्रसिद्ध (है) (कि ये ही) कलिकाल के करने वाले (हैं) ऐसे ही व्यक्तियों के होने के कारण इस युग को लोग कलिकाल कहते हैं; कलिकाल की समस्त बुराइयों का उत्तरदायित्व ऐसे ही लोगों पर है; कहीं (किसी स्थान पर) युद्ध (में) विजय समेत नहीं (हुए) हैं (सर्वत्र हारे हैं) । सेनापति कहते हैं (कि) (हे) सुमति ! (अच्छी बुद्धि वाले व्यक्ति) ऐसे स्वामियों (की) समझ-बूझ कर सेवा करो; (है) प्रवीण (व्यक्ति) ! (तुम इनसे) भगो, क्योंकि (ये तो) मदिरा ('आसव') (के बल से ही) सचेत (रहते) हैं (अर्थात् ये ऐसे व्यसनी हैं कि जब तक शराब न पिँ, इनको चैन नहीं) ब्राह्मणों को रोक कर, मणि (तथा) कंचन गणिका को देते हैं (ब्राह्मणों के लिए तो मनहाई कर देते हैं किंतु वेश्याओं को संपत्ति लुटाते फिरते हैं); साधारण ('सहज') बजाने वाले ('बाजी') को प्रसन्न होकर (एक) बड़ा हाथी दे देते हैं (ये ऐसे मूर्ख हैं कि एक मामूली साजिन्दे को प्रसन्न होकर एक विशाल हाथी दान कर देते हैं)।

गुणी राजाओं के पक्ष में :—(जो) संग्राम-भूमि में काम आते हैं (युद्ध में लड़कर वीर-गति को प्राप्त होते हैं), (जिनके) नेत्र अत्यंत स्वच्छ (तथा) लाल हैं (अथवा जिनका 'अमल' या शासन बड़ा है, जिनके नेत्र लाल हैं); (जो) आदि के सच्चे (हैं) (प्रारंभ से ही बात के धनी हैं), जो गुणों के भांडार हैं । संसार (में) प्रसिद्ध (है) (कि ये) कलिकाल के कर्ण हैं, (जो) किसी युद्ध में नहीं हारे, (सर्वत्र) विजयी (हुए) हैं । सेनापति (कहते हैं कि) (हे) सुमति ! (बुद्धि में) विचार (समझ बूझ कर) ऐसे प्रवीण स्वामियों (की) सेवा करो ('सुमति ! विचारि, ऐसे परबीन साहिबन भजौ'); जिनसे (लोगों के) चित्त आशा-पूर्ण हैं ('जातैं आस बस चेत हैं') (अर्थात् जो लोगों को अभीष्ट वस्तु दे देने वाले हैं) । ब्राह्मणों को रोक कर (उन्हें ठहरा कर) मणि (तथा) कंचन (अर्थात् अतुल संपत्ति) गिन कर दे देते हैं, प्रसन्न होकर (तो) हाथी दे देते

हैं; साधारण (रूप से) घोड़ा देते हैं (अर्थात् यदि किसी पर प्रसन्न हो गए तो हाथी दे देते हैं, नहीं तो घोड़ा आदि दे देना तो साधारण बात है)।

अलंकार :—श्लेष, तद्रूपरूपक ('कलिकाल के करन'), देहरी दोषक।

विशेष :—दूसरे पद की दृष्टि से 'दैत' के स्थान पर कवि ने 'देत' ही रक्खा है। इसी प्रकार छंद ४६ ('श्लेष वर्णन') में 'वैद' के स्थान पर 'वेद' से काम चलाया गया है।

४४ शब्दार्थ :—रत्ती = १ एक रत्ती, जो आठ चावलों के बराबर होती है २ प्रीति। लुमासौ = १ लुः माशे २ क्षमा अर्थात् पृथ्वी के समान। नरजा = तराजू की डाँड़ी। पलरा = तराजू का पल्ला। बारहमासा = १ बारह माशे का, एक तोले का २ सदा बहार, सर्वदा प्रसन्न रहने वाला। तोरा = सोने की लच्छेदार और चौड़ी जन्जीरों के बने हुए दो आभूषण जो दोनों हाथों में पहने जाते हैं। इन्हें तोड़ा कहते हैं। ये प्रायः तीन अथवा पाँच लड़ों के बनते हैं और तदनुसार इनकी तौल में भी अंतर हो जाता है। दूसरे पद की दृष्टि से कवि ने यहाँ पर तोड़े का वजन एक ही तोला रक्खा है।

अवतरण :—दूती नायिका के पास तोड़ों का एक जोड़ा लेकर आई है और प्रत्यक्ष में उसकी प्रशंसा कर रही है, किंतु अपने श्लिष्ट वचनों द्वारा नायक के आगमन की सूचना भी दे रही है और उसकी प्रशंसा कर रही है।

तोड़ा पद में :—(जो) निर्मल (तथा) समूची (है), जिसमें आठ चावल हैं) जो आठ चावलों के बराबर (है), इस प्रकार की तुम्हारी रत्ती द्वारा लुः लुः माशे (के बराबर तौल कर) (यह तोड़े का जोड़ा) सुधराया गया है। डाँड़ी में ठीक मिलता है, दोनों पल्लों में देख (वे भी ठीक हैं) (अर्थात् डाँड़ी बिलकुल सीध में है, किसी ओर झुकी नहीं है तथा दोनों पल्ले भी एक ही सीध में है), सेनापति (ने) ऐसे (तोड़े का) सोच-समझ कर वर्णन किया है। किसी (हाथ) में कुछ छोटा (तथा) किसी में कुछ बड़ा है, (यह बात) गलत है; तुझ में (तेरे हाथों में) (ये) बिलकुल ठीक (तथा) समान (जचते हैं), (यह) मैंने (तुझ) से कह (ही) दिया है (अर्थात् दोनों हाथों के तोड़े बिलकुल ठीक हैं, किसी हाथ का कुछ ढीला तथा किसी हाथ का कुछ कसा होता हो यह बात नहीं है)। जिससे संसार (के) सुवर्ण का सौंदर्य तौला जाता है वह बारह माशे का तोड़ा तुझे बन कर आया है (अर्थात् तेरे लिए ऐसा उत्तम तोड़ा बन कर आया है कि संसार के अन्य सुवर्ण के आभूषणों की उत्तमता उसी से

मिलान करने पर निश्चित की जाती है ।

नायक-पक्ष में :—(जो) निर्दोष (है), तथा जिसमें आठों पहर अखंड (निरंतर एक सा रहनेवाला) उत्साह रहता है; इस प्रकार की तेरी पूर्ण रति द्वारा (नायक) पृथ्वी की माँति (अचल) कर दिया गया है (अर्थात् तेरे गुणों का वर्णन कर मैंने नायक के हृदय में वह प्रेम अंकुरित करा दिया है जो सर्वथा दोष-रहित है, जिसमें सदा तेरे देखने की लालसा बनी रहती है (तेरे प्रति नायक का प्रेम स्थायी है) । (अन्य) स्त्रियों की ('रामें') देख कर क्षण (भर भी) उनकी इच्छा ('रजा') नहीं करता: (और न प्रसन्नता से) दूना (ही होता है) (अर्थात् जब मैं अन्य स्त्रियों की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती हूँ तो न तो वह अपनी स्वीकृति देता है और न उन स्त्रियों को देख कर प्रसन्न ही होता है); उसे ही (ऐसे नायक को ही) (मैंने) सोच-समझ कर (तुझे) बताया है । (उसका प्रेम) किसी (स्त्री) में कुछ कम तथा किसी में कुछ अधिक है, यह बात गलत है, मैंने (तुझे) सूचित (ही) कर दिया है (कि) तुझमें (उसका प्रेम) पूर्ण रूप (से) (है) (और सर्वदा) एक रूप (में) (रहता है) । जिससे संसार का सुन्दर वर्ण (तथा) रूप परखा जाता है वह सदा प्रसन्न रहने वाला (नायक) बन-ठन कर ('बनि') तुझमें अनुरक्त होकर ('तो रातोहि') आया है ।

अलंकार :—श्लेष ।

४५ शब्दार्थ :—मेव = मेवाती । सहेत = १ "वह निर्दिष्ट स्थान जहाँ प्रेमी-प्रेमिका मिलते हैं", सहेट २ सप्रयोजन । लंगर = १ लँगोट २ "वह भोजन जो प्रायः नित्य दरिद्रों को बाँटा जाता है"; सदावर्त । भूखन = १ भूखों को २ आभूषण । कनक = १ एक कण २ सोना । मनै = १ वर्जित २ मन को । बीस बिस्वा = १ बीस वेश्याएँ ('बिसवा' या 'बेसवा') २ पूर्ण रूप से । दादनी = वह धन जो किसी को देना हो ।

अवतरण :—इस कवित्त में उच्च श्रेणी तथा निम्न श्रेणी के राजाओं का वर्णन किया गया है । कवि ने जहाँ एक ओर सत् राजाओं के गुणों को गिनाया है वहीं ओछी रुचि वाले दुष्ट राजाओं का भी चित्रण किया है ।

अर्थ :—अच्छे राजाओं के पक्ष में :—(जिनके) घर में जन्म (भर) कमी नहीं (होती) (अर्थात् जो सदा संपन्न रहते हैं); युद्ध (के) भीतर वीर हैं ('वीर जुद्ध भीतर हैं') ; मेवाती, धन सहित (धन देकर), (जिन्हें) नमस्कार

करते हैं ('मेव नमै सदाम'); (जो राजा) सहेट नहीं रखते हैं (जिनके यहाँ हरम नहीं हैं)। (जो) सदावर्त के दाता (हैं) और (याचकों को) सुवर्ण (के) आमूषण देते (हैं), एक साधु (के) मन को पूर्ण रूप से रख लेते हैं (उसकी इच्छा पूरी करते हैं)। सेनापति (कहते हैं कि) हे बुद्धिमान् पुरुष ! इनकी समझ बूझ कर सेवा करो (कोई त्रुटि न होने पाए), अत्र संसार जानता है (कि) ये तो गुण के भांडार हैं। ये बड़े उदार हैं, (किसी को) जब बकाया धन देना होता (है) तब अंत में सौ की जगह दो सौ एक देते हैं।

निकृष्ट राजाओं के पक्ष में :—(जो) जन्म (से ही) कमीने (नीच) (हैं), धर (में) वीर (तथा) युद्ध में भयभीत रहते हैं; (जो) सदा (अपना) मन, सप्रयोजन ('सहेत') मेवातियों में रखते हैं (अर्थात् मेवातियों के साथ इस अभिप्राय से मैत्री करते हैं कि उनकी लूट-मार में उन्हें भी कुछ मिल जाय)। लँगोटी के दाता हैं (यदि कभी किसी को वस्त्र देना हुआ तो कोई छोटा-मोटा वस्त्र दे देते हैं) और क्षुधितों (को) एक-आध कण (दे) देते (हैं); (जिनके यहाँ आने को) केवल साधु-संत (ही) वर्जित (हैं), (यद्यपि वे) वीस (वीस) वेश्याएँ रख लेते हैं। सेनापति (कहते हैं कि) हे बुद्धिमान् पुरुष ! (जरा) सोच समझ कर इनकी सेवा करो। संसार जानता है (कि) ये तो अवगुणों के भांडार हैं। ये बड़े उदार हैं ! (किसी को) जब बकाया धन देना होता (है) तब, अंत में सौ की जगह केवल दोष ही देते हैं। (अर्थात् रुपया देने के समय नाना प्रकार के दोषारोपण कर टाल देते हैं)।

अलंकार :—श्लेष ।

विशेष :—(१) मेवात राजपूताने और सिंध के बीच के प्रदेश का पुराना नाम है। इस प्रदेश के लोग मेवाती कहलाते हैं। यह एक लुटेरी जाति थी। किंतु वर्तमान समय में मेवाती गृहस्थों की भाँति रहते हैं।

(२) उँचे राजाओं के पक्ष में 'अवगुण' को "अत्र गुण" करके पढ़ना पड़ता है। यमक, श्लेष, तथा चित्रादि अलंकारों में 'व', 'ब', तथा 'र' 'ल' आदि वर्णों में अन्तर नहीं माना जाता है—

“यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवोर्लोरोस्तथा”

४६ शब्दार्थ :—विकच = १ बिना बाल का २ विकसित । विकच करै = १ लोगों को चेला बना कर मूढ़ लेते हैं २ लोगों को विकसित अर्थात् प्रसन्न करते हैं ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (हे) बुद्धिमान् पुरुषों ! भली प्रकार विचार कर देख लो, कलिकाल के गोसाईं मानों भिखमंगों के समान ही (होते हैं) ।

गोसाईं-पद में :—गीत सुनाते हैं, (मस्तक पर) तिलक चमकाते (लगाते) हैं, द्वारका जाते ही मोटों को छुपा लेते हैं (देव-मूर्तियों की छाप डला लेते हैं) । (उनका) वेप वैष्णवों (का सा होता है), भक्तों की पैदा की हुई संपत्ति से अपना पेट पालते हैं (भक्त लोग जो कुछ दे देते हैं उसी से अपनी जीविका निर्वाह करते हैं), (यह) सच है (कि) निदान (ये) (अपने) स्वामी विष्णु की सेवा नहीं करते (हैं) । (इनकी) पोशाक देख कर (श्रद्धा से) सब लोगों की गर्दन झुक जाती है (सब लोग इन्हें प्रणाम करते हैं) । (अपने आडंबर द्वारा लोगों को) मोहित कर मूढ़ लेते हैं (सब कुछ ले लेते हैं), (तथा) मन (में) धन का ही ध्यान करते हैं ।

भिखमंगों के पद में :—गीत सुनाते हैं, तिल (के) कण दिखलाते हैं (यह सूचित करते हैं कि हमारे पास केवल ये ही है), किसी के द्वार जाने पर (अपने) भुज-मूलों को नहीं छिपाते (अर्थात् कोई वस्त्र आदि पहन कर अपने शरीर को नहीं ढँकते) । नई उमर ('बैस नव') (है), भक्तों (के) वेप की कमाई खाते हैं (अर्थात् ईश्वर-भक्तों की भाँति कपड़े रंग लेते हैं और उनके रंगे वस्त्रों को देख कर लोग उन्हें खाने को दे देते हैं), निदान भगवान् (की) सेवा नहीं करते, (यह) सच है । (उनके फटे) लिवास (को) देख कर सब लोगों की गर्दन (शर्म से) झुक जाती है, (अपनी दीनता-सूचक बातों द्वारा तथा गाना आदि गाकर) (लोगों को) मोहित कर प्रसन्न कर लेते हैं (तथा) मन (में) धन (का) ही ध्यान करते हैं ।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक ('मोहिकै विकच करैं मन धन ध्यान ही') ।

विशेष :—“भुज मूलन छुपावै”—वैष्णव लोग शंख, चक्र आदि चिह्न गरम धातु से अपने अंगों पर अंकित करा लेते हैं ।

४७ शब्दार्थ :—मालै = १ माला को २ सामग्री को । व्रत = १ व्रत २ व्यवहार । मुद्रा = १ छाप २ रुपया । निगम = १ वेद २ पथ, मार्ग ।

अर्थ :—देखो सेनापति (ने) देख कर (तथा) विचार कर बताया है (कि) कलिकाल के गोस्वामी मानों संसार के भिखमंगे (हैं) ।

गोस्वामी-पद्म में :—हठ कर (जबर्दस्ती) माला लेकर अच्छे आदमियों (को) ये छोड़ देते हैं, (इन्हें) राज-भोग ही से प्रयोजन (रहता है), (ये) व्रत की रीति (को) नहीं करते (हैं) (व्रतादि के नियमों का पालन नहीं करते) । (हाथ) (में) छाप लेते हैं, इस प्रकार शरीर को बुरा बनाते हैं (कुरूप कर लेते हैं, वेद की शंका छोड़ स्त्री प्रसंग ('अबला जन रमत') की रीति को करते हैं) (वेद-विहित मार्ग पर न चल कर आसक्ति का मार्ग ग्रहण करते हैं) । जो निदान (अपने) पैर पकड़वाते हैं (अपनी पूजा करवाते हैं) (तथा) उपदेश करते हैं; जन्म से ही रास-उत्सव मनाने में अनुरक्त रहे (हैं) ।

भिक्तुकों के पद्म में :—जिद कर (हाथ के) सामान को लेकर ये सत् पुरुषों (को) तथा (अपने) देश (को) छोड़ देते हैं (अर्थात् ये हाथ की वस्तु को भी नाना प्रकार की बातें बना कर ले लेते हैं, भले आदमियों का संग नहीं करते, अपना देश छोड़ कर दूसरी जगह भीख माँगते फिरते हैं), (इन्हें) भोजन ('भोग') से ही प्रयोजन (है), (ये) व्यवहार की रीति (को) नहीं करते (सांसारिक पुरुषों के समान आचरण नहीं करते, शरीर से दृष्ट-पुष्ट होने पर भीख माँगते फिरते हैं) । हाथ में रुपया लेते हैं (यदि किसी ने दे दिया तो तुरंत हाथ पसार कर ले लेते हैं), शरीर को ऐसा कुरूप बना लेते हैं (कि कुछ कहा नहीं जाता) मार्ग की शंका छोड़ कर अब इन्हें मारे-मारे फिरने की लज्जा नहीं है (पेट के लिए घूमते-फिरते रहने से ये लज्जित नहीं होते हैं, मार्ग में पड़े रहने में भी इन्हें संकोच नहीं होता है) । जो (इन्हें) उपदेश करते हैं (जो लोग इनसे कहते हैं कि इतना बड़ा शरीर लेकर क्या भीख माँगते फिरते हो) (वे) अंत में (अपने) पैर पकड़वाते हैं (भिक्षुक उनका पैर पकड़ लेते हैं, वे कहते हैं कि कुछ तो देते जाइए, हम बड़े भूखे हैं...), रास-उत्सव से (तो) उनकी अनुरक्ति जन्म की ही (है) बाल्य-काल से ही जहाँ कहीं उत्सव होता है वहाँ ये पहुँच जाते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

४८ शब्दार्थ :—घाट = १ किसी जलाशय का वह स्थान जहाँ लोग स्नानादि करते हैं २ तलवार की धार । बानी = स्वभाव । पानी = १ जल २ कांति । रज = १ धूल, बालू २ क्षात्र धर्म, रजपूती । पतवारि = त्रिकोणाकार बना हुआ नाव का वह महत्वपूर्ण अंग जो नाव के पीछे की ओर लगा रहता है । इसी के सहारे नाव मोड़ी जाती है । असील = सच्ची, असली, श्रेष्ठ

अर्थ :—पाप (की) (नौका) (के) पतवार को नष्ट करने के लिए गंगा पुण्य की श्रेष्ठ तलवार की भाँति शोभित हो रही है ।

गंगा पत्त में :—जिसकी धारा समस्त तीर्थों से अधिक पवित्र है । पापी जहाँ मर कर इन्द्रपुरी का मालिक होता है (इन्द्र की पदवी को प्राप्त होता है) । जिसका सुन्दर घाट देखते ही पहिचाना जाता है (लोग देखते ही समझ लेते हैं कि यह गंगा-तट है) जिसके पानी का सर्वदा एक सा स्वभाव रहता है (गंगाजल की मर्यादा सर्वदा एक रूप रहती है, स्नान करते ही लोग जीवन्मुक्त हो जाते हैं) । जो बहुत बालू रखती है (अर्थात् जिसके किनारे बहुत बालू है), जिसको महान् धैर्यवान् (सिद्ध-पुरुष) (भी) तरसते हैं (जिसके दर्शनों को लालायित रहते हैं); सेनापति (कहते हैं कि) जो स्थान-स्थान (पर) सुन्दर गति (से) बहती है ।

तलवार-पत्त में :—जिसकी धार समस्त तीर्थों से अधिक पावन है, जहाँ मर कर पापी इन्द्रपुरी का स्वामी हो जाता है (पापी भी रणक्षेत्र में मरने से देवलोक का स्वामी होता है) । जिसकी सुन्दर धार देखते ही पहिचानी जाती है, जिसकी काँति का स्वभाव सर्वदा एकरूप रहता है (जो सर्वदा चमकती रहती है), जो महत्व-पूर्ण ज्ञात्र धर्म की रक्षा करती है, जिसको बड़े धैर्यवान् व्यक्ति (भी) तरसते हैं (धीर व्यक्ति भी जिसके पाने के लिए लालायित रहते हैं), सेनापति (कहते हैं कि) (जो) स्थान-स्थान पर सुन्दरता-पूर्वक चलती है (युद्ध में बड़े कौशल से वैरियों का सहार करती है) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष, रूपक ।

४६ शब्दार्थ :—त्रिविध ताप = १ तीन प्रकार का बुखार—बातज्वर, पित्तज्वर तथा कफज्वर २ तीन प्रकार का कष्ट—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक । गुरु चरन = १ वन की शुरु ('गुरुच रन') २ गुरु के चरण । वेद = १ वैद्य २ वेद । कुपथ = १ कुपथ्य, स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाला आहार २ कुमार्ग । सात पुरीन कौ = १ सात पुड़ियों को २ धार्मिकों के अनुसार मोक्ष देने वाली सात नगरी, जिनके नाम इस प्रकार हैं—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका तथा द्वारावती ।

अवतरण :—कवि किसी ऐसे व्यक्ति को उपदेश दे रहा है जिसे क्षुधा नहीं लगती और जिसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है । दूसरी ओर वह किसी धनी व्यक्ति को उपदेश दे रहा है और मोक्ष-प्राप्ति के विधान को समझा

रहा है ।

अर्थ :—रोगी-पक्ष में—तेरे भूख नहीं है, इससे (तेरा) कुछ (भी) सुधार नहीं होगा (अर्थात् क्षुधा का न लगना बड़ी खराब बात है), (इससे) तीनों प्रकार का ज्वर बढ़ेगा और (तू) दुःख से संतप्त होगा । तू वन (की) गुर्च (का) सेवन कर, काम (के) बल को जीत (कामदेव के वशीभूत मत हो) वैद्य से भी पूछ, (वह भी) तुझ से यही तत्व (की बात) कहेगा । सेनापति (कहते हैं कि) कुपथ्य को छोड़ और पथ्य को ग्रहण कर (लाभदायक वस्तुएँ खाया कर); (यह) शिद्धा जान कर (समझ कर) मान ले, (तू) सर्वदा सुख प्राप्त करेगा । प्रातःकाल 'अच्युत अनंत' कह कर (औषधि की) सात पुड़ियों को क्रम (से) खाया कर, (तू) अमर होकर रहेगा ।

धनी-पक्ष में—तेरे (पास) आभूषण हैं (तू धनी है), इससे (तेरा) कुछ (भी) सुधार न होगा, तीनों प्रकार की ताप बढ़ेगी (और तू दुःख से संतप्त होगा), तू गुरु (के) चरणां (की) सेवा कर, कामदेव के बल को जीत, वेद से भी पूछ, (वह) भी तुझ से यही तत्व कहेगा (वासनाओं का शमन करना तथा गुरु की सेवा करना, ये ही उपदेश वेदों में भी दिए गए हैं) । (कुमार को छोड़ बुरे काम मत कर), सेनापति (कहते हैं कि) सत् पथ पर चल, यह शिद्धा जान कर (समझ-बूझकर) मान ले (तो सदा सुख प्राप्त करेगा) । प्रातःकाल 'अच्युत अनंत' कह कर (परमात्मा के नाम लेकर) तथा सात पुरियों के नाम कह कर क्रम (से) (एक-एक करके) कमों (को) कर, (तू) अमर होकर रहेगा । अपने कर्त्तव्यों का पालन कर इसी से तेरा मोक्ष हो जायगा) ।

अलंकार :—श्लेष, यमक, देहरी दीपक ।

विशेष :—१ वैद्यक में औषधि खाने के सात समय कहे गए हैं—प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायं, रात्रि में भोजन के पूर्व तथा पूर्वाह्न रात्रि ।

२ गुर्च—एक प्रकार की मोटी बेल जो वृक्षों पर चढ़ जाती है । वैद्यक के अनुसार इसमें अनेक गुण हैं । वैद्यों का कहना है कि बस्ती से बाहर जंगल के वृक्षों पर जो गुर्च पाई जाती है वह अधिक लाभदायक होती है ।

३ अच्युत अनंत 'कहि'—रोगी को औषधि खिलाने के पूर्व यह

पहली तरंग

श्लोक पढ़ा जाता है :—

“अच्युदानन्द गोविन्द नामोच्चारण मेपजम् ।

नश्यन्ती सकलान् रोगान् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्” ॥

४ पहली पंक्ति की गति बिगड़ी हुई है । दिया हुआ पाठ ही समस्त प्रतियों में मिलता है ।

५ रोगी-पक्ष में ‘तेरे भूख न हैं.....’ में व्याकरण की अशुद्धि हो जाती है यद्यपि दूसरे पक्ष की दृष्टि से यह पाठ बिल्कुल ठीक है । ‘कवित्त-रत्नाकर’ के कई श्लेष कवित्तों में इस प्रकार की कठिनाई पड़ती है ।

५० शब्दार्थ :—सुथरी = स्वच्छ । सुवास = १ सुन्दर वस्त्र २ सुन्दर निवास । तन = १ शरीर २ कम, थोड़ा (सं० तनु = अल्प) ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि मैंने) ग्रीष्म तथा शीत, दोनों ऋतुओं (को) एक प्रकार की बना दिया है, (यह) समझ लीजिए ।

ग्रीष्म-पक्ष में :—रात के समय बिना शीतलता के नहीं सोया जाता, स्वच्छ शरीर (वाली) प्रियतमा अत्यंत सुख देने वाली है । रंगे हुए सुन्दर वस्त्र राजाओं (की) रसीली (‘रुचि रसाल’) (को) रखते हैं (अर्थात् वे उन्हें बड़ी रुचि से पहनते हैं), सूर्य की तप्त किरण (ने) शरीर (को) तपा दिया है । चंदन बहुत शीतल है इससे अच्छा लगता है; आँगन (में) ही चैन मिलती है, किसी प्रकार गरमी बचाई है (गरमी से छुटकारा पाया है) ।

शीत-पक्ष में :—रात के समय बिना शीतल (जल) कणों (‘सीरकन’) (के ही) सोया जाता है (अर्थात् यदि थोड़े से जल का संसर्ग शरीर से हो जाता है तो नींद नहीं पड़ती); स्वच्छ शरीर (वाली) -प्रियतमा अत्यंत सुखदाई है । राजा लोग रंगे हुए सुन्दर दुशाले (तथा) सुन्दर निवासस्थान (‘सुवास’) रखते हैं । सूर्य की गरम किरण (भी) कम तपने (लगी) है (अर्थात् सूर्य की किरणों में भी गरमी कम पड़ गई है) । चंद्रमा (‘चंद्र’) बहुत शीतल है इससे नहीं अच्छा लगता (‘न सुहात’), आँगन में अग्नि जलवा कर ही किसी प्रकार चैन पड़ती है (आग तापने से ही चित्त को थोड़ा-बहुत संतोष होता है) ।

अलंकार :—श्लेष ।

५१ शब्दार्थ :—मकर = १ मछली २ माघ मास । करक = १ कड़कड़ाहट का शब्द २ रुक-रुककर होने वाली पीड़ा । पाँउरी = १ खड़ाऊँ

२ दालान ।

अर्थ :—सेनापति (ने) वर्षा (तथा) शिशिर ऋतु (का) वर्णन किया है, जो मृग्यों के लिए दुर्वोध (है) (उनकी बुद्धि के परे है) (और) चतुर व्यक्तियों को सरल (है) ।

वर्षा-पद् में :—जल-वृष्टि, निश्चय (ही), तीर से (भी) अधिक (तेज) है; मल्लिलियो (अथवा मगरो) (को) बहुत दुःखद है (क्योंकि वर्षा ऋतु में नदियों का बहाव तेज होने के कारण वे बहे-बहे फिरते हैं); नदियों को चैन होती है (वे प्रचुर जल से परिपूर्ण हो जाती हैं) । अत्यंत बड़ी कड़कड़ाहट (की) (ध्वनि) होती है; (विरह के कारण) रात नहीं कटती; विरहियों की पीड़ा तिल-तिल (करके) पूरी बढ़ती है (अर्थात् उनकी विरह-वेदना धीरे-धीरे बहुत बढ़ जाती है) । ग्रीष्म की (अपेक्षा) अधिक शीतलता (है), चारों ओर अब पानी है ('अब नीर है'); पादुकाओं (के) बिना धनिकों को किसी प्रकार नहीं बनता (अर्थात् कीचड़ के कारण बिना पादुकाओं के उनका काम नहीं चलता है) ।

शिशिर-पद् में :—जल (की) धार, निश्चय (ही), तीर से (भी) अधिक (तेज) है, अत्यंत दुःखद माघ मास (में) गरीबों को ('दीन कौ') सुख नहीं होता (अर्थात् उन्हें कष्ट होता है) । (जाड़े की) अत्यंत बड़ी रात समाप्त नहीं होती (है), रुक-रुक कर विरह की पीड़ा होती है; विरहियों की पीड़ा थोड़ा-थोड़ा करके बहुत बढ़ जाती है (अर्थात् उन्हें विरह-पीड़ा बहुत व्यथित करने लगती है) । पृथ्वी (में) चारों ओर अधिक ठंडक रहती (है), दालानों के बिना धनिकों को किसी प्रकार नहीं बनता (सर्दियों के कारण बाहर नहीं सोया जाता है) ।

अलंकार :—श्लेष ।

५२ शब्दार्थ :—नेह = १ स्नेह २ वृत । भभूक = ज्वाला, लपट । सीरी = शीतल । दल = फूल की पंखड़ी । तुपार = बरफ़ । हरि = १ कृष्ण २ अग्नि । सुहार = सुहाल, तिकोनी आकार का एक नमकीन पकवान ।

अवतरण :—एक पद् में किसी विरहिणी नायिका का वर्णन है, दूसरे में, कदाचित्, किसी ऐसी स्त्री का वर्णन है जो सुहाल बनाने जा रही थी किंतु जल जाने के कारण न बना सकी ।

अर्थ :—विरहिणी-पद् में स्त्री प्रेम (से) पूर्ण (है), (विरहाग्नि के कारण) हाथ (तथा) हृदय में अत्यंत तप रही है (अर्थात् उसका सारा शरीर

विरहाग्नि के कारण तप रहा है), जिसको आध घड़ी बीतने से (ऐसा जान पड़ता है मानों) हजार वर्ष (व्यतीत हो गए हों) । हृदय (पर) गुलाब छिड़कने से लपटें उठती (हैं) सुन्दर नव विवाहिता स्त्री (के) अंग अंगारों (के) समान जलते हैं । शीतल समझ कर बाला के वक्षस्थल (पर) कमल (की) माला रखी गई जिसके दल बरफ के समान शीतल (हैं) । कृष्ण के (साथ) बिहार न होने (के कारण) उस हार के कमल सूख कर मुहाल के समान हो जाते हैं, (जरा सी) (भी) देरी (‘बार’) नहीं लगती (है) ।

मुहाल-पक्ष में—हे सखी ! धृत (से) पूर्ण नहीं है (‘री ! नेह भरी ना’), (केवल) कड़ाही ही (‘करहिये’) अत्यंत तप रही है (चूल्हे पर केवल कड़ाही ही चढ़ी है, उसमें धृत नहीं है), जिसको आध घड़ी बीतने से (ऐसा जान पड़ता है मानों) हजार वर्ष (व्यतीत हो) गए हों, तबती हुई कड़ाही के लिए आध घड़ी का समय बहुत अधिक होता है) । (बसाने के निमित्त) मध्य (‘उर’) में गुलाब के छोड़ते ही लपटें उठती (हैं), (फलतः) सुन्दर नव-विवाहिता स्त्री के अंग-प्रत्यंग अंगारे के समान जल जाते हैं । शीतल समझ कर बाला के वक्षस्थल (पर) कमल (की) माला रखी गई है), सेनापति (कहते हैं (कि) जिसके दल बरफ के समान शीतल (हैं) । अग्नि (अथवा आँच) के बिहार (के कारण) (अर्थात् आँच द्वारा जल जाने से), उसी माला के कमल सूखकर मुहाल (के) समान हो जाते हैं, उन (‘बिन’) (कमलों) (को) देरी नहीं लगती (‘बार न लागत’) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

विशेष:—१ मुहाल-पक्ष में इस कविता का अर्थ ठीक नहीं लगता । किसी अन्य समीचीन अर्थ के अभाव में उपलिखित रीति से अर्थ किया गया है । आग से जल जाने पर शीतोपचार नहीं किया जाता है । अतएव “सीरी जानि छाती धरी.....इ०” नितांत अनुपयुक्त है ।

२ ब्रज में ‘बिन’ शब्द का प्रयोग सर्वनाम के रूप में भी होता है ।

५३ शब्दार्थ :—भर = १ ताप २ भड़ी । जोति = १ लपट, लौ २ प्रकाश । भादव = १ दावाग्नि की भा (दीप्ति) २ भाद्र मास । जलद पवन = १ तेज वायु (लू) २ बादलों की घटा (‘मेघवाई’) । सेक = १ सेंक २ जल-सिंचन । तरनि = १ सूर्य २ नौका । सीरी = शीतल । वनछाँह = १ मेघों की छाया २ घनी छाया ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) (इस) कविता की चतुराई (को) देखो, (जिसने) भीषण ग्रीष्म (ऋतु) (को) वर्षा का समकक्ष कर दिया है ।

ग्रीष्म-पक्ष में :—देखने से पृथ्वी (तथा) आकाश (के) चारों ओर छोर (सब स्थल) जल रहे हैं; तृण (और) वृक्ष, सभी का रूप (ग्रीष्म ने) हर लिया है (सब को श्री-हीन कर दिया है) । बड़ी गरमी लगती है, दावाग्नि (के) प्रकाश की दीप्ति होती (है), तेज वायु (लू) चलती है; उसके स्पर्श (से) (ऐसा जान पड़ता है) मानों शरीर (पर) संक दी गई है । भीषण सूर्य (भगवान्) तल (तपा) रहे हैं, सब (लोग) नदी (में) (स्नानादि करने से) सुख पाते हैं, चित्त शीतल मेघों की छाया देखने में ही लगा है (चित्त घन-घटा देखने के लिए उद्विग्न है) ।

वर्षा-पक्ष में :—देखने से पृथ्वी (तथा) आकाश, चारों तरफ जल ही जल है; तृण, वृक्ष (आदि) सभी का रूप हरा है (चारों ओर हरियाली दिखलाई पड़ती है) । महान् भूङ्गी लगती है, भाद्र (मास) की व्युति (शोभा) हो रही है, बादलों की घटा (इधर-उधर) आती-जाती है, (छोटी-छोटी बूँदें पड़ने से ऐसा जान पड़ता है) मानों शरीर (पर) जलसिंचन किया गया है । (लोग) भीषण नदियों (को) नौका (से) पार कर सुख पाते हैं (सुखी होते हैं) ; (अधिक वृष्टि के कारण) (लोग) शीतल घनी छाया वाले (स्थान) (की) खोज में ही तल्लीन हैं (जिससे वे भीग न जायें)

अलंकार :—श्लेष ।

५४ शब्दार्थ :—द्विजन = १ दाँतो २ ब्राह्मणों । वरन = १ प्रकार २ वर्ण । स्मृति = १ कान २ वेद । जवन = १ 'जवन' २ यवन । आसा = १ डंडा २ तृष्णा ।

अर्थ :—इसी से (इन कारणों से) वृद्धापा कलिकाल के समान है ।

वृद्धापा-पक्ष में :—जिसमें दातों की प्रतिष्ठा नहीं रह जाती (दाँत टूट जाते हैं); अंत (में) शरीर का ('तन कौ') पहले प्रकार का (युवावस्था का) वेप नहीं है (युवावस्था की सी सुसज्जित वेश-भूषा अब नहीं है) । शरीर की छवि लुप्त (हो गई है); कानों (से) आवाज नहीं सुनाई पड़ती, अब लार लगी हुई है, नाक का भी शान नहीं है (नाक बहा करती है) । जब बहुत सी जुगालियों में शोभा नहीं दिखलाई पड़ती (भोजन करते समय बार-बार मुँह चलाना देख कर अच्छा नहीं लगता है); जहाँ काले बालों का ('कृष्ण केसौ कौ') नाम

से भी नाता नहीं है (अर्थात् एक भी बाल काला नहीं रह गया है) । सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें संसार डंडा के सहारे (इधर-उधर) भटकता फिरता है (वृद्धापा में छड़ी आदि के सहारे ही लोग चल पाते हैं) ।

कालिकाल-पक्ष में :—जिसमें ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा छूट जाती है (नष्ट हो जाती है), निदान पहले वर्ण (अर्थात् ब्राह्मणों) का थोड़ा सा भी वंश नहीं है (ब्राह्मणों की सी वंश-भूषा कहीं दिग्विधायी ही नहीं पड़ती) । (लोग) शरीर की छवि (में) लीन (हैं) (शारीरिक शोभा-वृद्धि में तल्लीन हैं), (किसी के) मुख (से) वेद ध्वनि नहीं मुनाई पड़ती; स्त्री लगी रहती है ('लागी अवला रहै') (लोग स्त्रियों में अनुरक्त रहते हैं); (अपनी) प्रतिष्ठा का भी (किसी को) ज्ञान नहीं है अथवा स्वर्ग की भी किसी को चिन्ता नहीं है । गलियों में ('जु गलीन माँझ') अनेक यवनों की शोभा दिग्विधायी पड़ती है (यवन गलियों में बहुत बड़ी संख्या में देखे जाते हैं); जहाँ कृष्ण (तथा) विष्णु का नाम से भी नाता नहीं है (कोई उनके नाम का भी स्मरण नहीं करता है) । सेनापति (कहते हैं कि) जिसमें संसार तृष्णा ही से भटकता फिरता है (अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, लोग व्यर्थ इधर उधर मारे-मारे फिरते हैं) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

५५ शब्दार्थ :—भौ = भव, संसार । विसद = १ सुन्दर २ स्वच्छ । वरन = १ वर्ण २ रंग । बानी = १ वाणी, वचन २ स्वभाव । सियरानी = १ सीता रानी २ शीतल हुई । नीरथ = १ अवतार २ तीर्थ ।

अर्थ :—राम-कथा को गंगा की धारा के समान वर्णित किया है ।

राम-कथा-पक्ष में :—कुश-लव (के) गुणों ('रस') से युक्त (है), देवताओं (ने) लय ('धुनि') से कह कर गाया (है); त्रिभुवन (स्वर्ग, नर्क और पाताल) जानता है (कि यह राम कथा) संतों के मन (को) अच्छी लगी है । संसार (से) छुटकारा दिलाने का देवताओं (ने) यही (एक) उपाय किया है; जिस (राम-कथा) के वर्ण सुन्दर (हैं), (और) (जिसके) वचन सुधा के समान (मृदु) हैं । पुण्यशील विष्णु राजा (के) रूप (में) शरीर-धारी (हुए) (और) सीता रानी स्वर्ग से पृथ्वी पर आईं । सेनापति (ने) (इस) अवतार (को) सब (का) शिरोमणि (सर्व-श्रेष्ठ) जाना ।

गंगा-पक्ष में :—कुश-लव (ने) प्रीति से ('रस करि') 'सुरधुनि' कह कर (जिसे) गाया (अर्थात् जिसका गुणानुवाद किया), त्रिभुवन जानता है

(कि गंगा) संतों के मन को भाई हैं (उन्हें प्रिय हैं) । संसार (रूपी सागर से) पार होने का देवताओं (ने) यही (एक) उपाय निकाला है; जिस (गंगा) का वर्ण (रंग) स्वच्छ (है), (और जिसका) स्वभाव मुधा के समान है (अर्थात् जो अमर कर देती है) । (जिसकी) लहर ('लहरि') पृथ्वी का पालन करने वाली (है), त्रिरूप (में) (अर्थात् तीन रूपों में), शरीर धारण किए हुए पुण्य के समान ('तिरूप देहधारी पुत्र सी'), स्वर्ग से, आई है; पृथ्वी शीतल हो गई है । सेनापति (ने) इसे सब तीर्थों (का) शिरोमणि जाना ।

अलंकार :—श्लेष ।

विशेष :—तिरूप—धार्मिकों के अनुसार गंगा की तीन धाराएँ बहती हैं—पहली स्वर्ग लोक में, दूसरी मर्त्य-लोक में, तथा तीसरी पाताल में । इसी से गङ्गा को 'त्रिपथगामिनी' कहते हैं ।

५६ शब्दार्थ :—उज्ज्वल = १ कान्तिमान् २ उज्ज्वल, स्वच्छ । लाल = १ पुत्र २ प्रिय व्यक्ति । वैन = १ वंशी (वेन) २ वचन । नग = १ पर्वत २ रत्न । गाइन कौं = १ गायों को २ गायकों को ।

अवतरण :—इस कवित्त में सूर्यवली अथवा सूरजवली नाम के किसी राजा का वर्णन है जिसकी समता कृष्ण से दी गई है ।

सूर्यवली-पद्म में :—(हे) सूर्यवली ! (तेरा) यश ('जमु') वीरों का सा (है) (अर्थात् कीर्ति वीरों की सी है); हे प्रिय व्यक्ति ! (तू) निर्मल (अथवा स्वच्छ) मति का है, (अपने मधुर) वचनों (को) मुनाकर चित्त को प्रसन्न करता है । सेनापति (कहते हैं कि) (तेरा) रूप मुन्दर रमणी ('मु रमनी') को सर्वदा वश (में) करने वाला (है); (तूने) सहायता करके सब की मनोकामना पूर्ण की है । (तू) अनेक रत्नों को धारण करता (है), (धन आदि देकर) गायकों को सुख देता (है); तू (ने) ऐसा अचल छत्र, ऊँचा करके, धारण किया है (अर्थात् तेरा राज्य अचल तथा सर्वश्रेष्ठ है) । (हे) महाराज ! कृष्ण (के) समान (अपने भी) अपने ब्रज (को) मुसलमानी सेना ('धार') से, भली प्रकार, बचा कर रक्खा है (रक्षा की है) ।

कृष्ण-पद्म में :—(हे) शूरवीर (तथा) बलवान्, यशोदा के कान्तिमान् पुत्र (कृष्ण) ! (तू) वंशी को मुनाकर चित्त को प्रसन्न करता है । सेनापति (कहते हैं कि) (तू) सर्वदा देवताओं (के) मणि (इंद्र) को वशीभूत करनेवाला (है); तू ने पर्वतों ('अचल') (के) ऐसे छत्र (को), ऊँचा करके, धारण किया

है, (तू ने) सहायता करके सब का कार्य पूरा किया है। (तू) गायों को सुख देता (है), अनेक पर्वतों के समूह (को) धारण करता (है)।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष।

विशेष :—१ 'नीके निज ब्रज...ई०' का एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है—(हे) महाराज ! कृष्ण (ने) जिस प्रकार अपने ब्रज (को) भली प्रकार (बचाया था) (वैसे ही) तू ('तैं') ने मुसलमानी सेना ('धार') बचाकर रखी (अर्थात् उसकी रक्षा की है)। इस अर्थ की दृष्टि से सूर्यवली मुसलमानों का सहायक माना जायगा।

२ ब्रजवासियों को अपनी पूजा न करते देख एक समय इन्द्र अत्यंत कुपित हुआ। उसने अत्यंत भयंकर उपलवृष्टि करनी प्रारंभ कर दी। उस अवसर पर कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ में उठाकर ब्रज-वासियों की रक्षा की थी।

५७ शब्दार्थ :—धानरन रान्वि = १ वन्दरों को रखता है २ रण में (अपना) हठ रखता है। लंकै = १ लंका को २ कमर को। वीर लछन = १ भाई लक्ष्मण २ वीर (के) लक्ष्मण। अंगद = १ बलि का पुत्र २ बाजूबन्द। हरि = १ चन्दर २ कृष्ण।

अर्थ :—वसुदेव का महा बलवान् (तथा) वीर बेटा कृष्ण तो, मेरी समझ में, राजा राम के समान है।

राम-पक्ष में :—वन्दरों को रखता है, वैरी (की) लङ्का को तोड़ डालता (है) (मिटा देता है अथवा नष्ट कर देता है); जिसका भाई लक्ष्मण (साथ में) शोभित है। (जो) अङ्गद को (अपना) सहायक ('बाहु') रखता (है) (अथवा अङ्गद को अपनी शरण में रखता है), दूषण (नामक दैत्य) को दूर करता (है) (अर्थात् उसके प्राण हर लेता है), वन्दरों (की) सभा (में) शोभित होता है (तथा) राजसी तेज का भांडार है। जिसे आँखों (से) देख सीता रानी आनन्द (में) मग्न (हैं); सेनापति (कहते हैं कि) जिसके सुवर्ण-नगरी का दान है (जिसने सोने की लङ्का विभीषण को दान कर दी है)।

कृष्ण-पक्ष में :—(जो) रण में (अपना) हठ रखता (है) (मन-चाही बात कर लेता है), वैरी (की) कमर तोड़ डालता है (मुख्य शक्ति नष्ट कर देता है) तथा जिसके वीरों (के से) लक्ष्मण विद्यमान हैं। (जो) बाहु (में) बाजूबन्द रखता (है) (धारण करता है)। कृष्ण सभा (में) शोभित होता है और राजसी तेज का भांडार है। आँखें जिसे देख शीतल हो गईं; (जो)

आनन्द (में) मग्न (रहता है); सेनापति (कहते हैं कि) जिसके हेम नगर का दान है (जिसने सुदामा को सुवर्ण-नगरी दे दी है) ।

अलंकार :—उपमा, श्लेष ।

विशेष :—‘दृग’—‘कवित्त-रत्नाकर’ में यह शब्द कई स्थलों पर स्त्री-लिंग में ही प्रयुक्त हुआ है ।

५८ शब्दार्थ :—उदै = १ वृद्धि, बढ़ती २ उदय । सूर = १ शूरवीर २ सूर्य । माहात्म्य २ महान् ग्रंथकार (‘महा तम’) । पदमिनी = १ लक्ष्मी (सीता) २ कमलिनी ।

अर्थ :—(मैंने) दशरथ के सुयोग्य पुत्र, धीर (तथा) बलवान् राजा राम (को क्या) देखा, मानों सूर्य को (देखा) ।

राम-पक्ष में :—जिसकी प्रत्येक दिन वृद्धि होती है (जिसकी महिमा दिन-दिन बढ़ती है), जिसने (अर्थात् जिसे देख कर) मन प्रसन्न (रहता) है; जिसके अत्यंत उत्साह से आए (हुए) पताका देखे जाते हैं । जिसे शूरवीर (कह) कर वर्णन करते हैं, सच का प्रिय कहते हैं, और वैरी (का) माहात्म्य (प्रतिष्ठा) जिसके द्वारा नष्ट हो जाता है (अर्थात् जो वैरियों के गर्व को चूर्ण कर देता है), जिसकी श्रेष्ठ मूर्ति सर्वदा शोभित होती है; सेनापति (कहते हैं कि) जो सीता (को) सुख देने वाला है ।

सूर्य-पक्ष में :—जिसका प्रत्येक दिन उदय होता (है), जिससे मन प्रसन्न (रहता) है; जिसके अत्यंत उत्साह-पूर्वक आने पर रात्रि नहीं (‘निसा न’) दिखलाई देती (अर्थात् रात्रि का अंत हो जाता है) । जिसे ‘सूर्य’ (कह) कर वर्णन करते हैं, सच का हितू कहते हैं (और) (जिसका) महान् वैरी ग्रंथकार जिससे (जिसके आने पर) गायब हो जाता है । जिसकी उत्तम सूरत प्रत्येक दिन शोभा पाती है । सेनापति (कहते हैं कि) जो कमलिनी (को) सुख-दायक है (कमलिनी को प्रस्फुटित करने वाला है) ।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष ।

५९ शब्दार्थ :—रसाल = १ आम २ प्रिय । मौर = १ मंजरी, बौर २ ताड़ के पत्तों का बना हुआ एक शिरोभूषण जो विवाह के समय वर को पहनाया जाता है । सिरस = शिरीष वृक्ष । रुचि = शोभा । लाज = १ लज्जा २ लाजा । भौरी = १ भ्रमरी २ भाँवर । अलि = १ भ्रमर २ सखी । वनी = वनस्थली ।

अवतरण :—एक पक्ष में कवि ने वसंत का वर्णन किया है दूसरे में प्रेमी तथा प्रेमिका के पाणिग्रहण का चित्रण है ।

वसंत-पक्ष में :—ग्राम (ने) मंजरियों (को) धारण किया है, शिरीषवृक्ष (की) शोभा उत्तम (है), ऊँचे वकुल (के वृक्षों के) सहित ('ऊँचे सबकुल') मिले (हुए हैं), गिनने (से) (जिनका) अंत नहीं (मिलता) है (असंख्य ग्राम तथा शिरीष के वृक्ष वकुल के वृक्षों के साथ लगे हुए हैं), निवारी (का वृक्ष) पवित्र है, अब वहाँ पर लज्जा (का) हवन हो गया (वसंत ऋतु के आगमन से नायक-नायिकाओं ने लज्जा का परि त्याग किया है); भ्रमरी (को) देख कर भ्रमर (को) बहुत आनन्द होता है । सूर्य ('अग') (की) कांति सुन्दर हो रही है ('अगवानी नीकी होति') (वसंत में सूर्य मुहावना लग रहा है—उसकी किरणें बहुत तेज नहीं हैं), उससे सब लोगों (को) सुख (है); बं लताएँ सजी ('सजी ते लताई') (लताओं ने कोमल किशलयों से अपने को आभूषित किया), चैन (से) लोगों के मन-मय विचार ('मंत') (हो रहे) हैं (लोगों के विचार कामुकता-पूर्ण हैं) । सेनापति (कहते हैं कि) पत्नी ('द्विज') शाखाओं (पर) कलरव कर रहे हैं; देवो वनस्थलि दूल्हन बनी हुई है (तथा) वसंत दूल्हा है ।

विवाह-पक्ष में—प्रियतम (ने) मौर धारण किया है, शिरीष (पुष्प) (की) शोभा उत्तम है (मौर पर शिरीष के पुष्प लगे हुए हैं), समस्त उच्चकुल (वाले लोग) एकत्रित हुए (हैं), गिनने (से) (जिनका) अंत (नहीं मिलता) (है) (बहुत से उच्च कुल वाले संबंधी एकत्रित हैं) । पृथ्वी जल (द्वारा) पवित्र (की गई) है, वहाँ (उस स्थल पर) लाजा (का) हवन हुआ, भाँवरों (को) देखकर सखियों (को) बहुत आनन्द होता है । सुन्दर अगवानी हो रही है, जनवासे (में) सब प्रकार (का) सुख (है), तेल (तथा) ताई सजी है, मायन (मैन') (में) लोग चैन (से) मदमत्त हैं । सेनापति (कहते हैं कि) ब्राह्मण वाणी (से) शाखोच्चार कर रहे हैं ।

अलंकार :—श्लेष, यमक, रूपक ।

विशेष :—१. लाजा—भून कर फुलाया हुआ धान, लावा । विवाह के अवसर पर इसके द्वारा हवन किया जाता है ।

२—विवाह के पूर्व वर और वधू के ऊपर हल्दी मिला हुआ तेल दूध द्वारा छिड़का जाता है । उसे 'तेल चढ़ाना' कहते हैं । जिस तिथि को मातृका पूजन और पितृ-निमंत्रण होता है उसे 'मायन' कहते हैं । विवाह के समय वर

बधू के वंश आदि के परिचय देने को 'शाखोच्चारण' कहते हैं ।

६० शब्दार्थ :—अयानी = अजान, निर्वुद्धि । जैवत ही वाके...
.....पराए हौ = भोजन करने के समय तो उससे घनिष्ठता रखते हो, किन्तु
हाथ धोते ही उससे अपना संबंध तोड़ देते हो अर्थात् अपना काम जब तक
नहीं निकलता तब तक तो तुम उससे बहुत घनिष्ठता जोड़ते हो, किन्तु काम
निकल जाने पर तुम ऐसे बन जाते हो मानो कोई अपरचित व्यक्ति हो ।
आरत = आर्त्त, दुखी । पहिले तो मन मोहौ.....कहाए हौ = १ पहिले तो
तुम मन को मोहित करते हो, पीछे हाथ तथा शरीर को भी मोहित कर लेते
हो (अर्थात् मन के मोहित हो जाने के बाद शरीर भी बेकाम हो जाता है) (प्रेम-
विभोर हो जाने के कारण उसमें शिथिलता आ जाती है); हे प्रिय ! तुम ठीक
हो 'मनमोहन' कहे जाते हो । २ पहले तो मन को मोहित करते हो, पीछे प्रेम
नहीं करते ('पीछे करत न मोहौ'); हे प्रिय ! तुम ठीक ही निर्मोही । ('मन मोह
न') कहे जाते हो ।

अलंकार :—परिकर, श्लेष ।

६१ शब्दार्थ :—मंजु = मनोहर । घोष = नाद । दुर्ति = शोभा ।
हरि = १ कृष्ण २ इंद्र । अधर = १ ओष्ठ २ जो पकड़ा न जा सके अर्थात्
अप्राप्य ।

अर्थ :—प्यारी इंद्रपुरी के भी मुखों की वर्पा करती है ।

स्त्री-पद्म में :—(जिसके) कपोल (का) उत्तम तिल अनुपम सौंदर्य को
जीत लेता है (अर्थात् जो बहुत सुन्दर है) (जो) प्रत्येक शब्द के बोलने में मनो-
हर नाद की वर्पा करती है । मैंने उर्वशी (माला) में (जैसी) उत्तम शोभा देखी
(वैष्णो) और किसी में ('काहू मै') नहीं (देखी) (स्त्री अत्यंत सुन्दर माला पहने
हुए है); युगल जङ्घाओं की शोभा केला को भी निरादृत करती है । तो सच-
मुच बताओ और (दूसरी स्त्री) ऐसी किस प्रकार है ? अर्थात् दूसरी स्त्रियाँ
इस प्रकार की नहीं हैं), स्त्री ('नारि') सर्वदा प्रिय कृष्ण की रति को करती है
(कृष्ण ही में अनुरक्त रहती है) । सेनापति (कहते हैं कि) पृथ्वी पर जिसके
ओठों में अमृत है (संसार में केवल उसी के ओठों में अमृत पाया जाता है) ।

इन्द्रपुरी-पद्म में :—तिलोत्तमा के कपोल का अनुपम रूप (मन को)
जीत लेता है (मन को अपने वश में कर लेता है), (जो) प्रत्येक शब्द में मनोहर
नाद की वर्पा करती है । (मैंने) (इन्द्रपुरी में) उर्वशी (तथा) मेनका में भी सरस

शोभा देली, जिसकी युगल-जङ्घाओं की शोभा रंभा को भी निरादृत करती है। भला इंद्राणी ('सच्ची') के समान दूसरी स्त्री किस प्रकार है? (अर्थात् किसी प्रकार नहीं है), (वह) सर्वदा प्रिय इन्द्र की प्रीति को करती है। सेनापति (कहते हैं कि), जिस (इंद्रपुरी) के (पास) पृथ्वी में अप्राप्य अमृत है।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप।

६२ शब्दार्थ :—गुरु = १. बृहस्पति नक्षत्र जिसका रंग पीला माना जाता है २ बृहत। मोतिन के = १. मोतियों के २ मुझे उनके ('मो तिनके') अर्थात् नायक श्रीकृष्ण के।

अर्थ :—मोतियों के पद्म में :—(बुलाक में लगे रहने पर) ओठों का रस ग्रहण करते हैं (ओठों को सर्वदा छूते रहते हैं), (माला के रूप में) गले (से) लिपट कर रहते हैं; सेनापति (कहते हैं कि) (जिनका) रूप चंद्रमा से भी बढ़कर है (चंद्रमा से भी अधिक उज्ज्वल है)। जो बहुत धन के हैं (जो बड़े कीमती हैं), मन को मुग्ध करने वाले हैं, हृदय पर धारण करने पर शीतल स्पर्श (का) सुख (होता) है। जिनके अत्यंत (अच्छी प्रकार) आने पर हाथी ('गज') राज गति प्राप्त करता है (अर्थात् मुक्ता आने पर ही हाथी को 'गजराज' की संज्ञा दी जाती है); (जिनके द्वारा) माँग ('मंग') शोभा प्राप्त करती है ('लहे शांभा') (माँग, मोतियों द्वारा भरी जाने पर, शोभित होती है), (जिनका) सुन्दर दर्शन बृहस्पति (का सा) है (अर्थात् मोतियों में हलका पीलापन है)। (हे) सखी ! मुन, (मैं) सच कहती हूँ मोतियों के देखने में जैसा आनंद है (वैसा) दूसरा आनन्द नहीं है (दूसरी वस्तुओं के देखने में वैसा आनन्द नहीं मिलता है)।

कृष्ण-पद्म में :—(जो) अधरामृत पान करते हैं, कंठ से लिपट कर रहते हैं, सेनापति (कहते हैं कि) (जिनका) रूप चंद्रपा से बढ़कर है। जो बहुत संपत्ति के हैं (जिनके पास अतुल संपत्ति है अथवा जिनकी अनेक प्रेमिकाएँ हैं), मन को मोहित करने वाले हैं, (जिन्हें) हृदय पर रखने पर (आलिंगन करने पर) शीतल स्पर्श का सुख (होता) है (चित्त को शांति मिलती है)। जिनके आते ही गजराज बड़ी (अच्छी) गति पाता है (जिनके पहुँच जाने पर गजराज ग्राह के त्रास से मुक्त हो जाता है); जिनकी छवि मंगल-प्रद है (तथा) जिनका श्रेष्ठ दर्शन सुन्दर है। (हे) सखी ! मुन, मुझे उनके (कृष्ण के) देखने में जैसा कुछ आनन्द (आता) है (वैसा) और आनन्द

नहीं है (कृष्ण के दर्शनों से अधिक आनन्द और किसी बात में नहीं है), (मैं) सच कहती हूँ ।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप ।

६३ शब्दार्थ :—माधव = १ कृष्ण २ वैशम्प । घनश्याम = १ कृष्ण २ मेघ ।

अर्थ :—माधव के बिछुरे तैं.....छाया घनश्याम की जो पूरे पुत्र पाइयें—

कृष्ण-पद्म में :—कृष्ण के वियोग से क्षण (भर) (भी) शांति नहीं मिलती, (विरह की ऐसी) अधिक जलन पड़ी है (हो रही है), मानों शरीर जला जा रहा है । जो संपूर्ण पुण्य (के कारण) कृष्ण की शरण मिले (कृष्ण से संयोग हो जाय) तो वृषभानु की सौगंध (ग्राहक कहती हूँ), (शरीर की) कुछ (भी) जलन न रह जाय ।

मेघ-पद्म में :—वैशम्प के बिछुड़ने से (व्यतीत होने से) क्षण (भर) भी शांति नहीं मिलती, बहुत गरमी पड़ी है, मानों शरीर जला जा रहा है । जो संपूर्ण पुण्य (के कारण) काले बादलों की छाया मिले तो वृष (राशि के) मूर्य की गरमी कुछ (भी) न रह जाय (इतनी दुखदाई न प्रतीत हो) ।

६४ शब्दार्थ :—लाल = १ कृष्ण अथवा नायक २ मानिक । वलि = सखी ।

विशेष :—दूती ने नायक ('लाल') का सँदेसा नायिका से आकर कहा । इतने ही में सास आ गई । नायिका ने दूती द्वारा प्रयुक्त 'लाल' शब्द का दूसरा अर्थ 'मानिक' लिया ताकि सास के मन में किसी प्रकार की शंका न हो । उसने अपना भी उत्तर श्लिष्ट ही दिया है । उसने 'जिसे तू लाल कहती है उसे मैं हार में पिरोऊँगी' तथा 'कृष्ण को मैं हार बनाऊँगी—गले से लगाऊँगी,' इन दो अर्थों को व्यक्त किया ।

६५ विशेष :—विरहिणी नायिका बेहोश सी हो रही थी । सखियों ने उसके कान में कृष्ण का नाम कहा जिससे उसे चेत हो आया । गुरु-जनों के समीप होने के कारण नायिका अत्यन्त लज्जित हो गई, क्योंकि वे उसे बीमार समझते थे । गुरुजनों की शंका के निवारणार्थ नायिका ने ऐसे श्लिष्ट-वचन कहे जिससे सखियों को उसके अगाध प्रेम का परिचय मिल गया तथा नैटन आदि की शंका भी निर्मल हो गई । वह बोली—१ त कौन है ? कहाँ

से आई है ! हे सखी ! मैं अपने वश में नहीं हूँ (कृष्ण के वियोग में मेरी मति भ्रष्ट हो गई है); तू ने 'कृष्ण-कृष्ण' कह कर कानों में मधुर ध्वनि की (जिससे मुझे थोड़ा सा चेत हो आया) । २ कौन है, कहाँ से आई है ? (तू ने आकर) 'कान्ह कान्ह' कह कर हैरानी ('कलकान' अथवा कलकानि) की (अर्थात् मैं तो यों ही अपने ज्वर के कारण वेसुध पड़ी थी, ऊपर से तू और बक-बक करने लगी जिससे मैं बहुत हैरान हो गई हूँ) ।

६६ शब्दार्थ :—सूल = १ पीड़ा, कसक २ माला का ऊपरी भाग ।

अवतरण :—उद्धव ने गोपियों को समझाया कि कृष्ण ब्रह्म हैं । वे सब पर समान प्रीति करते हैं । तुम में तथा कुब्जा में कोई भेद नहीं है । गोपियाँ उद्धव के वचनों के दूसरे ही अर्थ करती हैं और यह दिखाती हैं कि कुब्जा तथा उनकी स्थिति में बहुत भेद है । इस कवित्त में एक ओर गोपियाँ तथा कुब्जा का एक सा चित्रण किया गया है, दूसरी ओर दोनों में विषमता दिखलाई गई है ।

अर्थ :—(हे) उद्धव ! हम (तथा) वे (अर्थात् कुब्जा) किस कारण से समान (हैं), (उस कारण को हमसे) कहो, (क्योंकि) उन्होंने (अपने को) सुखी माना है (तथा) हम ने (अपने को) दुखी मान लिया है (तात्पर्य यह कि यदि कृष्ण हमको कुब्जा की ही भाँति चाहते हों तो हम अपने को दुखी क्यों समझतीं) ।

समता-सूचक-पक्ष में :—कुब्जा (ने) (कृष्ण को) हृदय (से) लगाया है, हम (ने) भी (उन्हें) हृदय (से) लगाया; प्रियतम दोनों के (यहाँ) रहता (है) ('पी रहै दुहू के'), (हम दोनों ने अपने) तन (तथा) मन (को) (कृष्ण पर) निछावर कर दिया है । रति (के) योग्य वह तो एक (ही) (है) (अर्थात् निराली है), हम (भी) रति (के) योग्य एक (ही) (है); (कृष्ण ने) उनके हृदय (में) (प्रेम की) पीड़ा उत्पन्न कर हमारे (हृदय में भी) पीड़ा (उत्पन्न) की है (अर्थात् जहाँ उन्होंने उनसे प्रेम किया है वहाँ हमसे भी किया है) । इस प्रकार कुब्जा सुख ('कल') पाएगी, यहाँ पर हम (भी) सुख पाएँगी; सेनापति (कहते हैं कि) कृष्ण इस प्रकार (हम दोनों को) समझते हैं (हम दोनों को एक सा समझते हैं क्योंकि वे) प्रवीण हैं ।

विषमतासूचक-पक्ष में :—कुब्जा (ने) (कृष्ण को) हृदय (से) लगाया, हम (ने) भी पीड़ा ('पीर') हृदय (से) लगाई; (हम) दोनों के तन मन है (जिसे)

(हम दोनों ने कृष्ण पर) निछावर कर दिया है (अर्थात् यद्यपि कुब्जा के पास हमारी ही भाँति तन तथा मन है और उसने भी हमारी तरह अपने तन-मन को कृष्ण पर निछावर कर दिया है फिर भी हम दोनों की परिस्थिति भिन्न है—उसने कृष्ण को हृदय से लगाया और हमें केवल विरह-वेदना मिली) । केवल वे रति (के) योग्य (हैं), हम तो यह योग (साधना) करती हैं ('हम ए करति जोग'); (कृष्ण ने उनके गले में) माला पहना कर (उनका पाणिग्रहण कर) हमारे (हृदय में) शूल (उत्पन्न) किया है । कुब्जा इस प्रकार सुख पाएगी (और) यहाँ पर हम कलपती हैं ('कलपै हैं'); कृष्ण ही (इस लीला को) समझें (क्योंकि वे) इतने प्रवीण हैं (कृष्ण ही अपनी इन मायावी लीलाओं का भेद जानें) ।

अलंकार :—इस कवित्त में श्लेपालंकार नाम-मात्र को केवल एक स्थल पर है ('पी रहै' को भंग-पद-श्लेष द्वारा 'पीर है' करके अर्थ लगाना पड़ता है) । बाकी सारे कवित्त में भंग-पद-यमक व्याप्त है । जहाँ एक शब्द के दो बार प्रयुक्त होने के कारण दो अर्थ निकलते हैं वहाँ यमक मानी जाती है । श्लेष में एक ही शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

विशेष :—पहली पंक्ति में गति भंग दोष है । दो 'विपमों' ('कुत्रिजा' तथा 'लगाई') के बीच में एक 'सम' ('उर') रक्खा हुआ है ।

६७ शब्दार्थ :—वाग = १ लगाम २ वाटिका । सिर कटाहैं = १ सिर कटा देते हैं २ शृगाल ('सिरकटा') हैं । रज = १ क्षात्र धर्म, रजपूती २ धूल । कर करैं = १ रक्षा करते हैं २ बलिष्ठ व्यक्ति की ('करकरैं') ।

अर्थ :—शूर-पक्ष में :—कई कोसों तक निकाल कर (अपने वैरियों को भगा कर) पीछे को नहीं देखते (आगे बढ़ते हुए वैरियों को भगाते जाना ही उनका काम है, (पीछे की ओर देखना तो वे जानते ही नहीं हैं); तलवार लेकर लगाम लिए (हुए) शोभा पाते हैं (घोड़े पर चढ़कर हाथ में लगाम लिए शोभित होते हैं); सकट पड़ने पर, साहस के समय, (अपना) सिर कटा देते हैं (वीरता के समय उन्हें प्राणों तक की चिंता नहीं रहती); शक्ति से भी लड़कर ('लरि') मर्यादा ('कानि') को छोड़ देते हैं (अर्थात् ऐसे वीर हैं कि यदि स्वयं दुर्गा युद्धस्थल में आ जायें तो उनसे भी निडर हो कर युद्ध करते हैं, यद्यपि ऐसा करने में मर्यादा का उल्लंघन हो जाता है फिर भी उन्हें इसकी चिंता नहीं होती है) । नगाड़ा खत है (उनके आगे डंका दज्जा चलता है);

युद्ध में रजपूती (से) पूर्ण रहते हैं (क्षात्र धर्म का पालन करते हैं); सेनापति (कहते हैं कि) वीर से लड़ते समय हाथ जोड़ते हैं; इसी से शूर (तथा) कायर एक से जान पड़ते हैं ।

कायर-पक्ष में :—कई कोसों से (कई कोसों तक भागने पर भी) पीछे (के) मैदान (निकास) को नहीं देखते (युद्ध से इतना भयभीत हो जाते हैं कि कोसों भाग चुकने पर पीछे की ओर मुड़कर देखने का साहस नहीं करते), तलवार लेकर (किसी) वाग (में) पहुँचते (हैं) (और वहाँ) आमोद-प्रमोद करते हैं । साहस के समय, संकट पड़ने पर, शृगाल हैं (आपत्ति के समय शृगालों की भाँति भाग जाते हैं), तिनका (खड़कने के शब्द की) शंका से ही ('सक तिन हूँ सौ') लड़कों को छोड़ देते हैं (थोड़े से अनिष्ट की आशंका से इतने भयभीत हो जाते हैं कि लड़के-बच्चे छोड़कर भाग खड़े होते हैं) । (जो) आत्म-सम्मान ('गारौ') नहीं रखते, समर में धूल (से) परिपूर्ण रहते हैं (युद्ध-भीरु होने के कारण संग्राम भूमि में सत्र से आगे न रहकर पीछे की ओर रहते हैं और धूल खाया करते हैं); जो सदा बलिष्ठ व्यक्ति (की) शरण को खोजा करते हैं (जिससे कि वे सुरक्षित रहें) । सेनापति (कहते हैं कि) (कायर) वीरों से लड़ते समय हाथ जोड़ते हैं (अर्थात् अधीनता स्वीकार करते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष ।

६८ शब्दार्थ :—आरवी = भीषण शब्द ।

अर्थ :—सेनापति (ने) महाराज रामचन्द्र (का) वर्णन किया है अथवा सुधारे (हुए) हाथियों (का वर्णन किया है), (जो) सवारी के लिए उपयुक्त हैं ।

राम-पक्ष में :—करोड़ों गढ़ों (तथा) पर्वतों (को) ढहा देते हैं (यद्यपि) जिनके पास (कोई) किले नहीं हैं ('दुरग ना हैं') जिनके बल की शोभा महान् (है), (और जो) भीषण हुंकार सहित हैं (अर्थात् जिनकी एक हुंकार में सृष्टि को उलट-पुलट कर देने की शक्ति है । जिसमें सदा अत्यंत मंद (तथा); गम्भीर गति देखी जाती है (जो मन्द-मन्द गति से मनोहर चाल चलते हैं); मानों वे मेघ (हैं) (उनका वर्ण मेघों का सा है); (जिन्होंने) (अपना) तेज नित्य कर रखा है ('तेज करि राखे नित हैं') (जिनका तेज सर्वदा एक सा रहता है) । महान् डगों से चलते (हैं) (वामनावतार में जिन्होंने दो डगों में ही सारा ब्रह्मांड नाप लिया था) (जिन्होंने) (संसार को) कर्मों के आधीन कर

रक्खा है; सब (लोग) कहते हैं (कि ये) समुद्र (में) रहते हैं ('सिंधु रहें') (अर्थात् राम क्षीरसागर में शेष-शय्या पर सोने वाले विष्णु के अवतार हैं), (जो) प्रत्येक स्थान में ('दर-दर') (अर्थात् सब लोगों के) हितू हैं (सब पर समान अनुराग रखने वाले हैं) ।

हाथियों के पक्ष में:—करांडा गढ़ा (तथा) पर्वता (का) ढहा देते हैं, जिनके लिए दुर्ग (कोई चीज) नहीं है (बड़े-बड़े दुर्गों को जो कुछ नहीं सम-भक्ते); जिनके बल की छवि महान् (है), (और जो) (भीषण) चिंगाड़ सहित हैं । जिनमें सदा अत्यंत मंद गति देखी जाती है, (और जो बहुत) बड़े (हैं); वे मानों बादलों (से) (हैं) (बादलों के समान हैं), वे ('ते') नित्य (जन्जीरों से) जकड़ कर रखे गए हैं । डगो से चलते (हैं), (उन्हें) महावतो (ने) भली प्रकार वश (में) कर रक्खा है, सब (लोग) उन्हें 'सिंधुर' (हाथी) कहते हैं; (वे) दया ('दरद') रहित हैं ।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा ।

६६ शब्दार्थ :—पारिजात = समुद्र मंथन के समय निकला हुआ एक वृक्ष । यह इंद्र के नंदन कानन में है । कहते हैं कि इसकी शाखाओं में अनेक प्रकार के रत्न लगे रहते हैं । यह अतुल संपत्ति का देने वाला है । प्रसिद्ध है कि सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण इसे स्वर्ग में इंद्र से युद्ध करके लाए थे और पुनः उन्हें लौटा आए थे । सुर मनी = १ देवताओं के मणि, इंद्र २ सुंदर रमनी ('सु रमनी') । वैन = १ वचन २ वंशी ।

अर्थ:—राजा दशरथ के पुत्र रामचंद्र के गुण मानों वसुदेव के पुत्र (कृष्ण) के (से हैं) ।

राम-पक्ष में:—राम 'सत्य' कामनाओं को पूर्ण करते हैं (याचक को उसकी इच्छानुकूल वस्तु देते हैं), स्त्री ('भामा' = सीता जी) (के) सुख (के) सागर हैं (सीता जी को असीम आनंद देने वाले हैं), (अपने) हाथ के बल से पारिजात को भी जीत लेते हैं (अपने हाथों से इतनी संपत्ति दे डालते हैं कि पारिजात के बहुमूल्य रत्न उसके सामने नितांत तुच्छ लगते हैं (जितना धन वे दे डालते हैं, पारिजात उतना नहीं दे सकता है) । सेनापति (कहते हैं कि जो सर्वदा बल, वीरता, धैर्य तथा सुख (से) शोभित होते हैं (सर्वदा प्रसन्न रहते हैं आनंदमय हैं), जो युद्ध में विजय की वाजी रखते हैं (सर्वदा विजयी होते हैं) । (जिनका रूप अनुपम है, इंद्र को मोहित करने वाला है, जिनके वचन सुनने

पर महापुरुषों के (हृदयों को) शांति मिलती है ।

कृष्ण-पद्म में :—सत्यभामा (की) इच्छा पूर्ण करते हैं (पारिजात को इंद्र के यहाँ से ले आते हैं), सुख (के) सागर हैं, (अपने) बाहु-बल (से) पारिजात को भी जीत लेते हैं (जीत कर ले आते हैं) । सेनापति (कहते हैं कि) (जिनके) धैर्यवान् भाई ('वीर') बलराम सर्वदा सुख (से) शोभित हैं (जिनके भाई बलराम सर्वदा प्रसन्न-वदन शोभित होते हैं), जो युद्ध में विजय (की) बाजी (अपने) हाथ रखते हैं (सर्वदा विजयी होते हैं) । (जिनका) रूप अनुपम है, सुन्दर रमणियों को मोहित करने वाला है । जिनकी वंशी सुनने पर महापुरुषों के (हृदयों को) शांति होती है ।

अलंकार :—उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक, प्रतीप ।

७० शब्दार्थ :—वीरै = १ वीरों को २ पान के बीड़े को । अरि = १ वैरी २ सखी (अलि) । निरवारै = १ रोकती है २ त्याग देती है । वारन = १ प्रहारों को २ आवरण, परदा । आड़ = १ रुकावट २ लंबी टिकली जिसे स्त्रियाँ मस्तक पर लगाती हैं । नीर = १ कांति २ जल ।

अर्थ :—तलवार पद्म में—(अनेक) वीरों को मार रही है, इससे रक्तमुख वाली (तलवार) शोभित है; वैरियों की शंका छोड़, ध्यान से निकल कर चली है (अर्थात् उससे बहुत से वार किए गए हैं) । प्रहारों (को) रोकती है, पुनः हार को भी भुला देती है (हारना तो जानती ही नहीं) रुकावटों (की) परवाह नहीं करती (विघ्नों की उसे चिंता नहीं), (उसकी) संपूर्ण धार कांतियुक्त है । सेनापति (कहते हैं कि जो अपने) प्रभुओं को सचेत रखती है, जो शरीर की अनुकूल स्थिति जान (सुयोग्य अवसर देख) पहले ही वार कर देती है । जिसकी ओर झुक पड़ती है, उसे मार कर (रक्त से) लाल कर देती है; (इस प्रकार) युद्ध (में) राम की तलवार (स्त्री के समान) फाग खेलती है ।

स्त्री-पद्म में :—पान खाए हुए है, इससे मुख लाल किए हुए शोभित है; सखियों की भीड़ की (अर्थात् सखियों की) शंका को छोड़ निर्लज्ज होकर इधर-उधर फिरी है (उसे इस बात की शंका नहीं है कि उसकी सखियाँ उसे बुरा कहेंगी) । परदा त्याग देती है, पुनः (फाग खेलने की धुन में) हार खो देती है, आड़ (को) भी भुला देती है, एड़ी से लेकर चोटी तक पानी से तर (है) । सेनापति (कहते हैं कि जो) (अपने) प्रेमियों को होशियार रखती है, जो शरीर की अनुकूल स्थिति देखकर, पहले ही (पिचकारी की) धार चला

देती है। जिसकी ओर भुक् पड़ती है उसे एकदम ('मारि') (रंग से) लाल कर डालती है।

अलंकार :—रूपक, श्लेष।

७१ शब्दार्थ :—त्रिभंगी = १ कुटिल, घुँघुराले २ वह व्यक्ति जिसके खड़े होने में पेट, कमर, तथा गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है; कृष्ण। रस = १ जल २ काम-क्रीड़ा केलि। उमहत हैं = उमंग में आते हैं; प्रसन्न होते हैं। नेह = १ तेल २ स्नेह। केसौ = १ बाल २ कृष्ण।

अर्थ :—बालों के पक्ष में :—(हे सखी ! यद्यपि मेरे बाल) बड़े (हैं), पर (ये) कुटिल (हैं), ये जल में भी सीधे नहीं होते (अर्थात् स्नानादि करने पर भी ये घुँघुराले बने रहते हैं)। सुन्दर स्वाभाविक श्यामता धारण करते हैं (मैंने) (इनमें) सिर (पर) धारण कर (तथा) लज्जा छोड़कर, (इनकी) सेवा की इससे (घर) (के) नीरस बड़े-बूढ़े कठोर वचन ही कहते हैं (अर्थात् मैं निर्लज्ज की भाँति नित्य सिर खोल कर बालों को झाड़ने में संलग्न रहती हूँ इसी से गुरुजन मुझे डाँटा करते हैं)। मृग-नयनी, कृष्ण को मुनाकर, सखी से कहती है; कानों (में) (इन) चतुराई (भरे वचनों के) पड़ने पर कृष्ण प्रसन्न होते हैं। और किसी (वस्तु) की बात ही क्या, पुष्प के तेल (से) चिकनाने पर (भी) मेरे, प्राणों से (भी) प्रिय; बाल रूखे ही रहते हैं (तेल छोड़ने पर भी इनका रूखापन नहीं जाता है)।

कृष्ण-पक्ष में :—(कृष्ण यद्यपि) बड़े (हैं) पर (ये) त्रिभंगी (हैं) (महान् पुरुष होते हुए भी ये बड़े कुटिल हैं) !, काम-क्रीड़ा (के समय) भी सीधे नहीं होते (इनका नटखटपन उस समय भी चलता रहता है), सुन्दर स्वाभाविक श्यामता धारण करते हैं। (मैंने) (इनको) सादर अंगीकार कर लज्जा छोड़कर (इनकी) सेवा की; इसी से नीरस गुरु-जन कठोर वचन ही कहा करते हैं। और किसी की बात ही क्या, मन ('सुमन') के स्नेह (से) चिकनाए जाने पर (भी) मेरे, प्राणों से (भी) प्रिय, कृष्ण (सुभ्रसे) विरक्त ही रहते हैं (यद्यपि हम ने अपना मन तक कृष्ण को दे दिया है फिर भी वे मुझ पर अनुरक्त नहीं हैं)।

अलंकार :—श्लेष।

विशेष :—अंतिम पंक्ति में गति-भंग दोष है।

७२ शब्दार्थ :—रस = १ प्रीति २ धातुओं को फूँक कर बनाई हुई भस्म, जैसे अभ्रक, चंद्रोदय आदि। नारी = १ स्त्री २ नाड़ी।

अर्थ:—स्त्री-पद्म में—सेनापति (कहते हैं कि) जिसके घर के रहने (से) मुख मिलता (है), जिससे चित्त को भली प्रकार तुष्टि होती है। जिसकी सुन्दर भक्ति (‘सुभगति’) (पति-भक्ति) देखने पर (उससे) बहुत प्रीति मानी जाती है, (जिसके) थोड़ा (सा) न चोलने पर (अर्थात् रूठ जाने से) मन आकुल हो उठता है। (वही स्त्री) आँखों के सामने, देखते ही देखते गायब हो गई (भाग गई), (उसका) हाथ पकड़ कर रक्खा, (किंतु) वह किसी प्रकार नहीं ठहरी। (उसे) सर्वस्व जान कर, बार बार प्रीति देकर रक्खा (अर्थात् उससे प्रेम कर अपने बश में रखना चाहा), (किंतु) स्त्री (इस प्रकार छूट गई (चली गई) जैसे नाड़ी छूट जाती है।

नाड़ी-पद्म में :—सेनापति (कहते हैं कि) जिसके नियत स्थान के रहने (से) मुख मिलता (है), (और) जिससे चित्त को भली प्रकार तुष्टि होती है। जिसकी उत्तम चाल (‘सुभ गति’) देखने पर (उससे) बहुत प्रीति मानी जाती है (क्योंकि नाड़ी की गति ठीक होना शुभ लक्षण है), (उसके) थोड़ा (सा) न चलने पर (थोड़े समय के लिए रुक जाने से) चित्त उद्विग्न हो उठता है। (वह) आँखों के सामने देखते ही देखते गायब हो गई (क्रिया शून्य हो गई), (वैद्य) हाथ पकड़े रहा (नाड़ी की गति की परीक्षा करता रहा) (किंतु) वह किसी प्रकार नहीं ठहरी। (उसे) सर्वस्व जान कर (रोगी को) रस (आदि) खिला कर रक्खा (पर नाड़ी छूट गई)।

अलंकार :—यमक, उदाहरण, श्लेष।

७३ शब्दार्थ :—धाम = १ गृह २ किरण । अंबर = १ वस्त्र २ आकाश । मित्त = १ मित्र, २ सूर्य ।

अर्थ :—मित्र पद्म में—जिसकी ज्योति पाकर (जिसके दर्शन मिलने से) संसार जगमगा उठता है (अच्छा लगने लगता है); पद्मिनी (स्त्रियों का) समूह (जिसके) पैरों (तक को) नहीं पहुँचता है (जिसके चरण पद्मिनी स्त्रियों से कहीं सुन्दर हैं)। जिसके देखने से हृदय-कमल प्रसन्नता (से) प्रस्फुटित हो जाता (है); (जिसको) पाकर (हृदय) के नेत्र खुल जाते हैं (हृदय का अंधकार दूर हो जाता है) (और) मुख बढ़ जाता है। (जो) घर की निधि है (घर में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति है), जिसके सामने चंद्रमा (की) छवि मंद (है) (जो चंद्रमा से भी सुन्दर है); (जिसका) रूप अनुपम है, (जो) वस्त्रों के मध्य में शोभित है (जो नाना प्रकार के सुंदर वस्त्र धारण किए हुए है), जिसकी सुंदर मूर्ति नित्य

शोभित होती है, सेनापति (कहते हैं कि) वही मित्र चित्त में बसता है ।

सूर्य-पक्ष में :—जिसके प्रकाश (को) पाकर संसार जगमगा उठता है (चारों ओर प्रकाश फैल जाता है), (जो) किरणों से कमलिनी समूह (को) स्पर्श करता है । जिसके देखने से कमल का कोप प्रसन्नता (से) प्रस्फुटित हो जाता है, (जिसे) पाकर नेत्र खुल जाते हैं (निद्रा भंग हो जाती है), (तथा) सुख बढ़ता है । (जो) किरणों का खजाना है, जिसके सामने चंद्रमा (की) छवि मंद (हो जाती है) (अर्थात् चंद्रमा अस्त हो जाता है), (जिसका) रूप बेजोड़ है, (जो) आकाश में शोभित होता है । जिसकी उत्तम मूर्ति प्रत्येक दिन शोभित होती है; सेनापति (कहते हैं कि) वही सूर्य चित्त में बसता है (उसकी हम आराधना करते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष; प्रतीप ।

७४ शब्दार्थ :—तारन की = १ नेत्रों की २ तारों की । जगतै = १ संसार २ जागता हुआ । द्विज = १ ब्राह्मण २ पक्षी । कौशिक = १ विश्वामित्र २ उल्लू । सज्जन = १ भला पुरुष २ शय्याएँ (सज्जा = शय्या) । हरि = विष्णु । रवि अरुन = लाल सूर्य (उदय होता हुआ सूर्य) । तमी = रात्रि ।

अर्थ :—(इस) कविता (के) वचनों की (यह) मर्यादा (है) (कि) (इसमें) सेनापति विष्णु, लाल सूर्य, (तथा) रात्रि का वर्णन करता है (कवि का अभिप्राय यह है कि हमारी वाणी की मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा इसी में है कि उससे विभिन्न पक्षों के अर्थ बरबस निकलते चले आते हैं) ।

विष्णु-पक्ष में :—जिससे मिलने पर नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है (हृदय का अज्ञान दूर हो जाता है और अंतर्दृष्टि की ज्योति स्वच्छ हो जाती है); जिसके पैरों के साथ में समुद्र ('नदीप') शोभित होता है (शेष-शय्या पर लेटे हुए विष्णु अपने चरणों की द्युति से क्षीरसागर को शोभित करते हैं) । जिसके हृदय (का) प्रकाश ऊपर, नीचे, (तथा समस्त) संसार में जाना जाता है, (संसार) में जो कुछ प्रकाश है वह सब उसी की ज्योति की झलक मात्र है) । वह उसी (संसार) (के) मध्य (में) व्याप्त है, (तथा) जिसके मध्य (समस्त) संसार रहता है (विष्णु जगत् में रहता है और समस्त जगत् उसमें रहता है) । द्विज विश्वामित्र (जिसकी कृपा से) सब प्रकार से (अपनी) कामना पूर्ण करते हैं) अपने अभीष्ट की सिद्धि करते हैं; जिसे सज्जन (व्यक्ति) भजता है (तथा) (जिसके) माहात्म्य (में) प्रीति (से) अनुरक्त रहता है (गुणानुवाद किया करता है) ।

सूर्य-पक्ष में :—जिससे मिलने पर नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है (सूर्योदय होने से नेत्र सांसारिक वस्तुओं को भली प्रकार देख सकते हैं); जिसकी किरण ('पाइ') (के) साथ में दीप नहीं ('मैं न दीप') शोभित होता है (सूर्योदय होने पर दीप की ज्योति मलिन हो जाती है) । (जिसके) उर (का) प्रकाश ऊपर, नीचे, (तथा समस्त) संसार में जाना जाता है; सोता हुआ ('सोउत') व्यक्ति ही जिसके मध्य (जिसके रहने पर) जगता रहता है (जो लोग रात्रि में सोए हुए थे वे ही सूर्य के निकलने पर जगते रहते हैं; अन्य प्राणी जैसे चोर अथवा उल्लूक सूर्य के निकलने पर सो जाते हैं) । उल्लू पक्षी (अपना) मनोरथ नहीं पूर्ण कर पाता है ('काम ना लहत द्विज कौसिक'); सज्जन (व्यक्ति) सब प्रकार से (सूर्य की) पूजा करता है (और) महान् अंधकार से मुक्त होता है ('महा तमहि तरत है') ।

रात्रि-पक्ष में :—जिसमें मिलने पर नक्षत्रों की ज्योति स्वच्छ होती है (रात्रि आने पर नक्षत्र चमकने लगते हैं); जिसका साथ पाने पर कामदेव (का) दीपक तेज होता है (रात्रि के समय अधिक कामोदीपन होता है) ('मैं न दीप सरसत हैं') । (रात्रि के) बीच ('उर') ऊपर, नीचे, (तथा समस्त) संसार (में) प्रकाश नहीं ('भुव न प्रकास') जाना जाता है (रात्रि में चारों ओर अंधकार रहता है), जिसके मध्य (सारा) संसार सोता ही रहता है ('सोउत ही मध्य जाके जगतै रहत है') । उल्लू पक्षी, सब प्रकार से, अपनी मनोकामना लहता है (प्राप्त करता है); (मनुष्य) शय्याओं (को) भजता हुआ धने अंधकार से मुक्त होता है (अर्थात् शय्याओं पर सोकर लोग रात बिताते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक ('सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है') ।

विशेष :—रामायतार में विष्णु ने विश्वामित्र के साथ जाकर उनके यज्ञों की रक्षा की थी ।

७५ शब्दार्थ :—तिमिर = १ अज्ञान २ अंधकार । राम = १ रामचंद्र २ अभिराम, रम्य । दुरजन = १ दुष्ट जन २ दुष्ट रात्रि ('दु + रजन') । धन = १ संपत्ति २ धन राशि, जिसमें सूर्य की गरमी मंद पड़ जाती है, दिन बहुत छोटा होता है, तथा रात्रि बड़ी होती है । दिनकर = १ सूर्य २ दिन करनेवाला ।

अर्थ :—राम-पक्ष में :—जिसका प्रबल प्रताप सातों द्वीपों (में) तपता है (जिसका आतंक सर्वत्र है); (जो) तीनों लोकों (के) अज्ञान के समूह (को)

नष्ट करता है। सेनापति (कहते हैं कि) रामचन्द्र रूपी सूर्य देखने में अनुपम (है); जिसे देखने से समस्त अभिलाषाएँ फलती हैं। (हे) नीच ! उसी (को) हृदय में धारण करो, दुर्जन को भुला दो, (क्योंकि) (वह) महा तुच्छ थोड़ा धन पाकर बहुत प्रसन्न हो जाता है। श्रेष्ठ देवताओं (की) सभा (में) सर्वश्रेष्ठ, सब प्रकार पूर्ण, यह सूर्य (वंशी) वीर उबल नहीं पड़ता है (अपने प्रभुत्व का इसे थोड़ा सा भी गर्व नहीं है)।

सूर्य-पक्ष में :—जिसका प्रचंड ताप ('प्रताप') सातों द्वीपों (में) तपता है, (जो) तीनों लोकों (के) ग्रंथकार के समूह (को) नष्ट करता है। सेनापति (कहते हैं कि) रम्य रूप (वाला) रवि देखने में अनुपम (है), जिसे देखने से समस्त अभिलाषाएँ फलती हैं। (हे) नीच ! उसी (को) हृदय में धारण करो (उसी की आराधना करो), दुष्ट रात्रि को भुला दो, (क्योंकि) (वह) महा तुच्छ थोड़ा (सा) (कुछ दिन के लिए) धन (राशि) (को) पाकर उबल पड़ती है (बहुत बड़ी हो जाती है)। श्रेष्ठ सूर्य उत्तम किरणों सहित ('सुर वर स भा रुरौ'), सब प्रकार पूर्ण (है), यह दिन करने वाला सूर्य (पुनः) उत्तरायण चला आता है (यद्यपि धनराशि में थोड़े दिनों के लिए सूर्य का प्रभुत्व कुछ कम हो जाता है तथापि थोड़े समय बाद वह फिर उत्तर की ओर आ जाता है और उसकी प्रचंडता पहले की सी हो जाती है)।

अलंकार :—श्लेष, रूपक। अंतिम पंक्ति से व्यतिरेक अलंकार भी ध्वनित होता है। दिनकर-वंश के सूर्य राम में यह विशेषता है कि वे उत्तरायण नहीं चलते हैं। सर्वदा लोगों पर कृपा-दृष्टि बनाए रखते हैं। उनके प्रबल प्रताप के कारण कभी किसी को दुःख नहीं पहुँचता है। किंतु सूर्य कुछ दिनों के लिए उत्तरायण चला जाता है और उसी समय भीषण गरमी पड़ती है।

७६ शब्दार्थ :—वसुधा = पृथ्वी। लुत्रपति = राजा। सूर = १. शूर-वीर २. सूर्य। चल = अस्थिर।

अलंकार :—इस कवित्त में प्रतीप अलंकार व्याप्त है। श्लेषालंकार तो इसमें कहीं है ही नहीं। पहली पंक्ति के दो अर्थ निकलते हैं :—१. तेरे (पास) सुन्दर पृथ्वी है, उसके (चंद्रमा के) (पास) तो पृथ्वी नहीं है, तू तो राजा (है), वह राजा नहीं माना जाता है। २. तेरे पास सुन्दर पृथ्वी है तो उसके (पास) नवीन सुधा है ('नव सुधा है'), तू तो राजा (है), वह (भी) नक्षत्रों (का) स्वामी माना जाता है। किंतु ये दोनों अर्थ भंग पद-यमक द्वारा प्राप्त होते हैं, न

कि श्लेष द्वारा । ६६ वें कवित्त में भी इसी प्रकार यमक द्वारा दो अर्थ लगाए गए हैं ।

७७ शब्दार्थ :—अरस (अ० अर्थ)=१ आकाश २ स्वर्ग । घन-स्याम=१ मेघ २ कृष्ण । बरसाऊ=बरसने वाले ।

अवतरण :— एक पद में कोई व्यक्ति अथवा स्वयं कवि आकाश में आच्छादित मेघों से बरसने के लिए चिनय कर रहा है । दूसरे पद में कोई स्त्री कृष्ण से प्रेम की याचना कर रही है ।

अर्थ:—मेघ-पद में—(तुम्हारी बूंदों के) उत्तम स्पर्श से आँखें शीतल हो जातीं, हृदय की ताप शांत हो जाती, शरीर (का) रोयाँ रोयाँ प्रसन्न हो जाता । हम तुम्हारे आधीन (हैं), तुम्हारे बिना अत्यंत दीन (हैं), (नहीं तो) जल-विहीन मीन (के) समान (हम) क्यों तरसते ? (हमारी परवशता तो इसी से सूचित हो जाती है कि वृष्टि न होने से हम मछली की भाँति तड़पने लगते हैं) । सेनापति (कहते हैं कि) तुम निश्चय ही जीवों (के) अवलंब (हो) (वृष्टि न होने से जीवधारियों का जीवित रहना ही दूरूह हो जायगा), (तुम) जिधर भुक्ते हो उधर आकाश से टूट पड़ते हो (जिधर आकृष्ट हो जाते हो उधर ही वृष्टि करने लगते हो) । (हे) घनश्याम ! (तुम) उमड़-धुमड़ कर गरजते (हुए) आए (हो); बरसाऊ होकर (भला) एक बार तो बरसते ।

कृष्ण-पद में :—(तुम्हारे) शरीर (के) उत्तम स्पर्श से आँखें शीतल हो जातीं, हृदय की गरमी (विरहाग्नि) शांत हो जाती, (शरीर का) रोयाँ-रोयाँ प्रसन्न हो जाता । हम तुम्हारे अधीन (हैं) तुम्हारे बिना अत्यंत दीन (हैं), (नहीं तो) नीर-विहीन मछली (के) समान (हम) क्यों तरसतीं । सेनापति (कहते हैं कि) तुम निश्चय (ही) (हमारे) जीवन (के) आधार (हो) (तुम्हारे बिना हमारा जीवन दुर्लभ है), (तुम) जिस पर कृपा करते हो, उसके समीप स्वर्ग से आ जाते हो (जिस पर प्रसन्न हो जाते हो उसके लिए तुरंत दौड़े आते हो) । उमड़-धुमड़ कर, गरज कर गरज (के समय) आए (हो) (अर्थात् ऐसे समय आए हो जब हमें तुम्हारी आवश्यकता है), (अतः हे) घनश्याम ! बरसाऊ होकर (रस की वर्षा करने वाले होते हुए) (भला) एक बार तो बरसते (एक बार तो हम पर कृपा करते) ।

अलंकार :—श्लेष, यमक ।

विशेष :—१ इस कवित्त को हम किसी भक्त का कथन भी मान

सकते हैं जिसमें भक्त कृष्ण से कृपा-दृष्टि करने की याचना कर रहा है ।

२ 'रोम' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है ।

७८ शब्दार्थ :—मनुहारि = “वह विनती जो किसी का मान छुटाने के लिए की जाती है” खुशामद । आखियै = कहना चाहिए । नाखियै = नष्ट करती हुई । पाती पाती कहै.....हरा मैं बाँधि राखियै = नायिका अपने श्लिष्ट वचनों द्वारा दूती का भी संतोष कर देती है तथा गुरुजनों पर भी भेद प्रकट नहीं होने देती । वह कहती है—१ ‘पाती पाती’ कहता हुआ जो कोई व्यक्ति कहीं का पत्र लाए तो उस सुअर को (‘हरामैं’) सिर तथा पैर एक करके बाँध रखना चाहिए अर्थात् यदि कोई हमारे यहाँ इस प्रकार से दूसरों के पत्र लाएगा तो हम उसे कड़ी सजा देंगी । २ ‘पाती पाती’ कहता हुआ जो कोई व्यक्ति कहीं का पत्र लाए तो उसे ‘सिरपाउ’ देकर विदा करना चाहिए तथा पत्र को हार में बाँध रखना चाहिए ।

विशेष :—‘सिरपाउ’ = प्राचीन काल में दरबारों में जब किसी दूत अथवा अन्य व्यक्ति का सम्मान किया जाता था तो उसे सिर से लेकर पैर तक के कपड़े देकर विदा किया जाता था । सिरपाव में अंग, पगड़ी, पायजामा, पटुका और डुपट्टा दिया जाता था ।

७९—शब्दार्थ :—नारि = गरदन । जानि = जानकर । कुंदन = बहुत बढ़िया सोना । सुनारी = १ अच्छी स्त्री २ सुनार की स्त्री । बलिहारी = निष्ठा-वर । चोकी = १ बहुत बढ़िया २ आभूषण विशेष जिसमें चौकोर पट्टी लगी रहती है । यह गले में पहना जाता है । होइ ज्यों सरस काम.....देह दू सँजोग कोई लाल कौं = १ नायिका दूती से कहती है कि तू प्रियतम से कह देना कि जिस प्रकार उत्तम काम बन पड़े अर्थात् जिस युक्ति से मेरा तथा उनका संमिलन हो वही उन्हें करनी चाहिए क्योंकि मेरा सोने का घर उनके बिना सूना है । उनसे कह देना कि उन्हें मैं कुंदन-वर्ण वाला शरीर दूँगी जो बहुत ही भव्य और सुन्दर है । हे सुन्दर स्त्री ! प्रियतम से मेरा यह सँदेसा कह कर तू कृष्ण से मिलने का कोई संयोग कर अर्थात् कृष्ण से मेरे रूप की प्रशंसा कर मुझे उनसे मिला दे । मैं तेरी बलि जाती हूँ । २ गुरु-जनों से अपना भेद छिपाने के लिए नायिका दूती से इस ढंग से बात करती है जैसे वह किसी सुनार की स्त्री हो । वह कहती है कि तू अपने प्रियतम से कहना

कि जिस प्रकार उत्तम कारीगरी बन पड़े वही वह करे; हमारे सोने का खाना अर्थात् हमारी चौकी की पटरी कांति-हीन है, वह उसे ठीक कर दे। मैं उसे वह उत्तम सोना दूँगी जो बहुत रुपया लगाकर खरीदा गया है। हे सुनार की स्त्री ! मैं तेरी बलि जाती हूँ, तू अपने प्रियतम से कह देना कि वह मेरी चौकी में किसी लाल अथवा नग को जड़ दे।

अलंकार :—श्लेष, देहरी दीपक।

८० शब्दार्थ :—नीरैं = १ जल के समीप २ समीप (नियरे)। खई = १ क्षी, यक्ष्मा २ तकरार, भगड़ा। अरुसे = १ अड्डसा, जो यक्ष्मा में बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है। वैयों का कहना है कि इसके फूलों तथा पत्तियों के रस को विधिवत् सेवन करने से यक्ष्मा तथा कासश्वास वाले रोगियों को विशेष लाभ होता है २ बिना रूठे (अ + रूसे)।

अवतरण :—इस कवित्त में एक ओर तो कोई दूती कृष्ण से मान छोड़ने का आग्रह कर रही है और वह युक्ति बतलाती है जिससे कृष्ण का भगड़ा नायिका से मिट जायगा, दूसरी ओर कोई व्यक्ति किसी यक्ष्मा के रोगी को उपदेश दे रहा है और उन उपचारों को बता रहा है जिनसे रोगी यक्ष्मा से मुक्त हो जायगा।

कृष्ण-पक्ष में :—(और) जितनी ('जेतीब') मुन्दर स्त्रियाँ हैं, उनकी ओर दौड़ मत करो (अन्य स्त्रियों की इच्छा मत करो)। मन को एक स्थान पर (एक व्यक्ति पर), भली प्रकार वश में करके रखो। बार-बार (दूसरी बालाओं की) गोराई (तथा) चिकनाई देखकर भूल कर (भी) मत ललचाओ (दूसरी स्त्रियों के मुन्दर तथा सच्चिक्कण शरीर देख कर तुम लालायित मत हो), अब धैर्य का ही समय (है) (अर्थात् इस समय यदि तुम धैर्य से काम लो तो उसे फिर पा सकते हो)। सेनापति (कहते हैं कि) (हे) कृष्ण ! (तुम) (उसके) यौवन ('रंग') (का) उपभोग कर मुखी होगे; मैंने समझा कर, उत्तम उपाय बताया है। पीले पान खाकर (नायिका के) समीप, भूलकर (भी) मत जाओ (अर्थात् नायिका जब तुम्हारे पान खाए हुए मुख की छवि को देखेगी तो वह तुम से मिलने के लिए आतुर हो उठेगी, किंतु यदि तुम उसके समीप चले जाओगे तो हृदय में वह औत्सुक्य न रह जायगा)। (मेरा कहना) मानो, बिना रूठे (रहने) के उपाय (से) ही भगड़ा मिट जायगा (यदि तुम रूठना छोड़कर उसके प्रति अनुराग प्रदर्शित करोगे तो स्वाभाविक रूप से

वह भी मान छोड़ देगी) ।

रोगी-पक्ष में :—वन की (और) जितनी बेलें (हैं) (अन्य जितनी वनस्पतियाँ हैं), उनकी ओर दौड़ मत करो (उनकी इच्छा मत करो), मन को भली प्रकार वश में करके एक स्थान में रखो (अर्थात् चित्त को स्थिर करो, विभिन्न प्रकार की औषधियों के सेवन करने के लिए उत्सुक मत हो) । बार-बार (स्त्रियों के) गौर वर्ण (तथा) सच्चिक्कण (शरीर) देख कर भूल कर (भी) मत लुब्ध हो, अब धीरता ही का समय है (अभिप्राय यह कि तुम क्षत्री के रोगी हो, तुम्हें काम-सुख की अभिलाषा न करनी चाहिए क्योंकि इससे बड़ी हानि होने की संभावना है) । सेनापति (कहते हैं कि) स्याम रंग (वाली अड़ूसे की पत्ती का) सेवन करके (तुम) सुखी होगे, मैंने समझाकर उत्तम उपाय बतलाया है । पीले पान खाया करो (क्योंकि वे रक्त वर्द्धक हैं) । जल के समीप भूलकर (भी) मत जाओ; (मेरा कहना) मानों, (तुम्हारी) क्षत्री अड़ूसे के रस में ही अच्छी हो जायगी ।

अलंकार :—श्लेष ।

८१ शब्दार्थ :—वानक = सज-धज । मोतियें = १ मोतियों को २ मुक्त स्त्री को ('मो तियें') ।

विशेष :—सखियों से धिरी हुई होने के कारण नायिका स्पष्ट रूप से अपनी इच्छा कृष्ण पर न प्रकट कर सकी । वह सखी से कहती है कि मोतियों को भली प्रकार परख कर अर्थात् अच्छे-अच्छे चुन कर आज लाल रेशम (के डोरे) को सफल करो—उस डोरे से मोतियों को पिरो दो । दूसरी ओर वह कृष्ण से कहती है कि हे ('रे') लाल ! मुक्त स्त्री को, प्रीति से, ध्यान देकर परख लो और आज आकर (मेरे) समय को सफल करो (क्योंकि तुम्हारे वियोग में मेरा समय व्यर्थ व्यतीत हुआ जाता है) ।

८२ शब्दार्थ :—सँजोए = सजाए हुए । साज = १ ठाट-बाट २ उपकरण, सामग्री । अरि = १ वैरी २ सपत्नी । जान = जानकार । अवदात = स्वच्छ, शुद्ध । निसान कौ = १ निशाने को २ रातों को ।

अर्थ :—मान (ऐसे) छूट जाता है, जैसे वाण छूट जाता है । सेनापति (ने) दोनों (को) समान करके वर्णित किया (है) (दोनों को एक कर दिया है), उन्हें जानकार (व्यक्ति), जिसके स्वच्छ ज्ञान है, जानता है (अर्थात् जो ज्ञानी है वह इस बात को जानता है) ।

वाण-पद्म में :—छूटने पर काम आता है, सजाए हुए ठाट-बाट (को) पृथक् कर देता है (वैरी के शरीर पर लगने से जिरह-बखतर आदि को छिन्न-भिन्न कर देता है), अब प्रत्यंचा ('गुन') (को) ग्रहण करता है (प्रत्यंचा में चढ़ा कर चलाया जाता है), (जिसका) चिकना स्वरूप शोभित होता है (वाण के तेज चलने के लिए उस पर तेल लगा दिया जाता है उसके कारण उसका सचिक्कण स्वरूप शोभित होता है) । (वाण) तेज किया (गया) है, जिससे स्वामी (अर्थात् वाण चलाने वाले) (की) जीत होती है, हृदय (में) लगने पर लाल कर देता है (रक्त की धारा वह चलती है), (तथा) वैरी (का) शरीर ठंडा पड़ जाता है (वैरी की मृत्यु हो जाती है) । निशाने को पाकर धनुही ('धनही') के मध्य से (छूट) पड़ता है ।

मान-पद्म में:—छूटने पर काम बनता है (मान छूटने से नायक-नायिका का संमिलन होता है), सजाई हुई सामग्री (को) पृथक् कर देता है (नायिका ने मान के कारण जो वेश-विन्यास धारण किया था उसे वह त्याग देती है), जो अवगुण ग्रहण करता है (अर्थात् नायक के किसी दुर्गुण को देख कर नायिका मान करती है), स्नेह (के) स्वरूप को शोभित करता है (मान नायक-नायिका के पारस्परिक स्नेह को बढ़ाता है), स्त्री (ने) क्षण ('ती छुन') (भर ही) किया है, जिससे पति (को) जीत कर (ही) होती है (रहती है अथवा शोभित होती है) (और नायिका के) लाल (प्रियतम के) हृदय (से) लगने पर सपत्नियों (का) शरीर ठंडा पड़ता है (सपत्नियों का दुःख होता है) । रातों को पाकर (अर्थात् रात में) स्त्री (के) हृदय के अन्दर में (निकल) पड़ता है (रात में नायिका मान छोड़ देती है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, असंगति ।

८३ शब्दार्थ :—क्लेश = १ क्लेश २ कलाओं का ईश । जिस कौ प्रसून = १ विष का पुष्प २ कमल (कमल की नाल को 'विस' कहते हैं, इसी से कमल का एक नाम 'विस-प्रसून' पड़ा) । कष्टवारी है = १ कष्टप्रद है (गरम होने के कारण) २ केशर का वाण ('वारी') बहुत कठिनाई से लगाया जाता है । जिस ज़मीन में केशर बोनी होती है उसे आठ वर्ष पहले से परती छोड़ दिया जाता है ।

अर्थ :—तेरा मुख आनन्द का कन्द (है), उसके समान चंद्रमा कैसे किया जाय (मुख की उपमा चंद्रमा से कैसे दें), (उसका) नाम 'क्लेश' (क्लेश

रक्खा गया है (वह लोगों को क्लेश-कर है किंतु तेरा मुख ऐसा नहीं है) । तेरे हाथ आठों पहर (रात दिन) ताप हरण करने वाले हैं, कमल (तो) विप का प्रसून (है), (वह) उनके समान कैसे हो सकता है । तेरा मुख देने वाला शरीर ज्योति के समान नहीं हो सकता (ज्योति शरीर के सामने फीकी जँचती है); (यदि तेरे शरीर को) केशर (के) समान कहें (तो) (केशर भी) कण्ट-प्रद है (केशर गरम होती है इससे कभी-कभी नुक्रसान भी कर सकती है किन्तु तेरा शरीर तो सर्वदा सुख-प्रद है) । सेनापति (कहते हैं कि) तू प्रभु (की) (प्रियतम की) अनुपम (तथा) प्राणों से (भी) प्रिय स्त्री (है), तेरी उपमा की रीति समझ में नहीं आती (तेरी उपमा किससे दी जाय यही समझ में नहीं आता, तेरे समान तो कोई है ही नहीं) ।

अलंकार :—प्रतीप, श्लेष ।

विशेष :—इस पूरे कवित्त का कोई दूसरा अर्थ नहीं है । इसमें केवल तीन शब्द श्लिष्ट हैं जो एक दूसरे अर्थ को ध्वनित-मात्र करते हैं । प्रकट में यद्यपि कवि यही कहता है कि चंद्रमा मुख के समान नहीं है पर 'क्लेश' के प्रयोग से वह यह सूचित करता है कि स्त्री का मुख इतना सुन्दर है कि उसकी उपमा कलाओं के ईश चन्द्रमा से दी जाती है । हाथों का उपमान कमल कहा जाता है और कमल मृणाल के कोमल दण्ड पर लगता है इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि हाथ कितने उत्तम हैं । शरीर के वर्ण की समता केशर के रंग से दी जाती है जो इतने कण्ट से पैदा की जाती है । इन सब से यही ध्वनित कराने का प्रयत्न किया गया है कि स्त्री बहुत श्रेष्ठ है ।

८४ शब्दार्थ :—जुगारति = १ नष्ट करती है ('जु गारति') २ जुगाली करती है । तिनही कौं = १ उन्हीं को, नायक (कृष्ण) को २ घास ही को । मधु = १ अमृत २ पानी । मदन = १ कामदेव २ घमंडी, गर्विष्ठ ।

अर्थ :—ब्रज की विरहिणी (ऐसे) (रहती है) जैसे हरिणी रहती है ।

विरहिणी-पक्ष में :—(जिसके) साथ कृष्ण नहीं है, (जो) ब्रैठी (हुई) यौवन नष्ट कर रही है (कृष्ण का साहचर्य न होने के कारण जिसका यौवन व्यर्थ ही व्यतीत हुआ जाता है); मन, वचन, (तथा कर्म) (से) (वह) उन्हीं को (कृष्ण को) (प्राप्त करने की) इच्छा करती है । जिसका मन अनुराग रूपी मधु (के) वश में हो गया है (जो कृष्ण की प्रीति में लिप्त है), (जिसके) बड़े-बड़े नेत्र हैं, (जो) स्थिर दृष्टि में देख रही है ('बड़े-बड़े लोचन, निचंचल

चहत है') (विरह के कारण उसके नेत्रों का चांचल्य जाता रहा) । सेनापति (कहते हैं कि) वहाँ, बार-बार, मदन महीप (राजा) शिकार खेल रहे हैं, इससे (वह) सुख नहीं पाती है (कामदेव अपने शरों से उसे विद्ध कर रहा है इससे उसे बड़ा कष्ट है) । कुंजां (की) छाया (में) (वह अपने) शरीर (को) गरमी (विरहाग्नि) (से) बचा रही है ।

हरिणी-पक्ष में :—(जिसके) साथ हरिण है, जो वन (में) बैठी हुई जुगाली कर रही है, (जो) मन, वचन, (तथा) कर्म (से) घास ही की इच्छा करती है (सर्वदा घास चरने में व्यस्त रहती हैं) । जिसका मन (हरिण की) प्रीति (के) वश (में) हो रहा है । (जो) बड़े-बड़े नेत्रों से, उद्विग्न (होकर) जल (के लिए) देखती है (जल की इच्छा से उद्विग्न होकर इधर-उधर देखती है) । सेनापति (कहते हैं कि) वहाँ बार-बार, गर्विष्ठ महीप शिकार खेलते हैं इससे (वह) सुख नहीं पाती (शिकारी महीपों के कारण हरिणी को विशेष कष्ट रहता है) । (वह कुंजां की छाया (में), (अपने) शरीर (को) गरमी (से) बचा रही है (ग्रीष्म ऋतु में हरिणी कुंजां की छाया में घूमा करती है) ।

अलंकार :—उदाहरण, श्लेष, रूपक ।

८५ विशेष :—इस कवित्त में पति-पत्नी के वियोग का वर्णन किया गया है किंतु दूसरा पक्ष स्पष्ट नहीं है ।

८६ शब्दार्थ :—कमल = १ कमल को २ लक्ष्मी को । राग = १ रंग २ ईर्ष्या, द्वेष । हरि = १ कृष्ण २ विष्णु । भोंति = रीति ।

अर्थ :—सेनापति (ने) प्यारी के युगल चरणों (का) वर्णन किया है । उनकी (उन चरणों की) समस्त रीति श्रेष्ठ मुनियों में पाई जाती है (चरणों का ऐसा वर्णन किया है मानों मुनियों का वर्णन हो) ।

चरणों के पक्ष में :—(जो) कमल को समादृत नहीं करते (कमल जिनके सामने तुच्छ लगते हैं) । लाल रंग को धारण करते हैं (जिनमें स्वाभाविक ललाई विद्यमान है) । चित्त को वश (में) करते हैं, नरम (चरणों को) फूल नमते हैं (नरम चरणों फूल नमते) (अर्थात् चरणों की कोमलता को पुष्प भी स्वीकार करते हैं, चरणों की कोमलता के सामने पुष्पों की कोमलता नितांत तुच्छ है) । हंस (की) परम (उत्कृष्ट) चाल लेकर चलते हैं (अर्थात् हंस की सी चाल चलते हैं) । (जो) महावर (द्वारा) रंगे जाते हैं, जो आठों पहर (रात-दिन) कृष्ण से मिलकर रहते हैं (कृष्ण से जिनका विच्छेद कभी होता ही नहीं) । संसार में

समस्त जीवों (का) जन्म सफल करते हैं (लोग जिनके दर्शन पाकर अपने को धन्य मानते हैं); जिनके सत्संग (से) (लोग) (ऐसे) सुख पाते हैं (जैसे) कल्पतरु में (मिलते हैं) (जो चरण कल्पतरु के समान मनवांछित वस्तु देने वाले हैं) ।

मुनियों के पक्ष में :—लक्ष्मी का आदर नहीं करते और राग द्वेष नहीं रखते (जो राग-द्वेष से परे हैं) । चित्त को वश (में) कर लेते हैं (मोहित करते हैं); फूलने में नहीं रमते (कभी गर्व नहीं करते, सर्वदा विनम्र रहते हैं) । महान् परमहंस गति लेकर चलते हैं, हृदय (ब्रह्म की प्रीति में) अनुरक्त रखते हैं; जो आठों पहर विष्णु से मिले रहते हैं (रात-दिन ब्रह्म के ही ध्यान में संलग्न रहते हैं) । संसार (में) (अपना) जन्म (तथा) जीवन सब सफल करते हैं (जो अपने जीवन को व्यर्थ में नष्ट न कर, ईश्वर की भक्ति करके उसे सफल करते हैं) । जिनके सत्संग (से) (लोग) (ऐसे) सुख पाते हैं (जैसे) कल्पतरु में (मुनियों का सत्संग करने से लोगों को अभीष्ट वस्तु मिल जाती है) ।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप ।

८७ शब्दार्थ :—बढ़ि जात = १ अधिक हो जाता है २ समाप्त हो जाता है । कर = १ हाथ २ किरण । सुखित = सुखी है २ सूखी हुई, शुष्क । सरस = १ सुन्दर २ रसीली अथवा रसयुक्त (वस्तुएँ) ।

अर्थ :—सेनापति (ने) वचनों की रचना बनाकर (काव्य रचकर) ग्रीष्म ऋतु (को) श्रेष्ठ बधू के समान कर दिया (ग्रीष्म ऋतु तथा नव-विवाहिता बधू एक सी जँचने लगीं) ।

स्त्री-पक्ष में :—जिसके मिलते ही घर (में) रति-सुख अधिक हो जाता है (और) थोड़ा-सा वस्त्र फैलाकर डाल दिया जाता है (नव बधू के आने पर घर के दरवाजे पर छोटा-सा वस्त्र डाल दिया जाता है; घर में परदा डालने की आवश्यकता पड़ती है) । जिसके आते ही चंद्रमा अच्छा नहीं लगता (अर्थात् जो चंद्रमा से सुन्दर है); प्यारी (के) सुखदायक लोचनों की छाया (की) इच्छा होती है (मन में यही इच्छा रहती है कि इसकी कृपा-दृष्टि सर्वदा बनी रहे) । पति, अब नित्य, जिसके लाल हाथों (को) पाकर (तथा) जिसके उत्तम साहचर्य (साथ) को पाकर सुखी है (उसके साथ रहने में पति को अत्यंत सुख का अनुभव होता है) ।

ग्रीष्म-पक्ष में :—जिसके मिलते ही (आते ही) सुख समाप्त हो जाता है, घर में नहीं (मिलता है) । अर्थात् गर्मी के कारण अब घर में चैन नहीं पड़ती

है); शरीर (के) वस्त्र को फैलाकर डाल देते हैं (जिससे कि पसीने से तर वस्त्र सूख जायँ) । जिसके आते ही चन्दन अच्छा लगता है, नेत्रों के (लिए) प्रिय, मुखदायक ल्याया (की) इच्छा होती है (अर्थात् नेत्र अत्र धूप देखना पसन्द नहीं करते, उन्हें ल्याया देखने की इच्छा होती है) । ग्रीष्म के (सूर्य की) अरुण किरणों (को) पाकर पृथ्वी तपती है ('अवनि तपति'), जिसके संयोग को पाकर रसीली (वस्तुएँ) सूखी हुई (हो गई हैं) (गरमी के कारण रसयुक्त वस्तुएँ शुष्क हो जाती हैं) ।

अलंकार :—श्लेष, प्रतीप ।

८८ अर्थ :—सेनापति 'प्यारी' का वर्णन करते हैं अथवा 'कुप्यारी' का; (अपने) वचनों (के) पेच (से) (दोनों को) समान ही करते हैं (अपनी पेचीदी वाणी के बल से दोनों को एक-सा कर दिखाया है, प्रिय तथा अप्रिय स्त्री को एक ही कवित्त में वर्णित किया है) ।

प्रिय स्त्री के पक्ष में :—रूप देखते ही हृदय के समस्त रोगों ('गद') (को) हर लेती है (जिसकी ओर देख देती है उसके समस्त रोग दूर हो जाते हैं), (बड़ा) सुन्दर शूल है, कुछ कहते नहीं बनता (उसका सुन्दर स्वरूप लोगों के हृदय में भाला चुभने की-सी पीड़ा उत्पन्न करता है, लोग उसके सौंदर्य को देखकर विह्वल हो जाते हैं) । देवांगनाओं (का सा) स्वरूप (है), इसी कारण जो स्त्री पति को भाती (अच्छी लगती है), जिसके मुख की ओर देख ही देती है वह (अपने) मन (में) (उसे) वरण कर लेता है । (उसे) देखते ही रसिक (व्यक्ति) के हृदय में कामोद्दीपन होने लगता है, (उसके) शरीर (का) तारुण्य देखने से चित्त उसमें रत (हो जाता) है (सहृदय पुरुष उसके यौवन को देखने से ही उससे प्रीति करने लगते हैं) ।

अप्रिय स्त्री के पक्ष में :—देखने से गंधी का समस्त रूप हर लेती है (अत्यंत कुरूपा है), (बड़ा) अच्छा शूल है, कुछ कहते नहीं बनता (स्त्री ऐसी कुरूपा है कि उसकी चितवन भाले के चुभने की सी पीड़ा उत्पन्न कर देती है) । (उसके) अंग (में) सौंदर्य नहीं (है) ('अंग ना स्वरूप'), इसी से जो स्त्री नहीं भाती (देखने में अच्छी नहीं लगती), जिसका मुख देख लेती है (जिसकी ओर जरा भी देख लेती है) वह मन (ही मन) जलने लगता है (उसका कुरूप देखते ही लोग जल उठते हैं) । देखते ही सहृदय (व्यक्ति) के चित्त में नहीं (आती) (सरस व्यक्ति की नज़रों में वह नितांत तुच्छ लगती है), तरु (की)

नाप (वाला) शरीर ('तरु नापौ तन') देखने से चित्त उतर जाता है (अर्थात् वृद्ध की भाँति लंगरी होने के कारण बहुत बेदंगी जँचती है, लोगों को बहुत अप्रिय लगती है)।

अलंकार :—श्लेष, अतिशयोक्ति ।

८६ शब्दार्थ :—धनी=पति । ब्रह्मि=१ बाजी लगाकर २ कलह कर । भावती=भाने वाली, प्रियतमा । सेज=बराबरी ।

अर्थ :—सेनापति आश्चर्य के वचन कहता (है); देखो अप्रिय स्त्री प्रियतमा की बराबरी करती है (प्रिय स्त्री के वर्णन में ही अप्रिय स्त्री का वर्णन मिलता है) ।

भावती-पक्ष में :—चंद्र-मुखी समस्त दिन मुख ('कल') करती है; हृदय (के) प्रण को पाकर सीधी हो जाती है (अभीष्ट वस्तु को पा जाने पर सीधी हो जाती है) । अत्र (जिसका) सौंदर्य देखते ही मनुष्य (के) मन को अच्छा लगता है; जो(वात) हृदय में अड़ती है (हृदय को कष्ट पहुँचाती है) (उसे) कभी नहीं करती (है); (उसकी) शोभा देखने के (योग्य) है, स्त्री एक काम की भी नहीं है (अर्थात् वह इतनी सुकुमार है कि उससे कोई काम-काज नहीं हो सकता), पति से (प्रेम की) बाजी लगा कर (प्रीति कर) उत्साह-पूर्वक उसका आलिंगन करती है ।

अन-भावती-पक्ष में :—कलमुँही ('करमुखी') समस्त दिन (और) रात ('चौस निसा') भगड़ा ही किया करती है; जूते ('पनही') खाकर सीधी पड़ जाती है । प्रियतम को ('रमन कौ') अत्र (जिसका) सौंदर्य देखने से नहीं अच्छा लगता; (स्त्री) जिस बात के लिए हृदय में हट कर लेती है (उसे) कभी नहीं करती (अर्थात् यदि उसने कह दिया कि मैं अमुक कार्य नहीं करूँगी तो फिर उस काम को वह कदापि नहीं करेगी, कहने-सुनने का उस पर कुछ भी असर न होगा) । (जिसकी) शोभा देखने से (यह स्पष्ट हो जाता है कि वह) किसी काम की नहीं है; पति से भगड़ा कर (उस पर) लग पड़ती है (अर्थात् पति की मरम्मत करती है) ।

अलंकार :—श्लेष ।

१० शब्दार्थ :—नागा=१ अंभा, किसी काम को नियमित रूप से करने के बाद कुछ समय के लिए वन्द कर देना २ दूषित, बुरा । हरि=१ विष्णु २ सिंह । सूली=१ शिव २ फाँसी ।

अर्थ :—सेनापति (कहते हैं कि) महान् सिद्ध मुनियों (के) यश की वाणी (ऐसी है) (कि) उसे सुन कर चोर भय के मारे मरे जाते हैं ।

मुनि-पक्ष में :—घर से निकल कर (परिवार त्याग कर) कामदेव ('मार') (को) पकड़ कर मारते हैं (कामदेव पर विजय प्राप्त करते हैं), मन में निर्भीक (होकर) वन (तथा) तीर्थ (आदि) घूमा करते हैं । संतों के मार्ग (में) पड़ते (हैं) (संतों की रीति-भाँति का आचरण करते हैं), सर्वदा ही कुश लेकर चलते (हैं), दूसरे (का) धन हरने की इच्छा नहीं करते हैं । कर्मों का नागा करते हैं (कर्मों का करना ही त्याग देते हैं क्योंकि बिना इसके मुक्ति मिलना कठिन है), बाद को (संसार से) अदृश्य होकर (अंतर्ध्यान होकर) वे (या तो) विष्णु में लीन हो जाते हैं अथवा शिव में लीन हो जाते हैं ।

चोरों के पक्ष में :—घर से निकल कर मार्ग में ही ('भारगहि') मार डालते हैं (लोगों को लूट-लाट कर उन्हें समाप्त कर देते हैं), मन में निर्भीक (होकर) वन (तथा) तीर्थों (आदि) (में) घूमा करते हैं । संतों का मार्ग रोकते हैं, सदा ही बुरे मार्ग ('कुसैलै') में चलते हैं; दूसरों (के) धन (को) हर लेने का उपाय ('साधन') करते हैं । वे छिप कर बुरे कर्मों को करते हैं, पीछे सिंह (के-मुख) में पड़ जाते हैं अथवा फाँसी पर चढ़ जाते हैं (या तो वन में घूमते घूमते हटात् सिंह आदि से भेंट होने पर उनका जीवन-दीप बुझ जाता है अथवा कहीं चोरी में पकड़े जाते हैं और फाँसी पा जाते हैं) ।

अलंकार :—श्लेष ।

६१ इस कवित्त में एक ओर स्त्री का मान वर्णित है, दूसरी ओर रति का वर्णन है । किंतु दोनों पक्षों के अर्थों में विशेष भिन्नता नहीं जान पड़ती है ।

६२ शब्दार्थ :—ईस = शिव । अलकै = १ (कुबेर की) अलकापुरी को २ हठ कर ('अलकै' अथवा 'अर कै') । दच्छिन = १ दिशा २ वह नायक जिसका प्रेम अपनी समस्त नायिकाओं पर समान रूप से हो । ईठ = १ प्रिय २ मित्र । निधि = कुबेर के नौ प्रकार के रत्न—पद्म, महापद्म शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील तथा वरूच । बास = १ निवास स्थान २ वस्त्र ।

अवतरण :—एक पक्ष में कोई व्यक्ति कुबेर की प्रशंसा कर रहा है, दूसरे में नायिका कृष्ण के विलंब करके आने पर उन्हें उलाहना दे रही है ।

कुबेर-पक्ष में :—आप शिव (के) पर्वत (हिमालय) में ही अलकापुरी को बसा कर रखते हो (और) उभर ही प्रीति रखते हो । वे लोग धनी हैं (धनी

हो जाते हैं) जिनकी आशाओं (को) तुम पूर्ण करते हो, तुम सर्वदा दक्षिण दिशा की गति (का) त्याग किए रहते हो (दक्षिण दिशा की ओर कभी नहीं जाते हो) । सेनापति (कहते हैं कि) हे प्रिय ! तुम्हारी दृष्टि एक सी नहीं (रहती है, सब (लोगों को) दो ढंगों (से) देखते हो (अर्थात् एक मनुष्य को तुम पहले धनी कर देते हो, किंतु कुछ काल बाद उसे ही दरिद्र कर देते हो; इससे स्पष्ट है कि तुम सब को दो दृष्टियों से देखते हो) । ‘नील’ (रूपी) निधि धारण करते हो (रखते हो), (अपना) निवासस्थान उत्तर (में) रखते हो; हे कुबेर ! (तुम) आए हो, (तुम) अतुल संपत्ति (के) स्वामी हो ।

कृष्ण-पद्म में :—स्वयं मैंने शिव से (‘ईस सै’) हठ कर (अर कै) (तुम्हें, प्राप्त किया (है), (किंतु) तुम वहाँ (अन्य स्त्रियों का) पालन करते हो (और ! (उनसे) प्रीति मानते हो (हमारे परिश्रम की कुछ भी परवाह न कर तुम अन्य स्त्रियों में अनुरक्त हो) । वे लोग धन्य हैं जिनकी इच्छा तुम पूर्ण करते हो, तुम सर्वदा दक्षिण (नायक) की गति छोड़े रहते हो (अर्थात् तुम अपनी सब नायिकाओं पर समान कृपा नहीं करते हो) । सेनापति (कहते हैं कि) हे मित्र ! तुम्हारी दृष्टि एक सी नहीं (रहती है), सभी से दो ढंगों से पेश आते हो (दक्षिण नायक के गुण तो तुम में हैं ही नहीं, अपनी नायिकाओं में से जिनको तुम प्यार करते भी हो उन्हें भी कुछ दिनों बाद भूल जाते हो । कभी उन पर कृपा करते हो तथा कभी उनसे रूठ जाते हो) । विभूति धारण करते हो (दिव्य शक्तियाँ रखते हो), नीला उत्तरीय वस्त्र (उपर्ना अथवा दुपट्टा) धारण करते हो; हे कृष्ण ! (तुम) कुबेला (अर्थात् बहुत विलंब करके आए हो, तुम अनेक स्त्रियों (‘धन’) के पति हो (तुम्हारी अनेक प्रेमिकाएँ हैं इसी से तुम विलंब करके आए हो) ।

अलंकार :—श्लेष ।

विशेष :—‘कुबेर’—‘ये रावण के सौतेले भाई माने जाते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्होंने विश्वकर्मा से लंका बनवाई थी किंतु पीछे रावण ने इससे लंका छीन ली और इनको वहाँ से निकाल दिया । इन्होंने बड़ी तपस्या के बाद ब्रह्मा को प्रसन्न किया । ब्रह्मा ने इन्हें इंद्र का भंडारी बना दिया और उत्तर दिशा का राजा बनाया । यद्यपि ये देवता माने जाते हैं किंतु फिर भी इनकी पूजा नहीं होती है ।”

६३ शब्दार्थ :—गाँठि = १ गुत्थी, पेचींदी बात २ ईश्वर में थोड़े-थोड़े

अंतर पर कुछ उभरा हुआ मंडल । परब = १ कथानक, वर्णन (जैसे महाभारत के पर्व) २ ईश्वर में दो गाँठों के बीच का स्थान । पियूष = अमृत । सवन की = १ कान की २ श्रवण नक्षत्र की अर्थात् जिस समय श्रवण नक्षत्र हो उस समय की (श्रवण = अश्विनी आदि नक्षत्रों में से वाइसवाँ नक्षत्र) ।

अर्थ :—आपके बोल माह (तथा) पूस (मास) की ईश्वर के समान मधुर जान पड़ते हैं ।

बोल-पत्र में :—जो ग्रन्थियों (को) नहीं छोड़ते (सदा मर्म भरा बातों से युक्त रहते हैं) (अपने अभिप्राय को वाच्यार्थ द्वारा न प्रकट कर व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं) तथा (जो) अनेक कथानकों से पूर्ण हैं (जिनमें अनेक प्रासंगिक घटनाओं का उल्लेख होता है) जैसे-जैसे आदि से अंत तक (उनको कोई सुनता है) (वैसे-वैसे) अधिक आनंद की वृद्धि करते हैं (जैसे-जैसे उन पर विचार किया जाता है वैसे-वैसे वास्तविक रहस्य का पता चलता है) । (जो) नाना प्रकार की कल्पनाओं द्वारा रच कर सुसज्जित किए जाते हैं (तथा) भली प्रकार आदर से बोले जाते हैं; हृदय (की) जलन शांत करने वाले (हैं), हृदय (के) बीच शीतलता उत्पन्न करते हैं; सेनापति (कहते हैं कि) संसार (ने) जिनको रसीला (कहकर) वर्णित किया है (जिन्हें लोग मधुर संभाषण कहते हैं), हृदय में पित्त (का) प्रकोप बढ़ने पर (अर्थात् क्रोध उभड़ने पर) जिनके (प्रभाव) से नहीं ठहरता (ऐसे मधुर बोल हैं कि क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को हर (लेते हैं) । (जिनके सुनने से) कानों की भूख (में) मानां अमृत बढ़ जाता है (अर्थात् जिन्हें एक बार सुन लेने से दुबारा सुनने के लिए कान लालायित रहते हैं) ।

ईश्वर-पत्र में :—जो ग्रन्थियों (को) नहीं छोड़ते (जिनमें गाँठें हैं), (जो) अनेक पोरों से युक्त हैं; ऊपर से लेकर जैसे-जैसे नीचे की ओर (उनको चुहा जाता है) वैसे-वैसे (वे) अधिक रस बढ़ाते हैं (नीचे की ओर बहुत रसीले हैं) । (जिन्हें, (लोग) संभाल-संभाल कर छीलते हैं, भली प्रकार आदर से बोलते हैं (एक दूसरे से ईश्वर चुहने का आग्रह करते हैं); (जो) तपन हरने वाले हैं (और) हृदय में शीतलता (उत्पन्न) करते हैं । सेनापति (कहते हैं कि) संसार (ने) जिनको 'रसीले' (कह कर) वर्णित किया है (जिन्हें लोग अत्यंत रस-युक्त कहते हैं); पित्त (का) प्रकोप बढ़ने पर जिन (के) (प्रभाव से) नहीं ठहरता (अर्थात् जिनका सेवन करने से पित्त का प्रकोप शांत हो जाता है) । (ईश्वर चुहने से)

श्रवण की भूख (में) मानों अमृत बढ़ जाता है (अर्थात् लोगों की पाचनशक्ति ठीक हो जाती है और उनको खूब भूख लगती है) ।

अलंकार :—श्लेष ।

६४ शब्दार्थ :—छुतियाँ सकुच = १ उसका वक्षस्थल संकुचित है (कसा हुआ है, उसमें ढीलापन नहीं है) २ उसका वक्षस्थल कुचों सहित है । पन = प्रण, हठ । बलमहि पाग राखै = १ बल-पूर्वक अर्थात् कस कर पगड़ी धारण करता है (अपनी पगड़ी को कस कर बाँधता है) २ प्रियतम को अनुरक्त रखती है । खन = क्षण ।

६५ शब्दार्थ :—तिमिर = १ अज्ञान २ आँखों में धुँधला दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि आँखों में होने वाले विकार । वेदन १ वेदों ने २ वैद्यों ने । बीच = १ तरंग २ मध्य । मंजन = स्नान ।

अर्थ :—गंगा-स्नान के पक्ष में—(हृदय के) मैल को घटाता है, महान् अज्ञान नष्ट करता है, चारो वेदों (ने) बताया है (कि गंगा स्नान) उत्तम दृष्टि को बढ़ाता है (गंगा-स्नान से अंतर्दृष्टि स्वयं स्वच्छ हो जाती है) । शीतल सलिल (जल) पानी (में) सने हुए कर्पूर के समान (है) (अर्थात् गंगा-जल इतना शीतल है जितना पानी में पिसा हुआ कर्पूर), सेनापति (कहते हैं कि) पिछले जन्मों (के) पुण्यों के कारण ही मिला है (पूर्व-संचित अच्छे कर्मों के फल-स्वरूप ही गंगा-स्नान का सौभाग्य प्राप्त हुआ है) । (गंगा का महत्व) मन (में) कैसे आ सकता है (उसकी महिमा हृदयगम नहीं की जा सकती है), (वह) आश्चर्य उत्पन्न करती है, (अपनी) तरंग (को) फूलों (से) सुशोभित करती है (मानों उसने) पीला वस्त्र धारण किया हो (पीले-पीले पुष्प गंगा में बहते हुए देख ऐसा जान पड़ता है मानों गंगा जी ने पीला वस्त्र धारण किया हो) । संसार (के) दुःखों (को) नष्ट करने को (जन्म-मरण आदि के दुःख से निवृत्त होने को), (तथा) परब्रह्म के देखने को गंगा जी का स्नान अंजन के समान बनाया गया है (अर्थात् जिस प्रकार अंजन के लगाने से आँखों की ज्योति बढ़ जाती है और सांसारिक वस्तुएँ भली प्रकार दिखलाई पड़ती हैं वैसे ही गंगा-स्नान से संसार द्वारा मुक्ति मिल जाती है और ब्रह्म के दर्शन मिलते हैं) ।

अंजन-पक्ष में :—(आँखों के) मैल को छोटता है, महान् तिमिर (को) मिटाता है, उत्तम दृष्टि को बढ़ाता है, चार वैद्यों ने (भी) (यही) बतलाया है

कर्पूर (से) सम (मात्रा में), प्रीति ('रस') (से), शीतल जल (में) सना हुआ है, सेनापति (कहते हैं कि) पूर्व-जन्म (के) पुण्य से ही (ऐसा अंजन) मिला है। (इसका महत्व) कैसे समझ (में) आए, (यह) आश्चर्य उत्पन्न करता है; (आँख के बीच (की) फूली तक बहा देता है ('रसावै') (अन्य विकारों को नष्ट करने के साथ ही आँख की फूली को भी धीरे-धीरे बहा देता है), तथा पीतल (के) बरतन में रक्खा गया है।

अलंकार :—श्लेष, उत्प्रेक्षा।

६६ शब्दार्थ :—रोजनामे = रोजनामचे (रोजनामचा = “वह वही जिसमें नित्य-प्रति का हिसाब-किताब अथवा रोज का किया हुआ काम दर्ज किया जाता है”)। सेस = शेषनाग २ जमा से खर्च घटा देने के बाद तहशील में जो बाकी बच जाय। पुर = १ लोक, भुवन २ नगर, शहर। कोठा = बड़ी कोठरी, भांडार। सुरति = स्मरण, सुधि, चेत। वानियै = १ बाणी से अपनी कविता द्वारा २ बनिये को। हुंडी = “वह पत्र या कागज जिस पर एक महाजन दूसरे महाजन को, जिससे लेन-देन का व्यवहार होता है, कुछ रुपया देने के लिए लिखकर किसी को रुपय के बदले में देता है। ‘चेक’।”

अर्थ :—राम-पद् में—जिसके रोजनामचे (को) शेषनाग (अपने) सहस्र मुखों (से) पढ़ते हैं; यद्यपि (वे) उत्तम बुद्धि के सागर हैं (बड़े बुद्धिमान हैं), (तथापि) (वे) पार नहीं पाते (शेषनाग भी राम के गुणानुवाद करने में समर्थ नहीं हैं)। कोई महापुरुष जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचता; आकाश (तथा) जल-स्थल (में) (वह) विचित्र गति वाला व्याप्त रहता है (ऐसा कोई स्थल नहीं है जहाँ राम व्याप्त न हों)। प्रत्येक लोक के लिए (उसके पास) असंख्य भांडार हैं, (आवश्यकता पड़ने पर वह) वहाँ स्वयं पहुँच जाता है, साथ में चेत-वाला (होशियार) साथी नहीं (रहता) (उसे अकेले ही समस्त लोकों की देख-भाल करनी पड़ती है, सहायता के लिए बहुत से सहायक रखने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती)। जिसकी हुंडी कभी नहीं फिरती (जिसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं होता है, जिसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं), (उसे हम) बाणी द्वारा वर्णित करते हैं; वही सीता रानी का पति, सेनापति का महाजन है।

साहुपद् में :—जिसके लेखे (रोजनामचे) में (नित्य) सहस्रों (की) बाकी (निकलती है) (जिसकी तहशील में गोज बजागों रुपय वच रहने हैं)।

चाहे (कोई) उत्तम बुद्धि का सागर ही (क्यों न) हो, (उसका) मुख (लेखे को) पढ़ कर समाप्त नहीं कर पाता । कोई साहूकार जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचता । आकाश (तथा) जल-स्थल में (अर्थात् सर्वत्र) (वह) विचित्र गति वाला व्याप्त रहता है (सर्वत्र ही उस साहूकार की कीर्ति फैली रहती है) । प्रत्येक नगर के लिए (उसके यहाँ) असंख्य कोठियाँ बनी हुई हैं; वहाँ (वह) स्वयं पहुँच पाता है, साथ में होशियार साथी नहीं (रहता) (महाजन इतना बुद्धिमान् है कि बिना किसी सहायक के वह स्वयं अपनी कोठियों में चला जाता है) । (हम) (उस) बनिए का वर्णन करते हैं जिसकी हुंडी कभी नहीं लौटती है ।

अलंकार:—रूपक-प्रधान श्लेष ।

विशेष :—हुंडी फिरना=जिसकी हुंडी पर महाजन रुपया न देना स्वीकार करे वह देवालिया समझा जाता है । किसी महाजन की हुंडी फिरना उसके लिए बड़े अपमान की बात समझी जाती है ।

दूसरी तरंग

१ अनियारे=नुकीले, पैने । ढरारे=किसी की ओर शीघ्र ही आकृष्ट होने वाले । सिरात है=शीतल हो जाता है ।

३ हेति=संबंधी । सेनापति ज्यारी जिय की=सेनापति कहते हैं कि चितवन ही हृदय की दृढ़ता है । इसी को देख कर हृदय में साहस रहता है ।

४ कोट=दूर्ग, किला । तमसे=पापी । तरल=चंचल ।

६ किसलय=नया निकला हुआ पत्ता । भाँई=परछाई । अलकत “(सं० अलकत)=लाख का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती है; महावर ।” भाँई नाहिं जिनकी धरत...इ०=महावर चरणों की स्वाभाविक ललाई को नहीं पा सकता है । दिनकर सारथी=सूर्य का सारथी अरुण (लालिमा) । आरकत (सं० आरकत)=लाल । आसकत=लुब्ध, मोहित ।

७ कालिंदी की धार निरधार है अधर=नायिका के खुले हुए केश ऐसे जान पड़ते हैं मानों अंतरिक्ष में निराधार यमुना की धारा लटक रही हो ।

गन अलि के धरत.....लेस हैं = भ्रमरों के समूह केशों की थोड़ी सी सुन्दरता भी नहीं रखते हैं। अहिराज = शेषनाग। सिखंडि = मयूर की पूँछ। इन्द्रनील कीरति कराई नाहिँ ए सहैं = नीलम के कालेपन की कीर्ति को ये नहीं सहते हैं अर्थात् नीलम से भी अधिक काले हैं। हिय के हरष-कर = हृदय को प्रसन्न करने वाले। सटकारे = चिकने और लंबे।

८ जोवनवारी = यौवन वाली। ही = थी। बन वारी = बन में रहने वाली। बनवारी = कृष्ण। तेरी चितवन ताके.....बनिता के = ताकने पर (देखने पर) तेरी चितवन स्त्री के चित्त में चुभ गई। बनि = बन-ठन कर, सज-धज कर। माया = प्रेम। निकेतन की = घर की। मीनकेतन = कामदेव। अन-वरत = लगातार। वरत = व्रत, संकल्प। वाके और न वरत = तुम्हें छोड़ उसे और किसी के पाने की इच्छा नहीं है। नव रत = नया प्रेम।

९ हवाई = १ हवा २ वान, एक प्रकार की आतशवाजी। लागती = १ लगती है २ जलाती है। सेनापति स्याम.....सहाई है = तुम्हारे आने की अवधि की आशा ने सहायक होकर बहुत दुःख दिया है। तुम्हारे आने की आशा से पहले तो कुछ सहायता मिली किंतु पीछे तुम्हारे न आने से मुझे बहुत व्यथा सहनी पड़ी। हम जाति.....अ-बलाई है = हम अवला जाति की हैं, सर्वदा निर्बल रहती हैं। जो तुम लगाई.....इ० = जिस अंग रूपी लता को तुमने जमाया था, जिसकी तुमने रक्षा की थी, उसी को कामदेव ने जला दिया है।

१० कुंद से दसन धन = स्त्री के दाँत कुंद पुष्प के समान हैं। कुंदन = उत्तम सुवर्ण। कुंद सी उतारि धारी = स्त्री तोड़े हुए कमल के पुष्प के समान है।

११ रही रति हू के उर सालि = रति के हृदय में भी चुभ रही है; अपने सौंदर्य के कारण रति के हृदय में भी ईर्ष्या उत्पन्न करती है। दुरद = हाथी। भरपूर = परिपूर्ण। पहिरे कपूर-धूरि = शरीर पर कर्पूर का लेप किए हुए है। नागरी = नगर में रहने वाली, प्रवीण स्त्री। अमर-मूरि = अमर कर देने वाली जड़ी। नागरी अमर-मूरि.....इ० कामदेव की पीड़ा से शांति देने के लिए स्त्री अमर-मूरि के समान है; वह काम-पीड़ा को नष्ट करती है। मृग-लंछन = चंद्रमा। मृग-राज = सिंह। मृगमद = कस्तूरी।

१२ अलक = मस्तक के इधर-उधर लटके हुए बाल। ओल = “वह

वस्तु या व्यक्ति जो दूसरे के पास जमानत में उस समय तक रहे, जब तक उसका मालिक वा उसके घर का प्राणी उस दूसरे आदमी को कुछ रुपया न दे या उसकी कोई शर्त पूरी न करे”, स्थानापन्न व्यक्ति। मैंका न ओल जाकी.....इ० = जिस स्त्री के अंग के हाव-भाव देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मेनका उसकी स्थानापन्न नहीं हो सकती है अर्थात् वह उसके लिए बराबर नहीं है।

१५ कुल-कानि = वंश-मर्यादा। भरियत है = कठिनता से व्यतीत करती हैं। कानावाती = कानाफूसी। कानावाती हैं करत = नायक से प्रेम हो जाने की चर्चा एक दूसरे से करते हैं। वाती = वातक, संहारक। रंग = आमोद-प्रमोद।

१६ नैन तेरे मतवारे.....इ० = तेरे मतवाले नेत्र मेरे मत के नहीं हैं, मुझसे सहमत नहीं हैं।

१७ लोयन खयन कौं = लोगों के कानों को। चेटक = जादू।

१८ प्रीति करि मोही.....इ० = पहले मुझसे प्रेम कर मुझे मोहित कर लेते हो किंतु बाद में मेरी इच्छाओं को अपूर्ण रख कर मुझे तरसाते हो। अरकसी = आलस्य।

१९ विवि = दो। वैसौ करि.....विवि देह = तुमने पहले तो ऐसा प्रेम किया मानों हम दोनों दो शरीर धारण किए हुए एक-ही प्राण रखते हों। ताते = गरम। सिराइहौ = शीतल करोगे। निरधार = निश्चय।

२० अमरप = क्रोध। कीजै आस.....मानियै = जिससे कुछ आशा की जाती है उसका क्रोध भी सहा जाता है (हम तुमसे प्रेम की आशा करती हैं इसीसे तुम्हारे क्रोध को भी सहती हैं)।

विशेष :—अंतिम चरण की गति त्रिगङ्गी हुई है।

२१ मधियाती = मध्यवर्ती।

२३ सेनापति मानौ.....राख्यौ है = नायिका के नेत्रों से अश्रु धारा बहने के कारण दोनों कुच जलमग्न हो गए हैं; ऐसा जान पड़ता है मानों उरुने प्रियतम के दर्शन पाने की इच्छा से शिव की दो मूर्तियों को जल मग्न कर रक्खा है जिससे शिव जी पृजा से प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण कर दें।

२४ भई ही साँझी बार सी = सायंकाल हो चला था, संध्या हो गई

थी । कहत अधीनता कौ.....३० = जिसके नेत्र प्रियतम से मिल कर हृदय की पराधीनता की सूचना दे देते हैं = नायिका के कामोत्त होने का भेद प्रकट कर देते हैं तथा उसके लिए स्वयं सिफारिश भी करते हैं । आरसी = शीशा । आर सी = अनी के समान ।

२५ धिंव = कुँदरू ।

२६ जलजात = कमल । पात = पाता है । पातकी = पापी । काम भूप सोवत सो जागत है = मुग्धा नायिका कामदेव से अनभिज्ञ होते हुए भी कुछ-कुछ परिचित होने लगी है । अथौत = अस्त हो रही है । भाँई = छाया, भल्लक । भाँई पाई परभात की = मुग्धा नायिका में शैशव रूपी रात्रि का अंत हो रहा है तथा यौवन रूपी दिन का उदय हो रहा है; इस वयःसंधि के अवसर पर नायिका की छवि प्रभात काल की सी है ।

२७ विरति = उदासीनता । परन-साला (सं० पूर्ण शाला) = पत्तों की बनी हुई भोपड़ी । पंचाग्नि = “एक विशेष प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करने वाला अपने चारों ओर अग्नि जला कर दिन में धूप में बैठा रहता है” । संजम = इन्द्रिय-निग्रह । सुरति = ध्यान । सौक = एक सौ । जप-छाला = माला जपने के कारण पड़े हुए उँगलियों के छाले ।

२८ जातरूप भूषन.....सुहाति है = सुवर्ण के आभूषणों को पहनने से तेरे सौंदर्य की वृद्धि नहीं होती क्योंकि तेरा वर्ण सुवर्ण से भी अच्छा है ।

३० सयान = चतुर्धाई ।

३१ जाउक = महावर । परतछुल्ल = प्रत्यक्ष । अछुल्ल = अच्छी प्रकार से । आरसीलै = अलसाए हुए । आरसी = शीशा ।

३२ नख-छत = नाखूनों द्वारा किया हुआ घाव । कहा है सकुच मेरी = मेरे लिए तुम्हें क्या संकोच होता है । खौरि = चंदन का टीका ।

३६ मृगमद = कस्तूरी । असित = श्याम वर्ण की ।

३७ नग मनी के = रत्न और मणियों के । जाके निरखत खन बढ़ै ३० = जिसको देखते ही कामदेव हृदय में अधिक पीड़ा उत्पन्न करने लगता है, रति की इच्छा बढ़ जाती है तथा मुख अधिक होता है ।

४२ लोल = चंचल । कपोल = तरंगें । पारावार = समुद्र । पटवास = वह वस्तु जिससे वस्त्र सुगंधित किया जाय ।

४३ अरग = अलग । अरगजा = कर्पूर, चंदन आदि द्वारा तैयार

किया हुआ शीतल लेर । मार=कामदेव । प्रीतम अरग जातैं...मार कौं= प्रियतम का वियोग है इसी से अरगजा से शीतलता नहीं होती और काम ज्वर प्राण लिए लेता है । धनसार=कर्पूर । धन=लोहारों का बड़ा हथौड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं । सार=लोहा ।

४४ हाला=मदिरा । हाला में हलाई=मदिरा में मिला कर । हलाहल=भयंकर विष ।

४५ कीजै ताही सौ सयान.....इ०=जो चतुर कहलाती हैं, आर उन्हीं से चतुराई की बातें किया कीजिए ।

४६ गंधसार=चंदन । हवि=वह सामग्री जिसकी हवन करते समय आहुति दी जाय । ऐन=बिलकुल, उपयुक्त । मैं रधि है=कामदेव रूपी सूर्य है । ही-तम=हृदय का अंधकार ।

४६ तनमुख=एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा । सारी=साड़ी । किनारी=पाढ़ । मंडल=वर्षा ऋतु में चंद्रमा के चारों ओर पड़ने वाला घेरा, परिवेश ।

५० काम-केलि कथा=रति-क्रीड़ा का वर्णन । कनाटेरी दै सुनन लागी=कान लगा कर सुनने लगी है । केलि=खेल कूद ।

५२ रवन=स्वामी । ताही एक रति उन.....पल कल गए हैं= तुम्हारे गुणों को पल भर मधुर ध्वनि के साथ गाने पर उस रात्रि को नायिका थोड़ी देर के लिए सो सकी ।

५४ गाइन=गवैया । ताल गीत बिन.....अलापचारी है=गायक लोग अपना गीत प्रारंभ करने के पूर्व उस राग के स्वरों को भरते हैं जिसका गीत उन्हें गाना होता है । इसका उद्देश्य किसी राग-विशेष के स्वरूप को चित्रित करना होता है। इसे अलाप कहते हैं और इसमें गीत के शब्दों तथा ताल आदि का कोई बंधन नहीं रहता है । ऐसी अलापों में राग के शुद्ध स्वरूप के दर्शन होते हैं । कृत्रिम श्रृंगारों से विहीन नायिका केवल अपने स्वाभाविक स्वरूप से इस प्रकार शोभित हो रही है जैसे किसी गायक की अलाप ।

५५ इन्द्रगोप=बीरबहूटी ।

५७ पोति=काँच की शुरिया ।

५८ असोग=शोक-रहित, शुभ । जग-मनि=संसार में सर्वश्रेष्ठ । सो पैग से नापति है=ऐसे चलती है जैसे कोई डग नाप रहा हो, सँभाल कर

वे अब किस प्रकार निकल सकते हैं। (अर्थात् कोठरी में ताला लग जाने से उसके भीतर के रत्न लोगों को अप्राप्य हो जाते हैं क्योंकि उस कोठरी के ताले में दूसरी ताली नहीं लग सकती)।

अलंकार :—प्रस्तुत कवित्त प्रधानतया सांग रूपक है, केवल अंतिम पंक्ति श्लिष्ट है।

२६ शब्दार्थ :—ज्वारी = हृदय की दृढ़ता, साहस। गोसे = १ एकांत स्थान २ कमान की दोनों नोकें। तीर = १ समीप २ वारण।

अर्थ :—(हे सखी) कृष्ण ऐसे फिर गए (चले गए) जैसे कमान फिर जाती है (कृष्ण के रुठ कर चले जाने में वैसी ही विवशता होती है जैसी कमान के फिर जाने से)।

कृष्ण-पक्ष में :—कृष्ण का दूसरा ही रूप हो गया है, इससे (हे) सखी ! (अब हृदय को) कैसे साहस हो; (कृष्ण को वश में करने की) युक्तियाँ व्यर्थ हुईं; (अपना) कुछ भी वश नहीं है (अपने काय के बाहर की बात है)। (कभी) एकांत (में) नहीं मिलते, (उनके) समीप (होने) का किस प्रकार संयोग हो (यदि एकांत में मिलें तो उनकी सहचरी बनने के लिए उनसे प्रार्थना करूँ); पहले का सा रुझान किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है (पहले जो अनुरक्ति उन्होंने दिखलाई थी उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है)। लाल (का) श्याम वर्ण चित्त (में) चुभ रहा है; (यह) दुखदाई वर्षाऋतु किस प्रकार व्यतीत होती है (लाल के वियोग में वर्षाऋतु किस प्रकार व्यतीत हो)। हाथ पकड़ने से पाँच (भले) आदमियों में लज्जा आती है (यदि मैं किसी दिन मार्ग में उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोकने का विचार करूँ तो लोक-लाज का संकोच होने लगता है)।

कमान-पक्ष में :—(कमान) का रूप दूसरा हो गया (है) (उसके दोनों सिरे ऊपर की ओर घूम गए हैं); इससे (हे) सखी ! धैर्य किस प्रकार हो। (कमान के) जोड़ व्यर्थ हो गए हैं (अर्थात् वे काम नहीं करते हैं), (अपना) कुछ भी वश नहीं है (अपनी शक्ति के बाहर की बात है)। कमान के सिरे (अब) नहीं मिलते, तीर (चलने का) संयोग किस प्रकार हो (धनुषकोटि के न मिलने के कारण तीर नहीं चलाया जा सकता है); (कमान का) पहले का सा भुकाव किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। सेनापति (कहते हैं कि पक्षियों आदि के लाल (तथा) श्याम (आदि) रंग चित्त (में) चुभ रहे हैं, दुखदाई

करने में समर्थ हैं। मैना-वैनी = मैना पक्षी के समान बोलने वाली, मिष्टभाषी।
सैना-वैनी सी करति है = नेत्रों के इशारों से बातचीत करती है।

७० अंगना = अच्छे अंग वाली स्त्री, कामिनी। नाहै = पति को।
अंगना = आँगन। वसुधा रति है = यह पृथ्वी की रति है।

७१ दरपक (सं० दर्पक) = कामदेव। ऐसे जैसे लीने संग दरपक
रति है = तुझे पाकर वह तेरे पास इस प्रकार शोभित होगी जैसे कामदेव को
साथ में लिए हुए रति शोभित होती है। अर पकरति है = हठ करती है।
जातै सच मुखन की.....इ० = जाते ही समस्त मुखों की राशि अर्पित कर
देती है।

७२ बागौ = “अंग्रे की तरह पुराने समय का एक पहनावा, जामा”।
बागौ निसि-बासर सुधारत हौ.....सुरत हौ = खंडिता नायिका अपने पति
से कहती है कि तुम सदा अपना बागा सँभाला करते हो, रात्रि में उस स्त्री
के यहाँ रह कर रति-क्रीड़ा करते हो। दे कै सरवस भरमावत हौ उनै =
उन्हें सब कुछ देकर गौरवान्वित करते हो। मेरी मन सरवस.....इ० =
भूखी बातें कह कर मेरे समस्त मन को भटकाया करते हो। सादर, सुहास-
पन ताही कौ करत साल = आदर सहित प्रसन्नचित्त होकर उसके हृदय की
इच्छाओं की पूर्ति करते हो। सादर सुहासपन ताही कौ करत हौ = उसे समा-
दृत कर उसी को प्रफुल्लित करते हो। मानौ अनुराग...धरत हौ = उसी का
अनुराग मानते हो, उसी से प्रीति करते हो; मस्तक पर महावर लगाए हुए हो,
ऐसा जान पड़ता है मानो यह उसके हृदय का (‘उर कौ’) महान् (‘महा’)
अनुराग है जो तुमने धारण कर रक्खा है (प्रीति अथवा अनुराग का रंग लाल
माना जाता है)।

७३ पारिन = पानी रोकने वाला बाँध या किनारा, मेड़। लागी
आस-पास...जाति है = जलाशय के चारों ओर मेड़ बनी हुई है जो उसे चारों
ओर से घेरे हुए है। पंचवान = कामदेव। बस वारी = उमर वाली। वनि =
वन-वन कर। ग्राम = संगीत में सात स्वर माने जाते हैं। इन सात स्वरों के
समूह को ग्राम अथवा सप्तक कहते हैं। ग्राम तीन होते हैं—१ मंद २ मध्य
तथा ३ तार। सबसे ऊँचे स्वरों के सप्तक को तार सप्तक तथा सबसे धीमे स्वरों
के सप्तक को मंद सप्तक कहते हैं। जिस सप्तक के स्वर न तो बहुत धीमे हों
और न बहुत ऊँचे ही हों उसे मध्य सप्तक कहते हैं। तान = कई स्वरों को

गीत से दुगुनी अथवा तिगुनी लय में कह कर पुनः गीत के सम पर मिलने को तान लेना कहते हैं । रही ताननि मै बसि...३० = अनेक प्रकार की तानें लेने में तल्लीन है । ताल में कोई भूल नहीं करती है । तान समाप्त होने पर पुनः सम पर मिल जाती है । सेनापति मानौं रति, नीकी निरखत अति = सेनापति कहते हैं कि वह मानो रति है, देखने में अत्यंत सुन्दर है । सुरेस वनिता = इंद्र की स्त्री सची ।

७४ भासमान = युतिमान् । सोभत हैं.....वरनत के = वर्णन करने में युतिमान् अंग शोभा पा रहे हैं; नायिका का कांतिमान् शरीर शोभित हो रहा है । कीव = इस शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है । संभवतः यह 'की' तथा 'अव को एक करके गढ़ लिया गया है । 'कवित्त-रत्नाकर' में इस प्रकार के कुछ अन्य शब्द भी पाए जाते हैं = जौव (जौ + अव), तेव (ते + अव) । ताकी तरुनाई.....वरनत के = अव नायिका की युवावस्था तथा निपुणाई आदि का वर्णन उसकी अर्थात् नायक कृष्ण की सभा में समान रूप से हुआ—सब ने समान रूप से उसके रूप तथा गुण की प्रशंसा की । पैचन ही = युक्तियों द्वारा ही । बल्लभा = प्रिय स्त्री । पाए फल बल्लभा, समान वरन तके = अपने परिश्रम के फल स्वरूप कृष्ण ने प्रिय स्त्री को प्राप्त किया; देखने पर कोई दूसरी स्त्री उसके समान श्रेष्ठ नहीं है । बहुत खोजने पर भी नायिका के समान रूपवती स्त्री नहीं देखी जाती है । दिन-दिन प्रीति नई वरन तके = नायक-नायिका की प्रीति बढ़ती ही गई; नायिका के बाँई ओर सुशोभित होने के कारण कृष्ण के वाम भाग की कांति अनुपम हो गई; वर्ण को देखने पर वह नायिका की कांति के समान प्रतीत होती है अर्थात् कृष्ण तथा नायिका का वर्ण एक ही प्रकार का है ।

तीसरी तरंग

२ धीर = मंद । सत = सैकड़ों ।

३ कुटज = एक जंगली पेड़ जिसके पुष्प बड़े सुन्दर होते हैं । घन = बहुत अधिक । चंपक = चंपा । फूल-जाल = पुष्पों के समूह । आछे अलि अछर = सुन्दर भौरे अक्षरों के समान जान पड़ते हैं । जे कारज के भित्त हैं = भौरे मतलब के साथी हैं; मकरंद के लोभ से ही वहाँ एकत्रित हुए हैं । कागद

रंगीन मैं.....कवित्त हैं=विविध वर्णों के पुष्पों पर बैठी हुई भौरों की पंक्ति को देखकर ऐसा जान पड़ता है मानों चतुर वसंत ने, रंगीन कागज पर, कामदेव रूपी चक्रवर्ती राजा के पराक्रम को वर्णित करने वाले कवित्त लिख दिए हों।

४ केसू=टेसू, पलाश। बिलास=सुन्दर और भव्य। संग स्याम रंग...३० टेसू के पुष्प गुच्छों में फूलते हैं। ये गुच्छे घुंडियों से निकलते हैं। घुंडियों का रंग गहरा कर्तई होता है, किंतु दूर से देखने पर काला जान पड़ता है इसीसे कवि ने 'संग स्याम रंग भेंटि' लिखा है। टेसू के पुष्प काली घुंडियों के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानों उनका एक सिरा स्याही में डुबो दिया गया हो। आधे अन-सुलगि...परचाए हैं=लाल लाल पुष्प काली घुंडियाँ तथा पुष्पों पर बैठी हुई भ्रमरावली के साथ ऐसे जान पड़ते हैं मानों कामदेव ने वियोगियों को जलाने के लिए क्वैला सुलगाया हो। लाल पुष्प क्वैलों के जले हुए अंश से जान पड़ते हैं तथा काली घुंडियों के गुच्छे बिना जले हुए क्वैलों के सदृश प्रतीत होते हैं।

५ सेनापति साँवरे की.....विहाल है=फूला हुआ रसाल प्रिय की मूर्ति की प्रीति ('सुरति') का स्मरण कराकर वियोगियों को बेचैन कर डालता है। दल्लिन-पवन=मलयानिल। एती ताहू की दवन=प्रिय के विदेश में होने के कारण मलयानिल भी इतनी गरम जान पड़ती है। प्रवाल=मूँगा। जऊ=यद्यपि। साल=वृक्ष। जऊ फूले और साल...३०=यद्यपि प्रवाल आदि अन्य अनेक वृक्ष फूले हुए हैं किंतु रसाल (ग्राम) हृदय को सालने वाला है (छेदने वाला है अर्थात् पीड़ा पहुँचाने वाला है) ('रसाल' से प्रिय का स्मरण हो आता है इसी से वह विशेष दुखदाई है)।

६ विराव=कलरव। मुरत-स्म-सीकर सुभाव के=रति के परिश्रम से उत्पन्न स्वाभाविक पसीने की बूँदें। अनुकूल=विवाहिता स्त्री में ही अनुरक्त रहने वाला नायक। सीसफूल=शिर पर पहनने का एक आभूषण। पाँवड़ेऊ=“वस्त्र आदि जो आदर के लिए किसी के मार्ग में बिछाया जाय।”

७ देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५६।

८ मनी=अहंकार। राचैं=रंग जाते हैं, अनुरक्त हो जाते हैं।

९ अचिह्न=शीघ्रता-पूर्वक।

१० तल=नीचे का भाग। ताव=आला। जल-जंत्र=फौहारे आदि की भाँति के जल के यंत्र। सुधा=चूना। ऊँचे ऊँचे अटा.....३०=ऊँचे

महलों को चूने से पोता कर दुरुस्त कर रहे हैं। सार=उत्तम, श्रेष्ठ। तार=बहुत अच्छा मोती। सार तार हार.....इ०=उत्तम मोतियों की मालाओं को मोल लेकर रख रहे हैं। सीरे=शीतल।

११ वृष कौं तरनि=वृष राशि के सूर्य। तचति धरनि=पृथ्वी तपती है। भरनि=ताप। सीरी=शीतल। पंथी=पथिक। पंछी=पच्ची। नैक दुपहरी के दरत=दोपहर के थोड़ा ढलने पर अर्थात् लगभग दो बजने पर। धमका=ऊमस। होता धमका...खरकत है=ऐसी विकट ऊमस होती है कि कहीं पच्ची तक नहीं हिलती। मेरे जान पौनों.....वितवत हैं=मेरी समझ में ग्रीष्म की भीषण ताप से थक कर हवा भी किसी शीतल स्थान में बैठ कर एक घड़ी के लिए विश्राम कर रही है।

विशेष :—‘धमका’ के स्थान पर अनेक स्थानों में ‘धमका’ शब्द का प्रयोग सुना जाता है किंतु ‘कवित्त-रत्नाकर’ की समस्त पोथियों में ‘धमका’ शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। अतएव इस शब्द को इसी रूप में रक्खा गया है।

१२ दिनकर=सूर्य। लाग्यौ है तवन=तपने लगा है। भूतलौ=पृथ्वी को भी। मानौं सीत काल...धराइ कै=भीषण गरमी के कारण शीतलता केवल तहखानों में मिलती है; मानो विधाता ने शरदऋतु में शीत रूपी लता के जमाने के लिए पृथ्वी के भीतर, बीज रूप में, थोड़ी सी ठंडक रख छोड़ी है, जैसे किसान अन्न के बीज को पृथ्वी में गाड़ कर रखते हैं। ब्रह्मा ने भविष्य के विचार से ही तहखानों में थोड़ी ठंडक बचा रखी है जिसमें शीत का अस्तित्व ही संसार से न उठ जाय।

१४ उसीर=खस। वाम=स्त्री। सोइ जागे जानैं.....कहत है=गरमी के दिनों में बहुत अधिक सो जाने के बाद कभी-कभी जब गोधूली के लगभग नींद खुलती है तो बहुधा सोने वाले को ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों सबेरा हो गया हो। दूसरे दिन के भ्रम से प्रातः काल किए गए कार्यों को वह पिछले दिन का समझने लगता है; जिन बातों को उसने सबेरे ही किया था उनके संबंध में इस प्रकार कहता है जैसे उन्हें कल किया हो।

१५ भार=भाड़। व्योम=आकाश। आतताई=आग लगाने वाला। पुट-पाक=किसी धातु आदि की भस्म बनाने के लिए वैद्य लोग उसे मिट्टी के मुँहबन्द बरतन में रखकर आग में पकाते हैं। पुट-पाक सौ करता है=ग्रीष्म की भीषण गरमी पड़ रही है, मानो जेठ सारे संसार का पुट-पाक

सा बना रहा है ।

१६ तापकी=ताप वाला । मानों बड़वानल सौं.....इ०=जेठ की ताप के कारण शरीर अग्नि के समान जल रहा है किंतु आपाढ़ के आगमन से शरीर में शीतलता का भी संचार होने लगता है । शरीर पर इन दोनों का संयोग एक ही समय देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्र बड़वाग्नि सहित जल रहा है ।

१७ सैनी सीरक उसीर की=शीतल खस की टट्टियों की श्रेणी । पटीर=एक प्रकार का चंदन । छिरकी पटीर—नीर...इ०=स्थान स्थान की टट्टियाँ चंदन के कीच द्वारा छिड़की गई हैं ।

१८ देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५३ ।

१९ देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५० ।

२१ काम धरे थाढ़.....इ०=कामदेव ने तलवार, तीर तथा जम-डाढ़ पर साग रक्खा है । गाढ़=संकट ।

३४ वृष=१ वृष राशि २ बैल । भूत-पति=शिव । धनुष=१ धन राशि २ कमान । खग=१ सूर्य २ पक्षी । पोत=१ पारी २ पक्षी का छोटा बच्चा । कोत्रिद=विद्वान् । गोत=समूह । धनुष कौं पाइ.....पोत है=१ धन राशि में सूर्य तीर की भाँति शीघ्रता-पूर्वक चला जाता है अर्थात् सूर्यास्त अत्यंत शीघ्रता-पूर्वक हो जाता है । जय देखो तब रात ही है, दिन को अपनी पारी ही नहीं मिलती; सर्वदा रात्रि का ही प्रभुत्व दिखलाई देता है २ पक्षी धनुष को देखकर तीर से ऐसे भग जाता है मानो रात्रि हो रही हो और उसे अपना बच्चा न मिल रहा हो । यातैं जानी जात.....इ०=ग्रीष्म तथा शीत ऋतु के इस महान् अंतर को देख कर यह जान पड़ता है कि जेठ मास में सूर्य सहस्र कर वाले रहते हैं किंतु पूस में वही सूर्य हजार चरणों वाले हो जाते हैं ।

२५ पाउस=वर्षा ऋतु । अंत=दूसरी जगह, अन्यत्र । तरजत है=धमकाता है । लरजत तन-मन=मन तथा शरीर कामदेव के भय से काँपे जाते हैं । रंग=आमोद-प्रमोद । किलकी=बेचैनी, दुःख । केका=मोर की बोली । एकाके=(एकाकी) अकेला ।

विशेष :—‘कृपाउस’—‘पाउस’ के जोड़ पर कवि ने ‘कृपाउस’ लिख दिया है । इसी प्रकार अंतिम पंक्ति में ‘केका के’ के जोड़ पर ‘एकाके’ रख दिया

है। शब्दालंकारों की अत्यधिक रुचि के कारण कुछ ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों के मनमाने रूप रख दिए हैं।

२६ कलापी=मोर। सीकर ते सीतल.....इ० वायु के भोंकों के कारण जल-बिंदु शीतल लगते हैं।

२७ खगवारौ=गले में पहनने का एक गोल आभूषण, हँसली। त्रिविध वरन परचौ.....इ०=वर्षा रूपी वधू, विविध आभूषणों से सुसज्जित होकर, सावन रूपी प्रियतम से विवाह कर रही है। त्रिविध (लाल, हरे तथा पीले) वर्णों से युक्त इंद्रधनुष ऐसा जान पड़ता है मानो वह, लाल तथा पन्ना (हरे रंग का) से जड़ी हुई सुवर्ण की खगवारी है, जिसे वर्षा रूपी वधू ने अपने विवाह के अवसर पर पहन रक्खा है।

२८ धीर=गंभीर। दरकी=विदीर्ण हो गई। सुहागिन=सौभाग्य-वती स्त्री। छोह भरी छतियाँ=शोक-पूर्ण हृदय। बर की=प्रियतम की। डग भई बावन की.....इ०=वामन अवतार में राजा बलि को छलते समय जिस प्रकार विष्णु भगवान् का डग बहुत विस्तृत हो गया था उसी प्रकार, विरह के कारण, श्रावण की रात्रि बहुत ही लंबी हो गई है।

२९ घनाघन=बरसने वाले बादल। सेनापति नैंक हू न.....इ०=घोर अंधकार के कारण आँखें निश्चल हो जाती हैं। दमक=लौ। जोगनान की भूमक=जुगनुओं की चमक। मानौं महा तिमिर तैं.....इ०=काले मेघों के कारण इतना अंधकार है कि रवि, शशि तथा नक्षत्रों का कहीं पता नहीं मिलता। मानो घोर अंधकार के कारण ये सब अपना-अपना मार्ग भूल गए हों और इधर-उधर मारे-मारे फिरते हों। इन सब का कहीं पता तक नहीं लगता है।

३० मयमंत=मदमत्त। खाई बिस की डरी.....इ० हे कृष्ण! मैं विष की डली खाकर मर जाऊँगी क्योंकि तुम्हारे विरह के कारण मुझे घोर कष्ट हो रहा है।

३१ उनए=घिर आए। तोइ=जल। चारि मास भरि.....इ०=“पुराणों के अनुसार आपाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन विष्णु भगवान् शेष की शय्या पर सोते हैं और फिर कार्तिक की प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं” प्रायः इन्हीं चार महीनों में वर्षा भी अधिक होती है। इसी के आधार पर कवि कहता है कि चौमासे भर मेघों के कारण इतना अंधकार रहता है कि श्याम

निशा का भ्रम होने लगता है। इसी भ्रम में पड़ कर विष्णु भी चार महीने सोया करते हैं !

२२ उन एते दिन लाए = प्रियतम ने इतने दिन लगाए। सीकरन = बूँदें। ताँतें ते समीर.....इ० = जो हवाएँ तुषार के समान शीतल हैं, वे भी विरह के कारण, गरम लगती हैं। विरह छहरि रख्यौ = बूँदें क्या पड़ रही हैं, मानो श्याम का विरह है जो छितरा रहा है। प्रतिकूल = विरोधी। तन डारत पजार से = शरीर को जला सा डालते हैं। खन = क्षण।

३४ देखिये पहली तरंग-कवित्त सं० १२।

३६ सारंग = मेघ। अनुहारि = आकृति।

३७ निकास = समाप्ति। वारिज = कमल। कास = एक प्रकार की लंबी घास। हरद = हल्दी। सालि = जड़हन धान। जरद = पीला, जर्द। दुरद = हाथी। मिथ्यौ खंजन-दरद = कहा जाता है कि गरमी से त्रस्त होकर खंजन पक्षी पहाड़ों पर चला जाता है और जाड़ों के आरंभ में उतरता है।

३८ दिगमंडल = सम्पूर्ण दिशाएँ। सुझ = चोटी। फटिक = काँच की तरह सफेद रंग का पारदर्शक पत्थर। अडंबर = गंभीर शब्द। छिछकै = छिड़कते हैं। छछारे = छोटें। मानौ सुधा के महल = मानौ चूने से पुते हुए महल हैं। तूल = रूई। पहल = धुनी हुई रूई की मोटी तह। रजत = चाँदी।

३९ पयोधर = १ वादल २ स्तन। रस = १ जल २ दुग्ध। उन्नत पयोधर वरसि रस गिरि रहे = १ जल-वृष्टि कर चुकने पर बड़े-बड़े मेघ कांति हीन हो गए हैं, उनमें वर्षा ऋतु की सी शोभा नहीं रह गई है। २ उठे हुए स्तन दुग्ध की वर्षा करने के बाद अर्थात् वस्त्रों को अधिक दुग्ध पिलाने के बाद अब ढल गए हैं, उनमें पहले की सी शोभा नहीं रह गई है। कास = एक प्रकार की लंबी घास जिसमें सफेद रंग के लंबे फूल लगते हैं। कुंभ-जोनि = अगस्त नक्षत्र। जोवन हरन.....केश हैं = १ जल ('वन') का हरण करनेवाले अगस्त नक्षत्र के उदय होने से वर्षा मानो वृद्धा हो गई है और स्थान स्थान पर फूले हुए कास मानो उसके श्वेत केश हैं। २ कलशाकार कुच यौवन की छवि को नष्ट करने वाले हैं; संतान-उत्पत्ति की शक्ति को छोड़ देने से ('जोनि उ दएतै') अर्थात् विविध जीव-जंतुओं के उत्पत्ति की शक्ति न रहने से वर्षा वृद्धा के समान जान पड़ती है; फूले हुए कास मानो उसके श्वेत केश हैं।

४१ कलाधर = चंद्रमा। बढ़ती के राखे.....इ० = ब्रह्मा ने चंद्रमा

को संपूर्ण कलाओं का भांडार नहीं बनाया है । जितनी कलाओं से रात्रि की शोभा-वृद्धि होती थी, केवल उतनी ही कलाएँ उन्होंने चंद्रमा में रक्कीं । उनको भय था कि यदि चंद्रमा में अनेक कलाएँ हो गईं तो रात से दिन हो जायगा, रात कभी होगी ही नहीं । इसी विचार से उन्होंने कुछ कलाएँ चंद्रमा से निकाल लीं जिसके कारण चंद्रमा में कलंक दिखलाई पड़ता है ।

४२ पीन = संपन्न, छवि-युक्त । अवनी रज = पृथ्वी की धूल । नीरज = कमल । अत्र नीरज है लीन = शरद ऋतु में कमलों का फूलना बंद हो जाता है । राजहंस = एक प्रकार का हंस, सोना पक्षी । हिमकर = चंद्रमा । भा = प्रकाश, दीप्ति । दुहूँ समता है परसी = जिस प्रकार मेघ-रहित आकाश नीला दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार वर्षा ऋतु बीत जाने के कारण सरोवर का जल नीले वर्ण का हो गया है । वर्ण-साम्य तथा थोड़ा बहुत आकार-साम्य के कारण भी दोनों एक से जान पड़ते हैं ।

४३ धूप = पूजा-पाठ के अवसर पर अथवा सुगंध के लिए कई गंध द्रव्यों (जैसे कपूर, अगर आदि) को जला कर उड़ाया हुआ धुआँ । धूप कौं अगर.....इ० = धूप देने के लिए अगर है तथा सुगंध के लिए सोंधा है । (सोंधा—एक प्रकार का सुगंधित मसाला जिससे स्त्रियाँ केश धोती हैं) ।

४४ सूरै तजि भाजी.....उतरति है = कार्तिक मास में हिमालय से बर्फ की 'सेना' उतरती चली आ रही है, इस बात को सुनकर गरमी सूर्य को छोड़कर भाग खड़ी हुई । प्रचंड मार्तंड के आश्रय में भी उसने अपना कल्याण न समझा, इसी से उसे त्याग दिया । आए अग्रहन कीने गहन दहन हूँ कौं = अग्रहन मास में गरमी ने अग्नि ('दहन') को ग्रहण किया । कार्तिक मास से सूर्य की गरमी मंद पड़ने लगी, अग्रहन में लोगों को आग तापने की आवश्यकता पड़ने लगी । हूल = पीड़ा । दौरि गहि, तजी तूल = जब अग्नि की ताप भी मंद पड़ने लगी तो गरमी ने रूई का आश्रय ग्रहण किया; किंतु थोड़े ही समय बाद उसने उसे भी छोड़ दिया अर्थात् रूई के वस्त्रों से भी लोगों की सर्दों कम न हुई । मूल = उद्गम-स्थान । कुच-कनकाचल = कुच रूपी सुमेरु पर्वत । गढ़वै गरम भई.....लरति है = अनेक आश्रयों के ग्रहण करने पर भी गरमी जब अपने अस्तित्व की रक्षा करने में समर्थ न हुई तो उसने अपने उद्गम-स्थान की शरण ली । विविध उपायों द्वारा वैरी का सामना करने में असमर्थ होने पर जिस प्रकार राजा अपने गढ़ के अन्दर रह कर अपने वैरी

का सामना करता है उसी प्रकार गरमी अपने कुच रूपी सुमेरु पर्वत के गढ़ के अन्दर पहुँच कर शीत से सामना करती है ।

विशेष :—इस कवित्त का अभिप्राय यही है कि हेमन्त में 'कुच-कनकाचल' को छोड़ कर गरमी का कहीं पता नहीं मिलता । उक्त भाव अनेक कवियों की रचनाओं में पाया जाता है किंतु यहाँ पर उसे सुंदर ढङ्ग से व्यंजित किया गया है ।

४६ केलि ही सौं मन मूसौ = क्रीड़ा कौतुक द्वारा कंत के मन को ठगो; उसे अपने वश में कर लो । प्रातः वेगिदं न होत = शीघ्रतापूर्वक सबेरा नहीं होता, सुखोदय जल्दी नहीं होता । होत द्रौपदी.....महत है = द्रौपदी की साड़ी की भाँति रातें लंबी हो जाती हैं, उनका अंत ही नहीं होने आता । कहलाइ कै = पीड़ित होकर ।

४७ दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमकि...इ० = सूर्य, बिजली के समान, अपनी एक चमक-मात्र दिखला कर अस्त हो जाता है, वह इतनी जल्दी अदृश्य हो जाता है कि सरोवरों के कमल तक खिलने नहीं पाते !

४८ अराति = शत्रु । सीत पार न परत है = सर्दी से छुटकारा नहीं मिलता है । धन = १ धन राशि २ युवती । और की कहा है.....परत है = शीत का ऐसा आतंक है कि सूर्य भी उसके आने पर धन राशि में आ जाते हैं (सूर्य के धन राशि में आने पर सर्दी अधिक पड़ती है) । जब सूर्य ऐसे प्रतापी की यह गति है तो आपको तो निश्चय ही धन विहीन (अपनी प्रेमिकाओं से विलग) न रहना चाहिए । आपको हमसे अवश्य मिलना चाहिए ।

४९ मार्ग-सीरष = मार्ग-शीर्ष, अग्रहन मास । नीर समीरन तीर सम इ० = तीर के समान शीतल वायु के लगने से जल से बहुत बर्फ बन जाती है—पानी जम कर बर्फ हो जाता है । जन-मत सरसतु सार यहै = लोक मत में इसी सिद्धांत की वृद्धि होती है अर्थात् लोगों में यही विचार प्रचार पाता है । तपन = धूप । तूल = रूई । धन = स्त्री ।

५१ बुखार = चारों ओर दीवार से घिरा हुआ कोठा जिसमें अन्न रक्खा जाता है, भांडार । पूर्वीय प्रांतों में इसे प्रायः 'बुखार' अथवा 'बुखारी' कहते हैं किंतु बरेली आदि जिलों के आसपास 'बुखारी' के रूप में इसका प्रचार बराबर पाया जाता है । तुषार के बुखार से उखारत है = शिशिर बर्फ के भांडारों को उखाड़े डाल रहा है अर्थात् बहुत बर्फ पड़ रही है । होत सून = शून्य हो जाते हैं । ठिरि कै = ठिठर कर । बौस = दिवस । बड़ाई = प्रशंसा ।

सहस-कर=सूर्य । सीत तैं सहस कर.....इ० = शीत से भयभीत होकर सहस-कर कहलाने वाले सूर्य ऐसे भाग जाते हैं मानो वे सहसचरण हों । तात्पर्य यह कि इतने प्रतापी होने पर भी सूर्य अत्यन्त शीघ्रता-पूर्वक अस्त हो जाते हैं ।

५२ रवि करत.....अवरेखियत है=सूर्य में जिस उड़ड़ ताप का होना प्रायः माना जाता है वैसा ताप अब उसमें नहीं रह गया है । माघ मास में उसकी किरणें पहले की सी प्रचंडता लिए हुए नहीं रहती हैं । छिन सौं बिसेखियत है=दिन बात कहने गायब हो जाता है इसी से एक क्षण से अधिक, थोड़ी देर के लिए भी, विशेष रूप से प्रतीत नहीं होता । केवल क्षण भर ही दिन का अस्तित्व रहता है । कल्प=कल्प; ४, ३२०,०००,००० वर्ष का समय, जिसके व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है । सोए न सिराति=घंटों सोते रहने पर भी समाप्त होने नहीं आती । क्योंहू=किसी प्रकार ।

५३ पाई—१ किरण २ पैर । पदमिनी=इस शब्द के श्लिष्ट होने के कारण इस कवित्तकी प्रायः सभी पंक्तियों के दोहरे अर्थ निकलते हैं । एक ओर कमलिनी के विरह का वर्णन है दूसरी ओर विरहिणी नायिका का चित्रण है । सेनापति ऐसी न बुझाति है=जिस कमलिनी ने माघ मास की सारी रात सूर्य के ध्यान में ही व्यतीत कर दी, उसे, निर्दय सूर्य, केवल थोड़े समय के लिए दर्शन देकर पुनः अस्त हो जाता है । कमलिनी को सूर्य के दर्शन इतने क्षणिक होते हैं कि वह पूर्ण रूपसे विकसित नहीं होने पाती । प्रिय के दर्शन पाने पर उसका मन कुछ तो प्रसन्न होता है तथा कुछ अप्रसन्न क्योंकि प्रियतम (सूर्य) पुनः अंतर्ध्यान हो जाता है । कमलिनी की इस स्थिति को देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो प्रिय के दर्शन के लिए उसके हृदय में अपार उत्साह भरा है ।

विशेष :—विरहिणी के पद में भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है ।

५४ थिर-जंगम=स्थावर तथा जंगम । ठिरत है=ठिठर जाता है, सर्दी के कारण शरीर सिकुड़ जाता है । पैयै न बनाई=वर्णित नहीं की जा सकती । तताई=गरमी । आतताई=जुलम करने वाला । छिति-अंबर धिरत है=पृथ्वी तथा आकाश, चारों ओर बर्फ छा जाती है । करत है ज्यारी..... बैर मुमिरत है=हेमंत के आतंक से धूप अपने वास्तविक प्रखर स्वरूप को

कदम रखती जा रही है। लाइक=योग्य। सच्ची सील-गति.....इ०=उसका आचरण सच्चा है, उसमें बनावट नहीं है इसी से वह इंद्राणी ('सच्ची') सी जान पड़ती है। उन बाल मति हारी निद्रा=उस नासमझ ने तुम्हारी निद्रा हर ली है। नाहिं नैक रति...इ०=उसके हृदय में तुम्हारे प्रति थोड़ा भी अनुराग नहीं है इसी से तुम्हारे प्रस्ताव के उत्तर में 'नहीं' कह दिया करती है। न दरप धारौ...कीनी नव नति है=दूती रूठे हुए नायक को समझाती है कि नायिका एक तो नासमझ है दूसरे तुम्हारे प्रति उसके हृदय में कोई विशेष अनुराग भी नहीं है; अतएव तुम्हें इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये। हे प्रिय व्यक्ति ! तुम अहंकार छोड़ दो और सादर उसके यहाँ जाओ। नायिका का यौवन बढ़ती पर है, वह पूर्ण-यौवना हो रही है तथा उसने नया रुझान भी किया है अर्थात् तुम्हारी ओर उसका ध्यान फिर से गया है इसी से तुम्हें सावधान हो जाना चाहिये।

५६ जो सुख बरस की है=जो सुख की वर्षा करने वाली है, सुख देने वाली है। गूजरी=पैरों में पहनने का एक आभूषण। मनि गूजरी भनक=रत्न-जड़ित गूजरी की भनकार करते हुए। गूजरी=गुर्जरी जाति की स्त्री, ग्वालिन। बनक बनी=सजधज के साथ। नंद के कुमार वारी=कृष्ण वाली अर्थात् कृष्ण की प्रेमिका। वारी=बाला, कम उमर वाली। मारवारी=मारवाड़ी। नारि मार वारी है=कामदेव की स्त्री अर्थात् रति है।

६४ विलोचन=नेत्र। जोरावर=बलवान। नेह-आँदू=स्नेह रूपी जन्जीर। पंकज की पंक में.....मससान्यौ है=मेरे नेत्र प्रिय के कमल रूपी मुख की शोभा के बीच में जा फँसे। मैंने अपने मन रूपी हाथी के नेत्रों को निकाल लाने के लिए भेजा। किंतु मन भी प्रेम के फन्दे में उलझ गया। मैंने कमल रूपी मुख की शोभा के बीच में मन को हाथी समान चलाया और उसे लौटाने का प्रयत्न किया। इसका फल यह हुआ कि अब तो नेत्रों के समेत मन भी उक्त कीच में धँस गया। तात्पर्य यह है कि अब मैं मन तथा नेत्र दोनों से ही हाथ धो बैठी।

६५ मल्हावति है—पुचकारती है। होरिल=नवजात बालक। पयपान=दुग्ध-पान।

६६ मानद=मान देने वाले। ही=थी। जाके बड़े नैना बैनी=जिसके बड़े नेत्र बातचीत करने वाले हैं, हृदय के भाव को दूसरों पर प्रकट

नहीं बनाए रह सकती, वह इतनी मंद पड़ जाती है जैसे चाँदनी। केवल चंद्रिका के रूप में ही वह अपने हृदय के साहस ('ज्यारी') को किसी प्रकार बनाए रहती है और बारंवार अपने वैरी (हिम) के वैर का स्मरण करती है, जिसके कारण उसकी ऐसी हीनावस्था हो गई है। छिन आधक फिरत है = सूर्य चंद्रमा का स्वरूप धारण कर दक्षिण की ओर भाग जाते हैं (सूर्य दक्षिणायन हो जाते हैं)। वे उत्तर की ओर जाने का साहस नहीं करते क्योंकि उत्तर में हिम का पर्वत (अर्थात् हिमालय) है। दक्षिण में भी वे केवल आधे क्षण रहते हैं। उन्हें, वहाँ भी अधिक ठहरने का साहस नहीं होता।

५५ ताप्यौ चाहैं वारि कर.....ऐसे भए टिउराइ कै = लोग आग जला कर अपने हाथों को सेंकना चाहते हैं क्योंकि वे सर्दों के कारण चिलकुल ठिठुर गये हैं, एक तिनका भी उठाने में समर्थ नहीं हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो वे अपने हैं ही नहीं, किसी दूसरे के हैं क्योंकि यदि वे अपने होते तो उनसे, इच्छानुसार, काम तो लिया जा सकता। दिनकर = सूर्य। गयौ घाम पतराइ कै = धूप हलकी पड़ गई है, उसका तेज जाता रहा। मेरे जान सीत के सताए सूर.....छपाइ कै = सूर्य शीत ऋतु द्वारा इतने त्रस्त हो गए हैं कि उन्होंने अपनी किरणों को समेट कर आकाश में छिपा रक्खा है।

५६ भयौ भार पतभार = डालों के पत्ते एकदम गिर पड़े हैं। रही पीरी सत्र डार.....सरसति है = वन की लताओं के पत्ते गिर पड़े हैं, पीली डालें द्रव्य रूपी प्रियतम के वियोग की सूचना दे रही हैं। निरजास (सं० निर्यास) = वृद्धों से आप से आप निकलने वाला रस। आस-पास निरजास, नैन नीर बरसति है = लताओं के तनों से जो गोंद बह रहा है वही मानो विरहिणी की अश्रु-वृष्टि है। मानहु वसंत-कंत.....इ० = वन की लता मानो वसंत रूपी प्रियतम के दर्शनों के लिए तरस रही है।

५८ देखिए, पहली तरंग कवित्त सं ३०।

६० चौरासी = आभूषण विशेष जो हाथी की कमर में पहनाया जाता है। चौरासी समान.....विराजति है = स्त्री कामदेव के मस्त हाथी के समान जान पड़ती है। जिस प्रकार हाथी की कमर में चौरासी शोभित होती है उसी प्रकार स्त्री की कमर में क्षुद्रघंटिका शोभायमान है। साँकर ज्यौग जुग धुंधरु बनाई हैं = दोनों पैरों की धुंधरु हाथी के पैरों में पड़ी हुई जंजीर के समान जान पड़ती हैं। कुंभ = हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए

क्योंकि राम इन सबसे भी बहुत बढ़कर हैं ।

५ दीपति-निधान = प्रकाश के आधार । मान = सूर्य । उक्ति = उक्ति । जुगति = युक्ति । जैसे दिन अनल...तीन लोक तिलक रिम्भाइयै = जिस प्रकार दीपक में तेल के स्थान पर केवल जल भर कर तथा उस दीपक को अग्नि से बिना जलाए ही कोई व्यक्ति प्रकाश के भांडार सूर्य को रिम्भाना चाहे, उसी प्रकार सेनापति तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ राम को काव्य की कुछ उक्तियों तथा चमत्कारों द्वारा रिम्भाना चाहते हैं । तात्पर्य यह है कि राम को काव्य की कुछ उक्तियों द्वारा प्रसन्न करने का प्रयत्न वैसा ही है जैसा सूर्य को जल का दीपक दिखाकर मोहित करना ।

७ सारंग-धनुष कौं = शिव के धनुष (पिनाक) को । धाम = घर, आश्रय । रुरौ = सर्वोत्तम । पूरन पुरुष = माया से निर्लिप्त ब्रह्म ।

८ चारि हैं उपाइ = राजनीति में शत्रुपर विजय पाने की चार युक्तियाँ—साम, दाम, दंड और भेद । चतुरंग संपत्ति = चार प्रकार की संपत्ति—भूमि, पशु (गोधन), विद्या तथा धन । चारिपुरुषारथ = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । आगर = खान । उजागर = प्रसिद्ध । चारि सागर = क्षीर, मधु, लवण और जल । चारि दिगपाल = पूर्व में इन्द्र, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर तथा दक्षिण में यम, ये चार दिशाओं के पालन करनेवाले माने जाते हैं ।

९ पाँचौ सुरतरु = मन्दार, पारिजातक, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन* । लोकपाल = दिक्पाल—इन्द्र पूर्व का, अग्नि दक्षिण-पूर्व का, यम दक्षिण का, सूर्य दक्षिण-पश्चिम का, वरुण पश्चिम का, वायु उत्तर-पश्चिम की, कुबेर उत्तर का और सोम उत्तर पूर्व का तथा ऊर्ध्व का ब्रह्मा और अधो का अनंत । बारह दिनेस = बारह राशियों के सूर्य ।

१० चापवान = धनुर्दारी । उपधान = सहायक । गाजत = गरजते हैं, शासन करते हैं ।

११ नरदेव = राजा । ते = उस । मुधरमा = देव सभा । बिसेखियै = विशेष रूप से प्रतीत होती है ।

*पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।

संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥

(अमरकोश—प्रथम कांड, स्वर्ग वर्ग, श्लोक ५०)

१२ धरपितृ=अप्रमानित ।

१३ अगन=न चलने वाले । स्थावर । गगन-चर=देवता आदि आकाश मार्ग से चलने वाले । सिद्ध=एक प्रकार के देवता जिनका स्थान भुवलोक कहा गया है । चख, चित, चाहति हैं=नेत्रों से देखती हैं तथा चित से चाहती हैं (प्रेम करती हैं) । चन्द्रसाला=सब से ऊपर की कोठरी ।

१६ हहरि गयौ=काँप गए । धीरत्तन मुक्किय=अपने शरीर के धैर्य को छोड़ दिया । धुक्किय=नीचे की ओर धँस गया । अखिख=आँख । पिखिख नहिं सकई=देख नहीं सकती । नखिखन लगिय=नष्ट होने लगे । उदंड=प्रचंड । चंड=बलवान् । निर्घात=बिजली की सी कड़क ।

१७ नाकपाल=देवता । वानक=सज-धज । वनक=वर, दूल्हा । वानक वनक आई—सज-धज के साथ राम के समीप आई । भनक मनक=आभूषणों की भनकार करती हुई ।

१८ ऐन=अयन, घर । इंदु=चंद्रमा । मानों एक पतिनी के व्रत की.....अरपन की=राम से बढ़कर एक पत्नी में अनुरक्त रहने वाला दूसरा नहीं है तथा सीता पातिव्रत धर्म पालन करने में सर्वश्रेष्ठ हैं । दोनों ने स्वयंवर के अवसर पर एक दूसरे को अपना तन-मन अर्पण कर दिया । राम-सीता का मिलन देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो एक पत्नी-व्रत तथा पातिव्रत धर्म की दोनों सीमाएँ मिल रही हैं ।

१९ मा जू महारानी कौं.....इ०=कंकण खोलते समय सखियाँ राम से परिहास कर रही हैं । वे कहती हैं कि तुम अपनी माताओं तथा पिता को यहाँ बुलाओ और उनसे सलाह लो तब शायद यह कंकण खुल सके । अरुंधती के प्रिय=वशिष्ठ, जो कि सप्तर्षि मंडल का एक नक्षत्र है । इसके समीप के तारे का नाम अरुंधती है ।

२० वारि फेरि पियै पानी="स्त्रियाँ बहुधा पानी की धार पृथ्वी पर डालती हुई किसी प्रिय व्यक्ति की परिक्रमा सी करती हैं तथा पुनः बचे हुए पानी को थोड़ा सा पी लेती हैं । इसका अभिप्राय यह होता है कि उस प्रिय व्यक्ति के जितने कष्ट हों वे सब उसे छोड़ कर पानी पीने वाले व्यक्ति के आ जायँ" । बलाइ लेत="किसी का रोग दुःख अपने ऊपर लेना.....स्त्रियाँ प्रायः बच्चों के ऊपर से हाथ धुमाकर और फिर अपने ऊपर ले जाकर इस भाव को प्रकट करती हैं ।" अपने ऊपर हाथ धुमाने के पश्चात् वे प्रायः

एक बार ताली बजाती हैं । भाईं = परछाईं । विवि = देव ।

२१ अगार = घर । भौन के गरभ = गृह के बीच अर्थात् आँगन में । छुबि छीर की छिटकि रही = विविध रत्नों तथा वस्त्रों आदि की शुभ्र छटा चारों ओर फैल रही है, ऐसा जान पड़ता है मानो चारों ओर दूध ही दूध है । मुरति करत.....इ० = राम सीता को इस प्रकार अमोद-प्रमोद करते हुए देख कर लोगों को क्षीर सागर का स्मरण हो आता है क्योंकि क्षीर सागर के समान ही यहाँ पर भी मणियों की शुभ्र छटा फैल रही है ।

२४ कुहू = अमावस्या । पून्यों कौं बनाइ.....बिगारि कै = सीता के मुख से टक्कर लेने के लिए ब्रह्मा पूर्णिमा का चंद्रमा बनाते हैं किंतु जब पूर्ण चंद्र भी सीता के मुख के समान नहीं हो पाता तो वे अमावस्या के व्याज से उसे बिगाड़ डालते हैं और पुनः प्रयत्न करना प्रारंभ कर देते हैं ।

२५ विशेष :—‘देवी भागवत’ के अनुसार शारदा विष्णु की पत्नी थीं ।

२६ कोटि = धनुष का सिरा, यहाँ पर धनुष । निलुत्रिय = क्षत्रिय-विहीन । छिति = पृथ्वी । छोह भर्यौ = क्रोध से पूर्ण । लोह = फरसा, परशुराम का अस्त्र । निरधार = निर्मूल, निर्वेश । परत पगनि, दसरथ कौं न गनि = पैरों पड़ते हुए दशरथ की तनिक भी चिंता न कर । जमदग्नि-कुमार = परशुराम ।

२७ छाँड़ी रिप-रिति-है.....कहनेऊ की = परशुराम ने मुनियों का सा आचरण छोड़ दिया है, कहने-सुनने के लिए भी ऋषियों की सी कोई बात नहीं रक्खी है । सुधि-बुधि ना भनेऊ की = उन्हें यह भी खबर नहीं कि वे क्या कह रहे हैं; क्रोध के आवेश में जो जी में आता है कहते चले जा रहे हैं । विरद = कीर्ति । आपनेऊ = अपने । जामदग्नि = जमदग्नि के पुत्र परशुराम । ज्यारी = साहस, हृदय की दृढ़ता । जिरह = लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच । आज जामदग्नि.....जनेऊ की = हे परशुराम ! आज यदि तुम्हें यज्ञोपवीत रूपी कवच का साहस न होता तो तुम को राम की महान् शक्ति का एक ही घड़ी में परिचय मिल जाता । तुम्हारा यज्ञोपवीत जिरह का काम कर रहा है क्योंकि तुम्हें ब्राह्मण समझ कर राम तुम पर अस्त्र नहीं छोड़ेंगे और इसी कारण तुम्हारा साहस बढ़ गया है ।

२८ भंभा = तेज आँधी जिसके साथ वृष्टि भी हो । पवमान = पवन ।

भंभा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि = तेज आँधी तथा पवन को रोक कर उनके अभिमान को चूर्ण कर देते हैं । पर्व = पर्वत । कितीक = कितनी, बहुत अधिक । ऐसे = इन विशेषताओं वाले । तऊ = तिस पर भी ।

२६ काम-जस धारन कौं = कर्त्तव्यपरायण होने का यश धारण करने के लिए अर्थात् लोगों को कर्त्तव्य की महत्ता बतलाने के लिए । पन्नगरिकेतु = विष्णु जिनके राम अवतार थे ।

३० पिख्ल = देख कर । थप्पि = स्थापित कर, ठहरा कर । पगभर = पैर का भार । मग = मार्ग में । कित्ति = कीर्ति । बुल्लिय = वर्णन करते हैं । जलनिधि जल उच्छलित = समुद्र का जल उछलने लगा । सब्ब = सर्व, सब । दब्बिय = दबी । छित्ति = पृथ्वी । भुजग-पति = शेषनाग । भगिय सटक = धीरे से खिसक गए । कमठ = कच्छप । पिट्टि = पीठ ।

३१ वरिवंड = बलवान् । गिद्धराज = जटायु । जाया = स्त्री । कपट की काया = रामायण के अनुसार जब राम मायामृग को मारने चले तो सीता जी अग्नि में प्रविष्ट हो गईं और उनके स्थान पर मायात्मक सीता बना दी गईं । रावण इसी नकली सीता को हर ले गया था ।

३२ जुहारि = प्रणाम कर । संसै = संशय । निरवारि डारि = दूर कर । बर = बल । खोलत पलक.....इ० = जितनी शीघ्रता से नेत्र खोलते ही आँखों की पुतली सूर्य के प्रकाश को देख लेती है उतनी ही शीघ्रता से हनूमान समुद्र के पार हो गए ।

३३ एते मान = इतने परिमाण से, इतनी शीघ्रता-पूर्वक । छाँह छीरथ्यौ न छ्वाई = हनूमान गगन-पथ में इतने ऊँचे से निकल गए कि समुद्र में उनकी छाया तक न छू गई । भाँई = प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि । पर्यौ बोल की सी भाँई.....इ० = जितनी शीघ्रता पूर्वक किसी के वचनों की प्रतिध्वनि होने लगती है उतनी ही शीघ्रतापूर्वक हनूमान समुद्र के पार पहुँच गए ।

३५ अंतक = अंत करने वाला, यमराज । भरफ = लपट । पै न सीरे होत ससि कै = चंद्रमा की शीतलता द्वारा भी शीतल नहीं होते । आगम विचारि राम वान कौं.....निकसि कै = हनूमान ने लंका को जला दिया जिससे भीषण लपटें निकलने लगीं । ऐसा मालूम होता था मानो राम के वाणों का आगमन समझ कर बड़वानल पहले ही समुद्र से निकल कर भागा हो; यह सोच कर कि राम क्रुद्ध होकर समुद्र पर वाण चलाएँगे, बड़वानल पहले

ही निकल भागा हो ।

३६ तपनीय = सोना । पयपूर = समुद्र । सीत माँझ उत्तर तैं..... आसरे रहत है = लंका को हनूमान ने ऐसा जलाया कि आज कल भी उसकी आँच दक्षिण में हुआ करती है ! शीत ऋतु में सूर्य उत्तर को छोड़ कर दक्षिण की ओर आ जाता है (दक्षिणायन-हो जाता है) क्योंकि उत्तर में हिमालय की बर्फ के कारण वह वस्त हो जाता है । विवश होकर उसे दक्षिण की ओर जाना पड़ता है; दक्षिण में जलती हुई लंका की आँच के सहारे ही वह अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है ।

३७ नाचैं हैं कबंध.....इ० = व्रमासान युद्ध होने के कारण लोगों के शिर कट-कट कर गिर रहे हैं और रुंड इधर-उधर उछल रहे हैं । वरजत = मना करते हैं । तरजत = डाटते हैं । लरजत = काँपते हैं ।

३८ धूम-केतु = पुच्छल तारा, जिसके दिखलाई देने पर किसी बड़े अशुभ की आशंका की जाती है । सीता कौ संताप = हनूमान की पूँछ में लिपटे हुए वस्त्र ऐसे जल रहे हैं मानो सीता के सारे कष्ट भस्मीभूत हुए जा रहे हों । खलीता = धैली । पलीता = “वररोह को कूट कर बनाई गई वस्ती जिससे बंदूक या तोप के रंजक में आग लगाई जाती है” ।

३९ पूरवली = पहले की । भयौ न सहाइ जो सहाइ की ललक मैं = जिस समय सहायता की प्रबल अभिलाषा थी उस समय जिस विभीषण ने सहायता न दी अर्थात् जो सेतु बाँधने के अवसर पर नहीं आया । बैरी चीर कै मिलायौ = अपने शत्रु (विभीषण) को भाई की भाँति मिला लिया । खलक = संसार ।

४० ओप = दीप्ति, कांति । नाम कौं = नमाने के लिए, नीचा दिखलाने के लिए । बंध = बंधन । दलन दीन-बंध कौं = व्यक्तियों की दीनता के बंधन को नष्ट करने के लिए । सत्यसंध = सत्य-प्रतिज्ञ रामचंद्र । कीने दोऊ दान = विभीषण को लंका देकर राम ने एक दान तो दिया ही, किंतु इसी दान द्वारा एक और दान भी उन्होंने दे दिया । विभीषण के लंकाधीश बन जाने से रावण के हृदय में एक नई चिंता उत्पन्न हो गई । अभी तक तो उसे अपने विपक्षी राम का ही सामना करना था किंतु अब उसका भाई भी उसका वैरी हो गया ।

४१ सिख = शिक्षा । पजरे = जला दिया । गयौ सूरजौ समाइ कै =

राम के वाणों की अग्नि के सामने सूर्य दिखलाई तक नहीं पड़ते थे। वे उसी अग्नि में विलीन हो गए। सफर=बड़ी मछली। नद-नाइकै=समुद्र को। तए=तवा। तची=तपी। बूँद ज्यों तए की तची.....छुननाइ कै=जिस प्रकार तवा पर तपाए जाने पर जल-त्रिंदु छुनछुना कर राख हो जाता है उसी प्रकार कच्छप की पीठ पर समुद्र-जल कर राख हुआ जाता था।

४२ बरुन=जल के अधिपति। कर मीड़ै=हाथ मलता है; पश्चाताप करता है। धानी=स्थान, जगह (जैसे राजधानी)। पजरत पानी धूरि-धानी भयौ जात है=समुद्र का जल, जल रहा है और वह धूल का स्थान हुआ जा रहा है।

४३ पारावार=समुद्र। नभ भैं गयौ भरनि=आग की लपट की ताप के कारण आकाश काला पड़ गया। रहे हे=रहे थे। जेई जल-जीव बड़वानल के त्रास भाजि.....जाइ कै=जल के वे विभिन्न प्रकार के जीव, जो बड़वानल से त्रास्त होकर समुद्र के शीतल जल में आकर टहरे थे, वे अब राम के वाणों की भीषण अग्नि से घबरा कर बड़वानल को बर्फ समझ कर, उसमें जा पड़े हैं। वाणों की अग्नि के सामने उन्हें बड़वानल तो बर्फ सा शीतल लग रहा है।

४४ भूपिय=उछल रहा है। पिखिख=देख कर। अहिपति=शेष-नाग। विद्याधर=एक प्रकार की देवयोनि।

४७ सार-तन=मजबूत शरीर वाले।

४८ छीरधर=समुद्र। असनि=वाण। हलचल=थरथराते हुए।

४९ मंदर के तूल.....फूल ज्यों तरत हैं=मंदराचल पर्वत के समान जिनकी जड़ें पाताल के मूल तक पहुँचती हैं, ऐसे पर्वत जल में रुई तथा फूल के समान तैरते हुए दिखाई देते हैं।

५० पेड़ि तैं=समूल, जड़ सहित। आटियत है=तोपते हैं। जैत-वार=जीतने वाले, विजयी। अजुगति=अप्राकृतिक घटना।

५१ अमन=शांति। फूलि=प्रसन्न होकर। ऊलि=उछल कर। धराधरन के धकान सौं=पर्वतों के धक्कों से। धुकत=गिरते हुए। पिसेमान (फा० पशोमान)=लज्जित। मुर=देवता।

५५ कपि-कुल-पुरहूत=कपियों के कुल के इंद्र, कपियों में सर्व-श्रेष्ठ। कहलि रह्यौ=आकुल हो रहे है। कुंडली टहलि गए=शेषनाग।

खिसक गए । चकचाल = चक्कर ।

५६ सूल-धर हर = त्रिशूल धारण करने वाले शिव । धरहरि = रक्षक । प्रहस्त = रावण का एक सेनापति ।

५७ धराधर = पर्वत । धराधर-राज कौं धरन हार = पर्वतों के राजा कैलास को धारण करने वाला (उठाने वाला) रावण ।

५८ हाँते = पृथक्, अलग । सारदूल = बाघ ।

५९ तामस = क्रोध । मंडल = सूर्य के चारों ओर पड़ने वाला घेरा । मंडल के बीच.....समूह वरसत है = क्रोध से तमतमाया हुआ राम का मुख सूर्य के समान है । कानों तक प्रत्यंचा खींच लेने के कारण गोलाकार धनुष सूर्य का मंडल जान पड़ता है । शीघ्रतापूर्वक वाण चलाते हुए राम को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकाश का भांडार सूर्य अपने मंडल में उदित होकर किरणों की वर्षा कर रहा है ।

६० कोप-ओप-ऐन हैं अरुन-नैन = राम के अरुण नेत्र क्रोध के कारण दीप्ति अथवा कांति के आगार हो रहे हैं । संवर-दलन मैंन तैं धिसे-खियत है = राम की छवि शम्बर का दलन करने वाले कामदेव से भी अधिक है । अंग ऊपर कौं = शिर । संगर = संग्राम ।

६१ फौक = किसी वस्तु का सार निकल जाने पर अवशिष्ट नीरस अंश, सीटी । जिनकी पवन फौक = पवन तो राम के वाणों के वेग का बचा हुआ अंश है । जितनी तेजी थी वह तो राम के वाणों में आ गई, कुछ बचा खुचा अंश पवन को भी मिल गया । पोहैं = छेदते हैं । वपु = शरीर । भाल = तीर का फल । निकर = समूह । धाम = ज्योति । भाल मध्य निकर दहन दिन-धाम के = दिन की ज्योति को नीचा दिखाने वाली ज्योति जिनके फल की नोक में रहती है । दनुज दलन-दारन = राक्षसों की सेना को नष्ट करने वाले ।

६२ बुद्ध-मद-अंध.....बितारि कै = बुद्ध के मद में अंधे रावण के महाबली वीरों ने महावीर वानरों को नितर-बितर कर दिया । अधचंद = अर्द्धचंद्र के आकार का वाण । मारतंड = सूर्य ।

६३ मेरु = “जपमाला के बीच का वह बड़ा दाना जो अन्य समस्त दानों के ऊपर होता है इसी से जप का प्रारंभ होता है और इसी पर उसकी समाप्ति होती है ।” गन = शिव के गण । दर-वर = दल-वल, फौज । भुव = पृथ्वी । गगन की आली = शिव के गणों की पंक्ति । कपाली = शिव ।

६५ भासमान = द्युतिमान् । चार = गुप्त दूत । गिरि भुव अंबर में रावन समानौ है = रावण के प्रबल आतंक से सब इतना डरते थे कि उसके युद्ध-स्थल में गिर पड़ने पर भी किसी को यह साहस नहीं होता था कि यह कह दे कि रावण पराजित होकर मारा गया । लोगों को यह शंका थी कि यदि रावण अभी जीवित होगा तो उनकी दुर्दशा कर डालेगा । केवल सरस्वती ने अपने शिल्प वचनों द्वारा रावण की मृत्यु का समाचार कहा—
१ पृथ्वी पर गिर कर रावण आकाश में समा गया अर्थात् मर कर स्वर्ग चला गया २ पर्वत, पृथ्वी तथा आकाश में रावण समाया हुआ है अर्थात् सर्वत्र ही रावण का आतंक फैला हुआ है ।

६७ लूक = आग की लपट । पिलूक = इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है । जगाजोति = जगमगाती हुई ज्योति ।

७० जामदग्नि = जमदग्नि के पुत्र परशुराम । जामवंत = “सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह रीछ था । रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इसने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी । भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसी की कन्या जांबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था । यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इसने वामन की परिक्रमा की थी” ।

७२ भाँति द्वै न जानी = अयोध्या के लोग सर्वदा मुखी रहे; दुभाँति का उन्हें अनुभव ही नहीं हुआ । रजाई = आशा ।

७३ कौन तारौ धरे.....इ० = इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

७४ तहाँ कविताई कछू हेतु न धरति है = राम कथा तो स्वयं ही सूर्य के प्रकाश के समान देदीप्यमान है, हमारी कविता की अपेक्षा उसे नहीं है । आप = स्वयं । खर-दूषन = रावण के दो भाई जिन्हें राम ने मारा था । अखर = अक्षर । दूषन सहित = सदीप ।

७६ देखिए पहली तरंग कवित्त सं० ५५ ।

पाँचवीं तरंग

१ निरधार = निश्चय । पूरन पुरुष = ब्रह्मा । हृषीकेश = विष्णु का एक नाम ।

३ बंधु-भीर आगे.....इ० = अपने संबंधियों के सामने अपने कष्टों को निवेदन करना व्यर्थ है क्योंकि उनकी सहानुभूति केवल मौखिक होती है । उनके सामने तो मौन रहना ही ठीक है । सारंग-धरन = सारंग नामक धनुष धारण करने वाले विष्णु ।

४ मन लोचत न बार बार = मन में बारंबार विभिन्न सांसारिक वस्तुओं के लिए ललचाते नहीं हैं । हम भौतिक सुखों के लिए लालायित नहीं होते । रखे रख = सूखे वृत्त । दूखे.....वचन है = दुखाए अथवा कष्ट पहुँचाए जाने पर दुष्टों से याचना नहीं करते । जगत-भरन = संसार का निर्वाह करने वाले । वारिद-वरन = मेघ वर्ण वाले ।

६ लोचन...लसत जाकौं = जिसके सूर्य और चंद्रमा रूपी दोनों नेत्र शोभायमान हैं ।

७ दानि जाता को सुपति कौं = कौन ऐसी सुन्दर प्रतिष्ठा वाला दानी उत्पन्न हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं हुआ ।

८ कुपैँडै = कुमार्ग को । पैँडै परे = पीछे पड़े । चित चीते = मन में विचारे हुए, मनवांछित । रिपि-नारी = अहल्या ।

११ रमनी की मति लेह मति = स्त्री की इच्छा मत कर । करम-करम करि करमन कर = विभिन्न सांसारिक कर्मों को क्रम क्रम से कर । विराम = अंत, अवसान । अभिराम = रम्य, प्रिय । विसराम = विश्राम ।

१२ जरा = वृद्धापा । चितहिं चिताउ = चित्त को सावधान करो । आउ लोहे कैसौ ताउ = लोहा जब खूब तपाया जाता है तभी उसे इच्छानुकूल मोड़ा जा सकता है । लोहे का ताव ठंडा होने पर फिर यह बात नहीं हो सकती । आयु लोहे के ताव के समान है । जिस प्रकार लोहे का ताव थोड़े समय बाद ठंडा हो जाता है उसी प्रकार जीवन भी थोड़े ही समय बाद समाप्त हो जाता है; जिस प्रकार लोहे को देर तक तपने के बाद ताव बन पड़ता है उसी प्रकार पूर्व-संचित कर्मों के उदय होने पर ही मनुष्य जीवन प्राप्त होता है । अतएव इस क्षणिक जीवन में जो कुछ बन पड़े शीघ्र ही कर लेना चाहिए । लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह = अच्छी बातों को ग्रहण कर तथा बुरी बातों को छोड़ कर अपने शरीर को पवित्र बना लो । अवलेह = चाटने वाली औषधि । जीमै अवलेह देह सुरसरि-नीर कौं = गंगा जल रूपी अवलेह का सेवन करो क्योंकि इससे हृदय के समस्त विकार नष्ट होते हैं ।

१३ को है उपमान ? = सुदर्शन चक्र की समता वाला दूसरा कौन है ? भासमान हूँ तै' भासमान = सूर्य से भी अधिक व्युत्तिमान् । अमर-अवन = देवताओं का बचाव अर्थात् देवताओं की रक्षा करनेवाला । दल-दानव दवन = दानवों के दल को दमन करनेवाला । मन-पवन-गवन = मन तथा पवन के समान तीव्र गति से जाने वाला । चाइ = प्रबल इच्छा, अभिलाषा ।

१४ गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि = सांसारिक भंभटों से व्याकुल होकर थके हुए व्यक्ति के समान, गंगा रूपी तीर्थ के किनारे जा बसो अर्थात् गंगा-सेवन करो । दारा = स्त्री । नसी = नष्ट हो गई है, मर गई है । हिए कौं हेतु बंध जाइ = अपने हित अथवा भलाई की युक्ति निकालो । रामैं मति सोचौ अकुलाइ कै = स्त्री के रूप पर मुग्ध होकर उसकी चिंता में मत व्याकुल हो ।

१५ प्रसाद = कृपा, अनुग्रह । गहर = विलंब ।

१६ आगि करि आस-पास = पंचाग्नि ताप कर (पंचाग्नि = “एक प्रकार का तप जिसमें तप करने वाला अपने चारों ओर अग्नि जलाकर दिन में धूप में बैठा रहता है”) । धारना = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों योग के अंग माने जाते हैं । धारणा “मन की वह स्थिति है जिसमें कोई भाव या विचार नहीं रह जाता, केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है । उस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है; उसमें किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न इन्द्रियाँ विचलित होती हैं । यही धारणा पीछे स्थायी होकर ‘ध्यान’ में परिणत हो जाती है” । समीर = प्राण-वायु । जाकी सब लागै पीर.....इ० = सेनापति को सांसारिक दुःख छू तक नहीं जाते । उनके जीवन की जितनी आपत्तियाँ हैं उनको भक्त-वत्सल राम अपने ऊपर ले लेते हैं; सेनापति को उनका अनुभव तक नहीं होता ।

१७ ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ = जिस प्रकार भगवान् के दर्शन मिलेंगे मैं उसी प्रकार यत्न करूँगा । कंथा = गुदड़ी । जतीन के = यतियों के । बहिराऊँ = बहलाऊँगा ।

२१ उतीरन = वे फटे-पुराने वस्त्र जो उतार कर रख दिए हों, जिनका व्यवहार अब न होता हो । छाप = शंख-चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव लोग विविध अंगों पर छपवा लेते हैं । गुंज = घुँघची, शीरबहूटी ।

२३ हेतु=प्रीति, अनुराग । जानि बड़ी सरकार कौं=यह समझ कर कि मैं महाराज रामचंद्र के दरबार का आदमी हूँ, मेरी पहुँच वहाँ तक भी है । पाइपोस (फा० पापोश)=जूता । बरदार (फा०)=वहन करने वाला, दोने वाला ।

२४ असन=भोजन । हेतु सन=प्रीति से । चौकी=रखवाली, पहरा । गरुड़-केतु=विष्णु ।

२५ धाराधर=बादल । करुनालय=करुणा के आलय अथवा भांडार ।

२६ इकौसे=एकांत, अलग ।

२७ सरन=आश्रय । वास लछ मन के=मन के लाखों भय अथवा कष्ट ।

२८ अनवात=कटु वचन । मुख-पीन=मुख से संपन्न ।

३१ दार=काठ । सून=प्रसून, पुष्प । राखु दीटि अंतर, कछू न सून-अंतर है=प्रतिमा को ढकने वाले पुष्पों के नीचे कुछ नहीं है, यह तेरा भ्रम है जो तू समझता है कि पुष्पों के नीचे भगवान् की मूर्ति विराजमान है । यदि तू ब्रह्म को खोजना चाहता है तो अपनी दृष्टि को अंतर्मुखी बना । वहीं तुझे ब्रह्म का आसन दिखलाई पड़ेगा । निरंजन=माया से निर्लिप्त ब्रह्म । कही=सीधे । देहरें=मंदिर ।

विशेष :—अंतिम पंक्ति में यति-भंग दोष है ।

३२ ती=स्त्री । रथ=शरीर ।

३३ कमलेच्छन=विष्णु । पाइक=सेवक । मलेच्छ=म्लेच्छ ।

३४ गाह=ग्राह । कतराहि मति=भव-सागर को बचा कर निकल जाने की चेष्टा मतकर । कुंजर=गज । धरहरि=रक्षा ।

३५ जोष=स्त्री । अजहूँ न उह रत है=तू आज भी उस (परमात्मा) में अनुरक्त नहीं है । धुनच्छर="ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय, जिस प्रकार धुनों के खाते-खाते लकड़ी में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न वा लकीरें बन जाती हैं" ।

३६ कुलिस=वज्र । करेरे=कठोर । तोरा=पत्नीता, जिसकी सहायता से तोड़ेदार बंदूक छुटाई जाती है । तमक=तीव्रता । तरेरे=क्रोधपूर्ण दृष्टिपात करते हुए । दरेरे कै=रगड़ कर, चूर्ण कर । कलमष=पाप । बर करुना-बरष हैं=उत्तम करुणा की वर्षा करने वाले हैं । अनियारे=नुकीले ।

३८ नकयानी=हैरानी । जगबंद=जगद्वंद, सारा संसार जिसकी पूजा करे ।

३९ प्रान-पत ताने=प्राणों की पति अथवा मर्यादा को ताने हुए अर्थात् किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा किए हुए । सँधाती=साथी । गाढ़ मैं=संकट में । गरुडध्वज=विष्णु । वारन=गज, हाथी । कमला-निवास=विष्णु, जिनके हृदय में लक्ष्मी का निवास है ।

विशेष :—‘प्रान पत ताने’—यद्यपि इस वाक्य खंड का भावार्थ स्पष्ट हो जाता है किंतु यह प्रयोग कुछ अस्वाभारण है । दिए हुए पाठांतरों में से ‘प्रान पर तायेँ’ तो बिलकुल ही अस्पष्ट है । ‘प्रान पति ताने’ तथा ‘प्रान पत ताने’ में कोई विशेष अंतर नहीं है ।

४० जानि=ज्ञानी । जौव=जौ+अव । जौव रावरं मन टिकै=अव यदि हमारी युक्ति आपके मन को जँचे अथवा उचित प्रतीत हो । ओप=काति । श्रीवर=लक्ष्मी के पति विष्णु । छीवर=मोटी छीट का कपड़ा । रोवत में श्रीवर.....उपटि कै=द्रौपदी ने रोते रोते विष्णु को ‘श्रीवर’ कह कर पुकारा किंतु रोने के कारण शुद्ध उच्चारण न हो सका और मुख से ‘छीवर’ निकला, मानो इसी कारण द्रौपदी के शरीर से छीट का वस्त्र निकलता ही चला आता है ।

४१ वास मैं=निवासस्थान में । जगन्निवास=परमात्मा । वा समैं=उस संकट के समय । दिखाई प्रीति वास मैं=वस्त्र के भिस अपनी प्रीति सूचित की, वस्त्र को बढ़ा कर अपना स्नेह प्रदर्शित किया ।

४२ पति लागी पतता नहीं=पतियों को अपने ‘पति-पन’ का थोड़ा भी ध्यान न रहा, पति होते हुए भी उन्होंने अपना कर्त्तव्य-पालन करके द्रौपदी की रक्षा न की । पीतवास=पीला वस्त्र अर्थात् पीतांबर धारण करने वाले कृष्ण ।

४३ पति=प्रतिष्ठा, मर्यादा । वर=चल । मंदर मथत...छीर जिमि=द्रौपदी के शरीर से श्वेत वस्त्र की साड़ी निकलती चली आती है, ऐसा जान पड़ता है मानो मंदराचल पर्वत क्षीर-सागर के दुग्ध को मथे डालता हो । छीर=साड़ी का सिरा । चीर=वस्त्र ।

४५ उत्तंग=उच्च, श्रेष्ठ । उत्तमंग=उत्तम अंग वाली । अगाऊ=पेशगी, समय के पहले ही !

४६ सदन उषित रहु=अपने घर में जम कर रहो । पुरंदर=इंद्र ।

खटकै = चिंता उत्पन्न करती हैं ।

५० अल्लत = रहते हुए, सम्मुख, सामने । भानु-मुत = सूर्य के अंश से उत्पन्न सुग्रीव ।

५१ दुरित = पाप । खूँट = ओर, तरफ । कालकूट = भयंकर विष । अपाइ = अनरीति, अन्यथाचार ।

५२ चरनोदक = चरनो का जल । चप = दबाव । जम-दुंद = यमराज द्वारा किए गए उत्पात अथवा उपद्रव । बेनी = चोटी । बेनी मैंनका की गूँद.....इ० = गंगा-जल पान करने से तुम्हें स्वर्ग मिल जायगा और तब तुम्हें वहाँ पर मेनका की चोटी गूँथने का अवसर मिलेगा । तात्पर्य यह कि तुम्हें स्वर्ग में अप्सराओं का साहचर्य मिलेगा ।

५३ मर्यौ हो = मरा था । मगह = मगहर । जनश्रुति के अनुसार मगहर में मरने वाला व्यक्ति अगले जन्म में गधा होता है । कीनौ गर-जोरि और नारकीन बीच घेरि.....पाप काज के = यमराज के दूतों ने उस पापी को अन्य रात-दिन पाप करने वाले पापियों के बीच घेर कर एक साथ रक्खा । ताहि के करकै.....सुर साज के = उस पापी के नरक चले जाने पर उसके संबंधी उसकी ठठरी को गंगा में नहलाने के लिए ले गए (शव जलाने के पहले गंगा-स्नान आवश्यक माना जाता है), किंतु गंगा-जल को स्पर्श करती हुई वायु के लगते ही देवता लोग वायुयान सजाकर हाजिर हुए अर्थात् उस पापी के सब पाप कट गए और उसके स्वर्ग जाने की तैयारी होने लगी । साँकरैं कटाइ.....जमराज के = यमदूतों को तुरंत दौड़ा कर तथा उस यमराज के कैदी की बेड़ियों को कटा कर देवता लोग उसे नरक से छुटा कर ले चले ।

५४ सुरसरि = गंगा । सुर = देवता । सरि = बराबरी । दाता याही कै.....सुभ काज के = शुभ कार्य अथवा उत्तम फल देने वाली इसी गंगा की धारा द्वारा लोग मुक्त हो जाएँगे । ओक = आश्रय । थोक = समूह । नसैं = नष्ट हो जाते हैं । दोक जल-कन चालैं = जल की दो बूँदों के चखने से । ओक = चुल्लू ।

मोह-सर-सरसाने = मोह रूपी सरोवर में वृद्धि प्राप्त किए हुए, मोह के वातावरण में पले हुए । पैँडौ = मार्ग । अटकरीयें = अन्दाज लगाइए, अनुमान कीजिए । राम-पद-संगिनी = गंगा विष्णु (जिनके राम अवतार

हैं) के चरणों से निकली हैं ।

५७ मघ=मघा नक्षत्र में, माघ मास में । मघवा=इन्द्र । समन =दमन । सो न दूजियै=वह अद्वितीय है, वैसी दूसरी नहीं है । बारि=जल । दानवारि=दानवों के वैरी अर्थात् देवता । नै करि=विनम्र होकर । विनै =विनय । मुर-सिंधु=सुरसरिता, गंगा । रन=समुद्र का (यहाँ पर जल का) छोटा सा खंड । मुर-सिंधुरन=देवताओं के हाथी (ऐरावत आदि) । कूल-पानि=किनारे का जल । त्रिसूल-पानि=शंकर ।

५८ हरि-पद पाँउ धारे=विष्णु के पद पर पैर रखती है अर्थात् विष्णु की पदवी प्राप्त करती है । पतितों का उद्धार करने में विष्णु की बराबरी करती है । बाकौं भगीरथ नृप.....इ०=गंगा के अतिरिक्त और किसके लिए भगीरथ ने तप द्वारा अपने शरीर को जलाया था ? भगीरथ ने इतनी घोर तपस्या गंगा की प्राप्ति के लिए ही की थी । ताँतें मुरसरि जू की.....इ०=ऐसी गुणवती होने के कारण ही गंगा 'मुरसरि' कहलाती है ।

५९ अरथ=हेतु, निमित्त । विरथ ह्वे=रथ को त्याग कर । काहे कौं विरथ.....इ०=यदि गंगा इतनी महत्वपूर्ण न होती तो भगीरथ अपना राजसी ठाट-बाट छोड़ तपस्या कर अपने शरीर को व्यर्थ में क्यों जलाते ?

६० अरंग=विघ्न-बाधाएँ । ईस=शिव । सेनापति जिय जानी... इ०=शिव के आधे अंग में पार्वती जी का कब्जा है । अवशिष्ट आधे अंग में त्रिप, सर्प तथा अन्य भयंकर विघ्न-बाधाओं का साम्राज्य है । ऐसी विपम परिस्थिति में शिव के शरीर का थोड़ा सा भाग भी बाकी न बच रहता, यदि उनके शिर पर सुधा से भी सहस्र गुने प्रभाव वाला गंगा जी का जल न होता ।

६१ पावै राज बसु=कुबेर का राज्य पाता है । दुधार=दूध देने वाली ।

६३ गाइन=गायक । अलापत हो=अलापता था । लागे मुर देन =गायक के मुर में मुर मिलाने लगे । अलापिहौं अकेलौ=मैं स्वयं आलाप भरूँगा । 'मुरनदी जै'=गंगा की जय । गरुड़-केतु=विष्णु । धाता=विधाता, ब्रह्मा ।

६४ लहुरी=छोटी । ताँति=धनुष की डोरी । भौर=तेज पानी में पड़ने वाले चक्कर । फटिका=गुल्ले की डोरी के बीचोबीच रस्ती से बुन कर बनाया हुआ वह चौकोर हिस्सा जिसमें मिट्टी को गोली रख कर चलाई

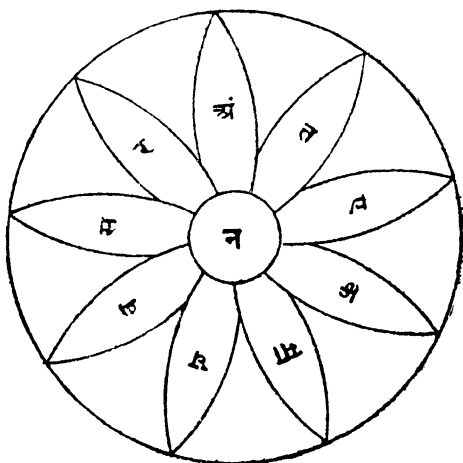
जाती है। पानि = १ जल २ हाथ। कोटि = १ धनुष का सिरा २ करोड़। कलमप = १ काले (सं० कलमाप) २ पाप। गुलेला = मिट्टी का छोटा सा गोला जो गुलेल से फेंका जाता है। बलूला = बुदबुद। कलोल = तरंग। गिलोल = गुलेल।

६५ नीर धार = जल की धारा। निरधार निरधार हूँ कौं = निश्चय ही निराश्रय व्यक्ति को। अधार = अवलंब, आश्रय। सन्निधान = समीप। भगवान मानी भव हूँ = स्वयं शिव ने इसे पूज्य माना है। कामधेनु हीन = कामधेनु जिसकी बराबरी को नहीं पहुँचता। जाकौं देखैं बारि.....इ० = जिसके जल को देखने से दीन व्यक्ति फिर कभी दरिद्री नहीं होता है।

६६ कछुव न छीजै = कुछु भी वर्च नहीं करना पड़ता, किसी प्रकार की कमी नहीं होती। हरिपुर की नसैनी = बैकुण्ठ जाने की सीढ़ी। त्रिमुन पदी = गंगा। जाहनवी = (जाह्नवी) गंगा। नथी = पैगम्बर, रसूल।

६७ कहा जगत आधार ? = अन्न (अन्न)। कहा आधार प्रान कर ? = तन। कहा वसत त्रिधु मध्य ? = एन अथवा एण (‘एण’ काले रंग के मृग को कहते हैं; कस्तूरी-मृग)। दीन बीनत कह घर घर ? = कन (कण)। कहा करत तिय रुसि ? = मान। कहा जाचत जाचक जन ? = धन। कहा वसत मृगराज ?

= वन। कहा कागर कौ कारन ? = सन (प्राचीन समय में ‘कागर’ या कागज सन से बनाया जाता था)। धीर धीर हरपत कहा ? = रन (रण)। चारि बेद गावत कहा ? = ‘अंत एक माधव सरन’ (अंत में विष्णु ही सबके आश्रय-स्थान हैं)।



विशेष:—इस छंद से चित्रालंकारों का वर्णन प्रारंभ होता है। उक्त छंद कमल-

बद्धोत्तर का उदाहारण है। इसमें कुल दस प्रश्न हैं। अंतिम प्रश्न का उत्तर 'अंत एक माधव सरन' है। इसी उत्तर में अन्य नौ प्रश्नों के उत्तर भी हैं। प्रत्येक उत्तर का अंतिम वर्ण दसवें प्रश्न के उत्तर का अंतिम वर्ण (अर्थात् 'न') रहता है। इसमें (अर्थात् 'न' में) दसवें प्रश्न के उत्तर के पहले, दूसरे, तीसरे... आदि वर्णों को जोड़ देने से क्रमशः पहले, दूसरे तथा तीसरे...आदि प्रश्नों के उत्तर (अर्थात् अनं, तन, एन...आदि) मिल जाते हैं^१। उक्त कमलबद्धोत्तर को ऊपर दिए हुए चित्र में चित्रित किया गया है।

६८ को मंडन संसार ? = सील (शील अथवा सद्वृत्ति ही सांसारिकों को आभूषित करती है)। गीत मंडन पुनि को है ? = ताल (गायक के गीत का सौंदर्य ताल के कारण और भी अधिक हो जाता है)। कहा मृगपति कौं भच्छ ? = पल (मांस)। कहा तरुनी मुख सोहै ? = तिल। को तीजौ अवतार ? = कौल (कोल)। कवन जननी-मन रंजन ? = बाल (बालक)। को आयुध बलदेव हृथ दानव-दल-गजन ? = हल (बलराम जी कृष्ण के बड़े भाई थे। हल तथा मूसल इनके अस्त्र माने जाते हैं)। राज अंग निज संग पुनि कहा नरिंद राखत सकल ? = बल (शक्ति)। सेनापति राखत कहा ? = 'सीतापति कौं बाहु बल' (सेनापति को राम के बाहु-बल का भरोसा है)।

६९ को पर नारी पीय ? = जार (उपपति)। करन हंता पुनि को है ? = नर (अर्जुन)। को विहंग पुनि पढ़इ ? = कीर। कौन गृह पंकज कौं है ? = सर (सरोवर)। को तरु प्राण निधान = जर (जड़)। कवन वासी भुजंग-मुख ? = गर (विष)। को हरपत घन देखि ? = मोर। कवन बाढ़त तुसार मुख ? = दर (ईश्व)। आदान दान रच्छन करन को कृपान धारै समर ? = कर (हाथ)। सेनापति उर धरत कह ? = 'जानकीस जग मोद कर' (सेनापति राम को हृदय में धारण करते हैं जो संसार को प्रमुदित करने वाले हैं)।

विशेष :—'नर'—“देवी भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया था जिन के गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से हरि और कृष्ण

१ “अच्छर पढ़ो समस्त को, अन्त बरन सो जोरि।

कमलबन्ध उत्तर वडै, व्यस्त समत बहोरि ॥”

काव्यनिर्णय (चित्रालंकार वर्णन, दोहा २४)

योगाभ्यास करते थे और नर-नारायण हिमालय पर कठिन तपस्या करते थे । उस समय इंद्र ने डर कर इनकी तपस्या भंग करने के लिए काम, क्रोध और लोभ की सृष्टि की और उन तीनों को नारायण के सामने भेजा, परंतु नर नारायण की तपस्या भंग नहीं हुई । तब इंद्र ने कामदेव की शरण ली । कामदेव अपने साथ वसंत, रंभा और तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को लेकर नर नारायण के पास पहुँचे । उस समय अप्सराओं के गाने आदि से नर-नारायण की आँखें खुलीं । उन्होंने सब बातें समझ लीं और इंद्र को लज्जित करने के लिए तुरंत अपनी जाँघ से एक बहुत सुन्दर अप्सरा उत्पन्न की जिसका नाम उर्वशी पड़ा । इसके उपरांत उन्होंने इंद्र की भेजी हुई हजारों अप्सराओं की सेवा करने के लिए उनसे भी अधिक सुन्दर हजारों दासियाँ उत्पन्न कीं । इस पर सब अप्सराएँ नर नारायण की स्तुति करने लगीं । इन अप्सराओं ने नारायण से यह भी वर माँगा था कि आप हम लोगों के पति हों । इस पर उन्होंने कहा था कि द्वापर में जब हम अवतार लेंगे तब तुम राजकुल में जन्म लोगी । उस समय तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । तदनुसार नारायण तो श्रीकृष्ण और नर अर्जुन हुए थे ।”

७० चर अचर अयन = जो स्थावर तथा जंगम सबका आश्रय-स्थान है । ससधर गन दरसन = जो शिव के गणों का दर्शन देने वाला है । गगन चर = देवता ।

विशेष :—यह छंद ‘अमत्त’ का उदाहरण है जिसमें बिना मात्रा वाले शब्द रखे जाते हैं—

‘विन मत्ता वरणहि रचै’, इ उ ए, कछु नाहि ।

ताहि अमत्त बखानिये, समझौ निज मन माहि ॥

(‘काव्य प्रभाकर’)

७१ जी मैं दरद छक्यौ...काटै तैं हरे हरे = इस पंक्ति का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं है । इसकी गति भी बिगड़ी हुई है । किसी भी पोथी के पाठ द्वारा इस दोष का परिहार नहीं होता है । कदाचित् इसका भावार्थ इस प्रकार है—तू नाना प्रकार के अहंकारों से छका हुआ है (पूर्ण है), तेरे हृदय में थोड़ी भी कसक नहीं है, तू कितने ही हरे हरे वृत्तों को मकान आदि बनाने के लिए काट डालता है । पाइ नर...रत न बर = मानव शरीर पाकर भी तू राम में भली प्रकार अनुरक्त न हुआ । हेतु = प्रीति । और न... आजु गति =

तेरी मुक्ति के लिये आज और कोई दूसरी युक्ति नहीं है (अर्थात् हरिमक्ति द्वारा ही तेरा मोक्ष हो सकता है) ।

७२ बरती रहि कै = उपवास करके । साध = इच्छा, अभिलाषा । विपै की कतार = विषय-वासनाओं की पंक्ति (अर्थात् समूह) । करि हटतार = हरताल लगा कर, नष्ट कर । करतार = १ “लकड़ी, काँसे आदि का एक बाजा जिसका एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं” २ सृष्टिकर्ता ।

७३ इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

विशेष :—७३ वें छंद से लेकर ८० तक नियमाक्षर शब्द-रचना के उदाहरण दिये हुए हैं । इन छंदों द्वारा कोई चित्र नहीं बनते हैं । इनके पढ़ने में एक प्रकार की विचित्रता जान पड़ती है इसीसे इन्हें चित्रालंकार कहते हैं (चित्र = विचित्र) । भिखारीदास ने इन्हें “बानी को चित्र” कहा है—

“प्रश्नोत्तर पाठान्तरो, पुनि बानी को चित्र ।

चारि लेखनी चित्र को, चित्र काव्य है मित्र ॥”^१

७३ वें छंद में यह विशेषता है कि उसमें केवल एक ही अक्षर (‘ल’) प्रयुक्त हुआ है । इसी प्रकार ७४ वें छंद में केवल दो अक्षर (‘र’ तथा ‘म’) प्रयुक्त हुए हैं ।

७४ रामा = स्त्री । रारि = भगड़ा, व्याधि । रमा = सीता । मार = कामदेव ।

अर्थ :—रे (मूर्ख !) (तू) स्त्री में रमण करता है (अनुरक्त रहता है), (किंतु) (तेरे) रोम रोम में व्याधियाँ (भरी हुई हैं); (तुझे उचित है कि) (तू) सीता (तथा) राम में अनुरक्त हो, (और) रे (मनुष्य !) कामदेव को मार (कामदेव का भली प्रकार दमन कर) ।

७५ लीला = रहस्यपूर्ण व्यापार । लोने = सुन्दर । नलिन = कमल । लोल = चंचल । निलै = आश्रय स्थान । नौल = नवल, सुन्दर । लौ = आशा, कामना ।

अर्थ :—सुन्दर कमल (के) समान लीला स्त्री (के) नेत्रों में लीन है (अर्थात् स्त्री के नेत्र सुन्दर कमल-दल के समान चंचल हैं); (नेत्र) लाली के आश्रय (हैं) (नेत्र बहुत लाल हैं), (तथा) सुन्दर प्रियतम (की) लौ (में) लीन

(रहते हैं) (अर्थात् नेत्रों को प्रिय के दर्शनों की कामना सदा बनी रहती है) ।

७६ अर्थ :—(यदि) मुनियों (का) मन कामदेव (को) मानता है (कामदेव के वश में हो जाता है) (तो) नियम ('नेम') मौन (हो जाता है) (नियम भंग हो जाते हैं) (तथा) नाम नम जाता है (मिट जाता है); (यह देख कर विशेष आश्चर्य न करना चाहिए क्योंकि) मानिनी के नेत्र (बड़े) नामी हैं; मन-चाही बात कर डालते हैं, (वे) मानो मीन (हैं) ।

७७ सुरसरी = गंगा । संसौ = संशय, आशंका । सास = साँस, निश्वास । रस-रास = आनंद का भांडार ।

अर्थ :—हे शूरवीर (व्यक्ति !) (तू) गंगा (का) स्मरण कर (गंगा-सेवन कर), (क्योंकि) साँस (का) संशय (है) (अर्थात् साँस का क्या ठिकाना, आई-आई, न आई न आई); (तू) संसार से क्रोध (पूर्वक) रष्ट होकर उस आनंद (के) भांडार (परब्रह्म का) स्मरण कर (मायात्मक जगत् से उदासीन होकर ब्रह्म का ध्यान कर) ।

७८ दादनी = वह रकम जिसे चुकाना हो । यह शब्द फारसी 'दादन' से बना है जिसका अर्थ 'देना' होता है । यहाँ पर इसका प्रयोग दान के अर्थ में हुआ है । दानौ दंदन = देवता, यहाँ पर राम । दादि दै = प्रशंसा करके ।

अर्थ :—दानी (व्यक्ति) (ने) नित्य दान देकर (अपना) दाना-दाना दे दिया (अर्थात् उसके पास जो कुछ था वह उसने बाँट दिया); (यह देख कर) राम (ने) (उसकी) प्रशंसा कर (उसे) दाना-दाना दे दिया (राम ने उसकी दानशीलता देख कर उसे उसकी सारी संपत्ति फिर से दे दी) ।

७९ रूरी = सुन्दर । हेरि = चितवन ।

अवतरण :—दूती कृष्ण को नायिका पर अनुरक्त कराने के लिए नायिका की प्रशंसा कर रही है ।

अर्थ :—हे हरि ! (मैं तो) (इसकी) सुन्दर चितवन देखने पर हार गई (मैं तो मुग्ध हो गई हूँ), (तू भी) हार जायगा (तू भी इस पर मुग्ध हो जायेगा); नाना प्रकार के हीरों (द्वारा) हार (बनाया जाता) है (अर्थात् ऐसे तो तू ने अनेक हीरों के हार देखे होंगे), (किंतु) हे हरि ! (इस स्त्री रूपी) हीरे को देख (यह स्त्री रूपी हीरा उन हारों के हीरों से कहीं बढ़कर है) ।

विशेष :—इस छंद का अर्थ दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है । कृष्ण को लक्ष्य कर दूती नायिका से कह रही है कि हरि को देख कर मैं हार

गई, तू भी उन पर मुग्ध हो जायगी; संसार में हीरों के अनेक हार देखे जाते हैं किंतु हे सखी ! जरा इस हरि रूपी हीरे को तो देख । यह उन हीरों से बहुत बढ़ कर है ।

८० रति = प्रीति । तारे = नेत्र । तंत्री = वे बाजे जिनमें बजाने के लिए तार लगे हुए हों जैसे वीणा । रूरी = श्रेष्ठ । ररै = रट लगाए हुए है । तीर = समीप ।

अवतरण :—दूती कृष्ण से रूठी हुई नायिका की दशा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ :—(हे कृष्ण !) (तुम्हारे) नेत्र (रूपी) बाणों (से) गेती जाने पर (विद्ध होने पर) तुम्हारी प्रीति (में) (वह) रात से अनुरक्त है; तुम्हारी नायिका वृद्ध (के) समीप वीणा से (भी) श्रेष्ठ (मधुर ध्वनि से) (तुम्हारे नाम की) रट लगाए हुए है (अर्थात् यद्यपि वह रात को तुम से रूठ कर चली गई किंतु फिर भी तुम्हारे कटाक्षों का उस पर इतना असर हुआ कि वह घर वापस न जा सकी । तुम्हारे घर के समीप ही एक वृद्ध के नीचे खड़ी होकर तुम्हारा नाम जपती रही) ।

८१ सपरे = स्नान करने पर । मुरसार = गंगा ।

अर्थ :—अब स्नानादि करने पर गंगा शिव, केशव (तथा) ब्रह्मा के लोक पहुँचा देती हैं (जीवन्मुक्त कर देती हैं) । अवश होने पर (सब प्रकार से हताश हो जाने पर) गंगा शिव के (भी) समस्त विधानों को उलट देती हैं (पीड़ितों की सहायता करने में शिव की आज्ञा का भी उल्लंघन कर देती हैं) ।

८२ मानी = जिसने मान किया हो, रूठा हुआ व्यक्ति । ती = स्त्री । छन = क्षण । तीर = बाण । मार = कामदेव । गुमानी = अभिमानी । तीछन = तीक्ष्ण ।

अर्थ :—नायिका (ने) मार्ग (में) रूठे हुए (नायक) को पकड़ कर (अर्थात् उसे लक्ष्य कर) (एक) क्षण (में ही) (नेत्र रूपी) तीर छोड़ा; (उस कटाक्ष का नायक पर ऐसा प्रभाव हुआ मानो) अभिमानी कामदेव (ने) कुपित होकर तीक्ष्ण बाण छोड़ा हो ।

८३ अर्थ :—(तू) सुख से (सहज में ही) प्रतिष्ठा ('पति') नहीं प्राप्त कर सकेगा ('पाइहै') । विभिन्न प्रकार की भक्तियों को मन में जान ले (अर्थात् यदि तू सुख चाहता है तो पहले नवधा भक्ति से परिचय प्राप्त कर); सेनापति

(कहते हैं कि) मैं जानता हूँ, (तू) भक्ति-पूर्वक भुक्ने में ही सुख पाएगा (भगवान् को प्रणाम करने में ही सच्चा सुख है) ।

८४ खंड = टुकड़ा । परि = परे । मधु = १ मिठाई २ एक दैत्य जिसे विष्णु ने मारा था ।

अर्थ :—सीता रानी (के) प्रिय का नाम मिठाई (के) टुकड़ों (से) परे (है) (अर्थात् राम-नाम मिठाई से कहीं अधिक मधुर है); सीता रानी (के) प्रिय का परिणाम मधु (नामक दैत्य) (का) नाश (करना) है (अर्थात् विष्णु का प्रयोजन मधु का नाश करना था) ।

८५ कहरन तैं = कष्ट द्वारा पीड़ित होने से ।

अर्थ :—हे नरक-हरण ! अर्थात् लोगों को मुक्त कर स्वर्ग भेजने वाले भगवान् !) सेवक नरों को (सेवा करने वाले मनुष्यों को) तुम (ही) कष्ट द्वारा पीड़ित होने से बचाओ, हे करुणा के भांडार ! मेरे ऊपर दया करने (में) क्यों उदासीन हो (अर्थात् तुम तो करुणा के भांडार होते हुए भी हम पर करुणा नहीं करते हो) ।

छंदों की प्रथम पंक्ति की अकारादि-क्रम-सूची

प्रथम पंक्ति	पृष्ठ-संख्या
अँखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम	... २४
अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन	... ३१
अगम अपार, जाकी महिमा कौं पारावार	... ६७
अति ही चपल ए बिलोचन हठीले आली	... ५०
अधर कौं रस गहैं कंठ लपटाइ रहैं	... २०
अब आयौ भादौ, मेह बरसै सघन कादौं	... ६३
अब आयौ माह प्यारे लागत हैं नाह, रवि	... ६८
अब सपरे सुरसरि करै सिव के सच बिधि बाम	... ११७
अमल अखंड चाउ रहै आठ जामें ऐसी	... १४
अमल कमल, जहाँ सीतल सलिल, लागी	... ५२
अरि करि आँकुस विदारयौ हरिनाकुस है	... १०५
अरुन अधर सोहै सकल वदन चंद	... १०
असरन सरन, सकल खल करवन	... ११६
आई रितु पाउस कृपाउस न कीनी कंत	... ६०

आए परमात सकुचात अलसात गात	...	४०
आदर बिहीन, नाहि परदार दीन जाइ	...	१०३
आनंद कौ कंद मुख तेरौ ता समान चंद	...	२६
आनंद मगन चंद महा मनि-मंदिर मैं	...	७७
आप ईस सैल ही मैं अलक बहुत भाँति	...	२६
आयसु अपार पारावार हू के पाटिबे कौ	...	८५
आयौ जोर जड़कालौ, परत प्रबल पालौ	...	६६
आयौ राम चापहि चढ़ाइबे कौ महा-बाहु	...	७५
आयौ सखी पृसौ, भूलि कंत सौ न रूसौ, केलि	...	६६
इत बेद-बंदी धीर बानी सौ विरद बोलैं	...	८५
उन एते दिन लाए, सखी अजहूँ न आए	...	६२
एरे मन मेरे, खोए वासर घनेरे, करि	...	१०५
औरै भयौ रख तातैं कैसे सखी ज्यारी होति	...	६
औसरे हमारे और बालै हिलि-मिलि रमै	...	११
कंज के समान सिद्ध-मानस-मधुप-निधि	...	७२
कब दिन दूलह के अरुन-बरन पाइ	...	६८
कमल तैं कोमल, बिमल अति कंचन तैं	...	५३
कमलै न आदरत रागै अरुन धरत	...	२७
करत कलोल छुति, दीरघ, अमोल, लोल	...	३१
करन छुवत बीच है कै जात कुंडल के	...	११
करि धीर नादैं, कीनौ पूरन प्रसादैं दौरि	...	१०६
करुना निधान, जातैं बिमल ज्ञान	...	१०२
कल है करति सब घौस निसाकर मुखी	...	२८
कहा जगत आधार ? कहा आधार प्रान कर ?	...	११५
काढ़त निषंग तैं, न साधत सरासन में	...	८६
कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-	...	६४
काम की कमान तेरी भृकुटी कुटिल आली	...	३२
काम-केलि-कथा कनाटेरी दै सुनन लागी	...	४६
काम कै प्रथम जाम, त्रिहरैं उसीर धाम	...	५७
काल तैं कराल कालकूट कंठ माँझ लसै	...	११३
कार्लिदी की धार निरधार है अधर, गन	...	३३

कीजिए रजाइस कौं, हरि-पुर जाइ सकौं	...	८७
कीजै को समान, चापवान सौं विराजमान	...	७४
कीनी परिकरमा छलत बलि बामन की	...	६२
कीने नारि नीचे बैठी नारी गुरुजन बीच	...	२५
कीने सौ जनम ही मैं, जे अघ जन मही मैं	...	११२
कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन	...	६८
कीनौ है प्रसाद, मेटि डरथौ है विषाद, दौरि	...	६६
कुंद से दसन धन, कुंदन बरन तन	...	३४
कुब्रिजा उर लगाई हमहूँ उर लगाई	...	२१
कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि	...	१८, ६४
केतकि, असोक, नव चंपक, अकुल कुल	...	५५
केतौ करौ कोई, पैयै करम लिख्यौई, तानैं	...	१०५
केस रहैं भारे मित्र कर सौं सुधारे तेरे	...	७
केसरि निकाई, किसलय की रताई लिए	...	३२
केसौ अति बड़े जहाँ अरजुन पति काज	...	११
कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके	...	११३
कोई परलोक सोक भीत अति शीतराग	...	६६
कोई महा पातकी मरथौ हो जाइ मगह मैं	...	११०
कोट गढ़ गिरि ढाहैं जिनकौं दुरग नाहैं	...	२२
को पर नारी पीउ ? करन-हंता पुनि को है ?	...	११५
कोप्यौ रघुनाइक कौं पाइक प्रबल कपि	...	८२
को मन्डन संसार ? गीत मन्डन पुनि को है ?	...	११५
कोमल, अमल, कर कमल बिलासिनी के	...	४७
कोह कौं घटाइ, लोभ मोहन मिटाइ, काम	...	११३
को है उपमान ? भासमान हूँ तैं भासमान	...	६८
कौनै चिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए	...	५१
कौल की है पूरी जाकी दिन-दिन बाढ़ै छुबि	...	५
कौहूँ तुव ध्यान करै, तेरौ गुनगान कौहूँ	...	४४
ग्यंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत	...	६४
खेत के रहैया अति अमल अरुन नैन	...	१४
गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि	...	६६

गगन-अँगन घनाघन तैं सघन तम	...	६१
गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं	...	७३
गिरत गहत बाँह, घाम में करत छाँह	...	१०२
गीतहिं सुनावैं तिलकन भलकावैं भुज	...	१५
ग्राह के गहे तैं अति व्याकुल बिहाल भयौ	...	१०६
ग्रीष्म तपति हर, प्यारे नव जलधर	...	५६
घर के रहत जाके सेनापति पैये सुख	...	२३
घर तैं निकसि करि मार गहि मारत हैं	...	२८
चंचल, चकित, चल, अंचल मैं भलकति	...	३१
चडिका-रमन, मुड-माल-मेरु करिबे कौं	...	६०
चंद की कला सी, चपला सी, तिय सेनापति	...	४८
चंद दुति मंद कीने, नलिन मलिन तैं ही	...	४७
चले उत पति के त्रियोग उतपति भई	...	४४
चले तैं तिहारे पिय, बाढ़्यौ है त्रियोग जिय	...	३७
चल्यौ हनूमान राम-वान के समान, जानि	...	८१
चाहत सकल जाहि रति कै भ्रमर है जो	...	७
चाहत है धन जौ तू, सेउ सिया-रमन कौं	...	६७
चित्त चुभी आनि, मुसकानि मन-भावन की	...	३५
चीर के हरत बलवीर जू बढायौ चीर	...	१०७
चुरइ सलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि-जल भूपिय	...	८४
चौरासी समान, कटि किंकिनी त्रिराजति है	...	७०
छतियाँ सकुच वाकी को कहै समान तातैं	...	३०
छाँड़ि कै कुपैँडै, पैँडै परे जे त्रिभीषनादि	...	६७
छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु	...	५६
छूटे आवै काज भिन्न करत सँजोए साज	...	२६
छूट्यौ ऐश्वौ जैवौ, प्रेम-पाती कौं पटैवौ, छूट्यौ	...	३७
जनक नरिंद नंदिनी कौं बदनारविंद	...	७८
जनम कमीन भौन वीर जुद्ध भीत रहैं	...	१४
जरद बदन, पान खाए से रदन, मानौं	...	५०
जँह उच्चरत विरंचि बेद, बंदत मुर-नाइक	...	८५
जहाँ मुर सभा है सुवास वसुधा कौं सार	...	७

जाउकौ लिलार ताके पाउकौ अधर, नैन	..	४१
जाकी जोति पाइ जग रहत जगमगाइ	...	२३
जाकी नीर-धार निरधार निरधार हू कौ	...	११४
जाकी सुभ सूरति मुधारी है सुहाग भाग	...	५
जाके रोजनामे सेस सहस वदन पढ़ै	...	३०
जाकौ फेरि फेरि नारि सेनापति सब चाहैं	...	५
जाकौ महा जोगी, जोग-साधन करत हठि	...	१०६
जात है न खेयौ क्योंहूँ बल्ली न लगति नीकी	...	१३
जाही हनूमान के अछुत अपमान पाइ	...	११०
जिनकी पवन फौक, पंछिन मैं पंछिराज	...	६०
जीतत कपोल कौ तिलोत्तमैं अनूप रूप	...	१६
जी मैं दरद न छुन्यौ सकल मदन तरु	...	११६
जुद्ध-मद-अंध दसकंधर के महा बली	...	६०
जेठ नजिकाने मुधरत खसखाने, तल	...	५६
जेती बन बेली ओर तिनकी न कीजै दौर	...	२५
जोर जलचर, अति क्रुद्ध करि जुद्ध कीनौ	...	१०६
जौ तैं प्रानप्यारे परदेश कौ सिधारे तौतैं	...	४६
ज्यों ज्यों सखी सीतल करति उपचार सब	...	४२
भूँटे काज कौ बनाइ, मिस ही सौ घर आइ	...	४०
तजत न गाँठि जे अनेक परबन भरे	...	२६
तजि भुव-अंबर कौ, सीता के स्वयंबर कौ	...	७५
तपै इत जेठ, जग जात है जरनि जरयौ	...	५८
तब की तिहारी हँसि हिलनि मिलनि वह	...	१६
तब तैं कन्हाई अब देत हौ दिखाई, रीति	...	३५
तब न सिधारी साथ मीड़ति है अब हाथ	...	७०
तरु नीके फूले बिबिध, देखि भए मयमंत	...	५६
तारन की जोति जाहि मिले पै विमल होति	...	२४
ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ, तन	...	१००
तीनि लोक ऊपर सरूप पारबती, जातैं	...	७८
तीर तैं अधिक बारिधार निरधार महा	...	१६
तुकन सहित भले फल कौ धरत सूधे	...	३

तुम करतार जन रच्छा के करनहार	...	१०३
तू है निरवान कौं निदान ज्ञान ध्यान तेरौ	...	१०४
तेरे उर लागिवे कौं लाल तरसत महा	...	२०
तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है	...	२४
तेरे भूखन हैं यातैं हैहै न सुधार कछू	...	१६
तेरौ मुख देखे चंद देखौं न मुहाइ, अरु	...	४६
तो रति राती राति तैं, रेनी तारे तीर	...	११७
तोरथौ है पिनाक, नाकपाल बरसत फूल	...	७६
त्रिभुवन-रच्छन-दच्छ पच्छ रच्छिय कच्छप वर	...	७६
थोरौ कछू मांगे होत राखत न प्रान लगि	...	१३
दच्छिन धीर समीर पुनि, कोकिल कल कूजंत	...	५६
दानी दिन दिन दादनी, दाना दाना दीन	...	११७
दामिनी दमक, सुरचाप की चमक, स्याम	...	६१
दामिनी दमक सोई मंद त्रिहसनि, वग-	...	६१
दिन दिन उदै जाकौं जातैं है मुदित मन	...	१८
दीछित परसराम, दादौ है त्रिदित नाम	...	२
दीरघ प्रचंड महा पीन भुजदंड जुग	...	७६
दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखौ	...	६५
देखत नई है गिरि छतियाँ रहे हैं कुच	...	६
देखत न पीछे कौं निकासि कैयौ कोसन तैं	...	२१
देखि चरनारविंद बंदन करथौ वनाइ	...	७७
देखैं छिति अंबर जलैं है चारि ओर छोर	...	१७, ५८
देव दया-सिंधु सेनापति दीन-बंधु सुनौ	...	६६
देकैं जिन जीव, ज्ञान, प्रान, तन, मन, मति	...	६७
दोष सौं मलीन, गुन-हीन कविता है, तौ पै	...	३
द्रौपदी सभा मैं आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि	...	१०७
द्विजन की जामैं मरजाद छूटि जाति भेष	...	१७
धरथौ पग पेलि दसमत्थ हू के मत्थ पर	...	८७
धरथौ है चरन दससीस हू के सीस पर	...	८७
धरथौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि	...	१६, ५५
धाता जाहि गावै, कछू मरम न पावै, ताहि	...	७३

धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार	...	१०४
धायौ हिम-दल हिम-भूधर तैं सेनापति	...	६८
धीवर कौं सखा है सनेही वनचरन कौं	...	१००
नंद के कुमार, मार हूँ तैं सुकुमार, ठाढ़े	...	३५
नरक-हरन तैं राखियै, नर कहरन तैं दास	...	११८
नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी छैल	...	७१
नारी नेह भरी कर हियै है तपति खरी	...	१७
नाहीं नाहीं करैं थोरी माँगे सब दें कहुँ	...	१३
निगमन गायौ, गजराज-काज धायौ, मोहिं	...	१०२
निगमन हेरि, समुझाइ मन फेरि राखु	...	१०४
निरखत रूप हरि लेत गद ही कौं सब	...	२८
नीकी अंगना है, भावै सब अंग नाहै, देखी	...	५२
नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति	...	६८
नीके रमनी के उर लागे नख-छत अरु	...	४०
नीके हौ निटुर कंत, मन लै पधारे अंत	...	६२
नूतन जोवनवारी मिली ही जो वन वारी	...	३३
नूपुर कौं भनकाइ मंद ही धरति पाइ	...	३८
नैन नीर बरसत, देखिबे कौं तरसत	...	४६
पच्छन कौं धरे किधौं सिलर सुमेर के हैं	...	६०
पजरत पाउक, न चलत पवन कहूँ	...	८८
पढ़ी और विद्या, गई छूटि न अविद्या, जान्यौ	...	१०८
पति उतराति, देखौ परी है बिपति अति	...	१०८
पति के अछुत, सुरपति जिन पति कीनौ	...	१०६
पतित उधारै हरि-पद पाँउ धारै, देव-	...	११२
पर कर परै यातैं पाती तौ न दीनी लाल	...	२५
परम जोति जाकी अनंत, रमि रही निरंतर	...	१
परे तैं तुसार, भयौ भार पतभार, रही	...	६६
पवन परम तातै लगत, सहि नहिं सकत सरीर	...	६०
पहिले तौ इत, सेनापति प्रानपति नित	...	४७
पाँचौ सुरतारु कौं जौ एकै सुरतरु, एक	...	७४
पाई जो कबिन जल-थल जप-तप करि	...	१

पाउक प्रचंड, राम-पतिनी प्रवेश कीनौ	...	६१
पाउस निकास तातैं पायौ अवकास, भयौ	...	६४
पाए सब काम, बड़े धनी ही की ब्रह्म-छाँह	...	६३
पान चरनामृत कौं, गान गुन गनन कौं	...	१०१
पारथ की रानी, सभा बीच बिललानी, दुसा-	...	१०७
पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तैं उचार्यौ जिन	...	६५
पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार	...	१५
पासे की निकाई सेनापति ना कही बनति	...	८
पिखिख हरिन मारीच, थपि लखन सिय-सत्थह	...	८०
पून्यौं सी तिहारी लाल, प्यारी में निहारी बाल	...	४५
पूरत हैं कामैं सत्यभामा मुख सागर हैं	...	२२
पूर्वली जासौं पहिचान ही न कौटू, आइ	...	८३
पूस के महीना काम वेदना सही न जाइ	...	६६
पेड़ि तैं उचारि, बारि-रासि हू के बारि बीच	...	८६
पैयें भली घरी तन मुख सब गुन भरी	...	६
प्यारौ परदेस जाके नीकी मसि भीजति है	...	२७
प्रबल प्रताप दीप सात हू तपत जाकौं	...	२४
प्रात उठि आइवे कौं तेलहिं लगाइवे कौं	...	६५
प्रात नृप न्हात, करि असन बसन गात	...	५७
प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन	...	८
प्रीति सौं रमत, उनहीं के विरमत घर	...	४३
फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल	...	४२
वज्र हू दलत, महा कालै संहरत, जारि	...	८०
वड़े पै त्रिभंगी रस हू मैं जे न सूधे होत	...	२३
बदन सरोरुह के संग ही जनम जाकौं	...	१०
बरन बरन तरु फूले उपवन वन	...	५४
बरन्यौ कचिन कलाधर कौं कलंक तैसौ	...	६५
बरसत घन, गरजत सघन, दामिनि दिपै अकास	...	६३
बरसै तुसार, बहै सीतल समीर नीर	...	६७
बहुरि ब्राह्म अवतार भयौ, किधौं दिन	...	८६
बागौ निसि-बासर मुधारत हौ सेनापति	...	५२

वानरन राखै तोरि डारत है अरि लंकै	...	१८
वानी सौ सहित सुवरन मुँह रहैं जहाँ	...	३
वारन लगाई ही पुकार एक बार, ताकौं	...	१०३
बाल हरिलाल के वियोग तैं बिहाल, रैनि	...	४५
बालि कौं सपूत, कपि-कुल-पुरहूत, रघु-	...	८८
विंन हैं अधर-विन कुंद से कुसुम दंत	...	३८
बिनती बनाइ, कर जोरि हौं कहत जातैं	...	१०१
बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब	...	४१
बिबिध वरन मुर चाप के न देखियत	...	६४
बिरच्यौ प्रचंड वरिवंड है पवन-पूत	...	८२
बिरह तिहारे घन घन उपवनन की	...	३३
बिरह बिहाल उपचार तैं न बोलै बाल	...	२१
बिरह हुतासन बरत उर ताके रहै	...	८
बिस्व की जुगति, जीतै जोग की जुगति हू कौं	...	११३
बिस्व के सुधारन कौं, काम-जस-धारन कौं	...	८०
बीर महाबली धीर, धरम-धुरंधर है	...	७३
बीर रस मदमाते, रन तैं न होत हाँते	...	८६
बीरैं खाइ रही तातैं सोहति रक्तमुखी	...	२२
बृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि	...	५६
बृष चढ़ि महा भूत-पति ज्यौं तपत अति	...	६०
ब्यापी देस देस बिस्व कीरति उज्यारी जाकी	...	४
भए और राजा, राजधानियों अनेक भई	...	६३
भए हैं भगत भगवंत के भजन-रस	...	६२
भयौ एकनारी-व्रत धारी हरि-कंत, ताहि	...	७६
भीज्यौ है रुधिर, भार भीम, घनघोर धार	...	७६
भूप सभा भूपन, छिपावौ पर दूषन, कु-	...	२
भूषित रघुवर वंस, भक्त-वत्सल, भव खंडन	...	७२
भौन सुधराए सुख साधन धराए, चार्यौ	...	४६
मंद मुसकान कोटि चंद तैं अमंद राजै	...	७३
मकर सीत वरसत विषम, कुमुद कमल कुम्हिलात	...	७१
मधु खंडन परि नाम है, सिय रानी कौं पीय	...	११८

मधुर अमोल बोल, टेढ़ी है अलक लोल	...	३४
मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर	...	५४
महा बलवंत हनुमंत वीर अंतक ज्यौं	...	८२
महा मद-अंध दसकंध सनबंध छाँड़ि	...	१०६
माजू महारानी कौं बुलावौ महाराज हू कौं	...	७७
मानहु प्रबाल ऐसे ओठ लाल लाल, भुज	...	४४
मारग-सीरघ, पूस मैं सीत-हरन-उपचार	...	६७
मारगु मानी को पकरि, छाँड़्यौ ती छन तीर	...	११७
मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ	...	३६
मालै हठि लैकै भले जन ए बिसारै राज	...	१५
मिलत ही जाके बढ़ि जात घर मैंन चैन	...	२७
मूढ़न कौं अगम, सुगम एक ताकौं, जाकी	...	२
मैलन घटावै महा तिमिर मिटावै सुभ	...	३०
मोती मनि मानिक स्तन करि पूरी धन	...	८
मोती माल पोहत ही सखिन मैं सोहत ही	...	२६
मोती हैं दसन मनि भूँगा हैं अघर बर	...	६
मो मन हरत, पै अनत बिहरत, इत	...	४१
मोहिं महाराज आप नीके पहिचानै, रानी	...	१०२
मोहिनी कौं सिव, सारदाहू कौं बिरंचि पुर	...	७८
मौन नेम, नामौ नमै, मुनि मन मानै मैंन	...	११७
यह कलिकाल बढ़्यौ दुरति कराल, देखि	...	११०
यह सरबस चतुरानन कमंडल कौं	...	११०
यह मुरसरि, कौन करै मुर सरि याकी	...	१११
रजनी के समै बिन सीरक न सोयौ जात	...	१६, ५६
रहै अपसर ही की सोभा जो अनूप धरि	...	१२
रहौ परलोक ही के सोक मैं मगन आप	...	११५
रखौ तेल पी ज्यौं धिय हू कौं पूर भोज्यौ, ऐसौ	...	८३
राखति न दौषै पोषे पिंगल के लच्छन कौं	...	३
राख्यौ धरि लाल रंग रंगित ही अंबर मैं	...	१२
राधिका के उर बढ़्यौ कान्ह कौं बिरह ताप	...	२०
राम के हुकुम, सेनापति सेतु काज कपि	...	८६

राम जू की आन कोई तीरथ न आन देख्यौ	...	११२
राम जू के पाइ, मुनि-मन न सकत पाइ	...	१११
राम महाराज जाकौं सदा अत्रिचल राज	...	६३, ६५
रावन कौं वीर, सेनापति रघुवीर जू की	...	८३
रूप कै रिभावत हौ, किन्नर ज्यौं गावत हौ	...	३६
रे रे रामा में रमै, रोम रोम में रारि	...	११७
रे रे सूरौ ! सुरसरी सौरौ, संसौ सास	...	११७
रेनि ही के बीच पाँउ धरि लाल रंग भरि	...	२६
रोस करौं तोसों, दोस तोही कौं सहस देहुँ	...	३७, १०१
लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी	...	६६
लयौ मन मोहि, तातैं सूभत न मोहि सखी	...	४४
लसत कुटज, घन, चंपक, पलास वन	..	५४
लहुरि लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके	...	११४
लागैं न निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ	...	५१, ६६
लाल के वियोग तैं, गुलाब हू तैं लाल, सोई	...	३८
लाल मनरंजन के मिलिवे कौं मंजन के	...	४७
लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग	...	५५
लाह सौं लसति नग सोहत सिंगार हार	...	४
लीने सुघराई संग सोहत ललित अंग	...	६
लीनौ है निदान अभिमान मुभटाई ही कौ	...	७६
लीला लोने नलिन लौं, ललना नैनन लीन	...	११७
लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई	...	३६
लोचन बिसाल, लाल अधर प्रवाल हू तैं	...	३६
लोल हैं कलोल पारावार के अपार, तऊ	...	४३
लोली लल्ला लल्लली, लै ली लीला लाल	...	११७
वाके भौन बसे, भौन कीजै, हौं न मानौं रोस	...	४४
वैसो करि नेह एक प्रान विवि देह, अब	...	३६
श्री वृंदावन-चंद, सुभग धाराधर सुन्दर	...	१०२
पोइस बरस की है, खानि सव रस की है	...	४८
संतन के तीर सेनापति बरती रहि कै	...	११६
संवत सत्रह सै छु में, सेइ सिंघापति पाइ	...	११८

सकल सुरेस, देस देस के नरेस, आइ	...	७५
सखी सुख दैन स्यामसुन्दर कमल नैन	...	४५
सजनी तिहारी सब रजनी गँवाई जागि	...	४६
सदा नंदी जाकौं आसा कर है बिराजमान	...	१२
सब अंग थोरे थोरे बहुधा रतन जोरै	...	१३
सरस सुधारी, राज-मंदिर में फुलवारी	...	५५
सरसी निरमल नीर पुनि, चंद चाँदनी पीन	...	६५
सहज निकाई मो पै वरनी न जाई, देखे	...	५२
सहज बिलास हास हिय के हुलास तजि	...	४२
सागर अथाह, भौर भारी, बिकराल गाह	...	१०५
सारंग धनुष कुँडलाकृति बिराजै वीच	...	८६
सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै	...	४, ६३
सारंग धुनि सुनि पीय की, सुधि आवत अनुहारि	...	६३
सिय जू की निद्धि, हनुमानहू की सिद्धि, विभी-	...	६४
सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है	...	६७
सिसिर में ससि कौं सरूप पावै सत्रिताऊ	...	६७
सीत कौं प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यौ दल	...	६६
सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम	...	७७
सीता फेरि दीजै, लीजै ताही की सरन, कीजै	...	८८
सीता-सोध-काज, कपिराज चलयौ पैज करि	...	८१
सुन्दर बिराजै राज मंदिर सरस, ताके	...	५८
सुख सरसाउ, किधौ दुख मैं बिलाइ जाउ	...	६८
सुख से ना पति पाइहै, भगतिन मन मैं जानि	...	११८
मुधा के भवन उपवन बीच छूटै नल	...	६०
मुनि कै पुरान राखै पूरन कै दोऊ कान	...	३६
सुर अनुकूल भरे, फूल बरसत फूलि	...	६१
सुरतरु सार की, सवाँरी है बिरंचि पचि	...	१, ७२
सुर-लोक सीतल करत अवनितल तैं	...	१११
सूर बली वीर जसुमति कौं उज्यारौ लाल	...	१८
सूरै तजि भाजी बात कातिक मौं जब सुनी	...	६६
सेनापति उनए नए जलद सावन के	...	६२

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुवै	..	५७
सेनापति तपन तपति उत्तपति तैसौ	...	५८
सेनापति महाराजा राम की चरन-रज	..	८१
सेनापति मानद, तिहारी मोहिं आन, हौं तौ	...	५१
सेनापति राम अरि-सासना के साइक तैं	...	८४
सेनापति राम कौ प्रताप अदभुत, जाहि	...	८६
सेनापति राम-वान-पाउक अपार अति	...	८४
सेनापति राम-वान-पाउकै बखानै कौन	...	८४
सेनापति सी पति की अंतर भगति, रति	..	८०
सैन समै सुखधाम, सेनापति धनस्याम	..	३६
सोए संग सव राती सीरक परति छाती	...	१०,७०
सो गज-गमनि है, असो गज-गमनि देख	.	४८
सोचत न कौहू मन लोचत न बार बार	.	६६
सो तौ प्रानव्यास सौँचौ नैनन कौं तारौ	..	५०
सोहत बिमान, आसमान मध्य भासमान	..	६१
सोहति उत्तंग, उत्तमंग, ससि संग गंग	..	१०८
सोहति बहुत भौति चीर सौं लपेटी सदा	...	६
सोहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाइ, किधौं	...	७४
सोहैं संग आलि, रही रति हू के उर सालि	...	३४
सोहैं संग सिय रानी, दृग देखि सिय रानी	...	६२
स्याम लछारे लसत, बार बारन-गमनी के	..	४२
हरि न है संग वैठी जोवन जुगारति है	..	२७
हरि हरि हारी, हारिहै हैरे रुरी हेरि	...	११७
हहरि गयौ हरि हिए, धधकि धीरत्तन मुक्किय	...	७६
हित उपदेस लेह, छाँड़ि दै कलेस, सदा	...	१०८
हित सौं निरखि हँसे, तौतैं तुम उर बसे	...	३५
हितू समभावैं, गुरुजन सकुचावैं, बैन	...	५०
हिय हरि लेत हैं, निकाई के निकेत, हँसि	..	३२
हांति निरदोष, रचि जोति सी जगमगति	..	६४

